BED III- CPS 14

संस्कृत का शिक्षणशास्त्र (भाग II)

Pedagogy of Sanskrit (Part II)

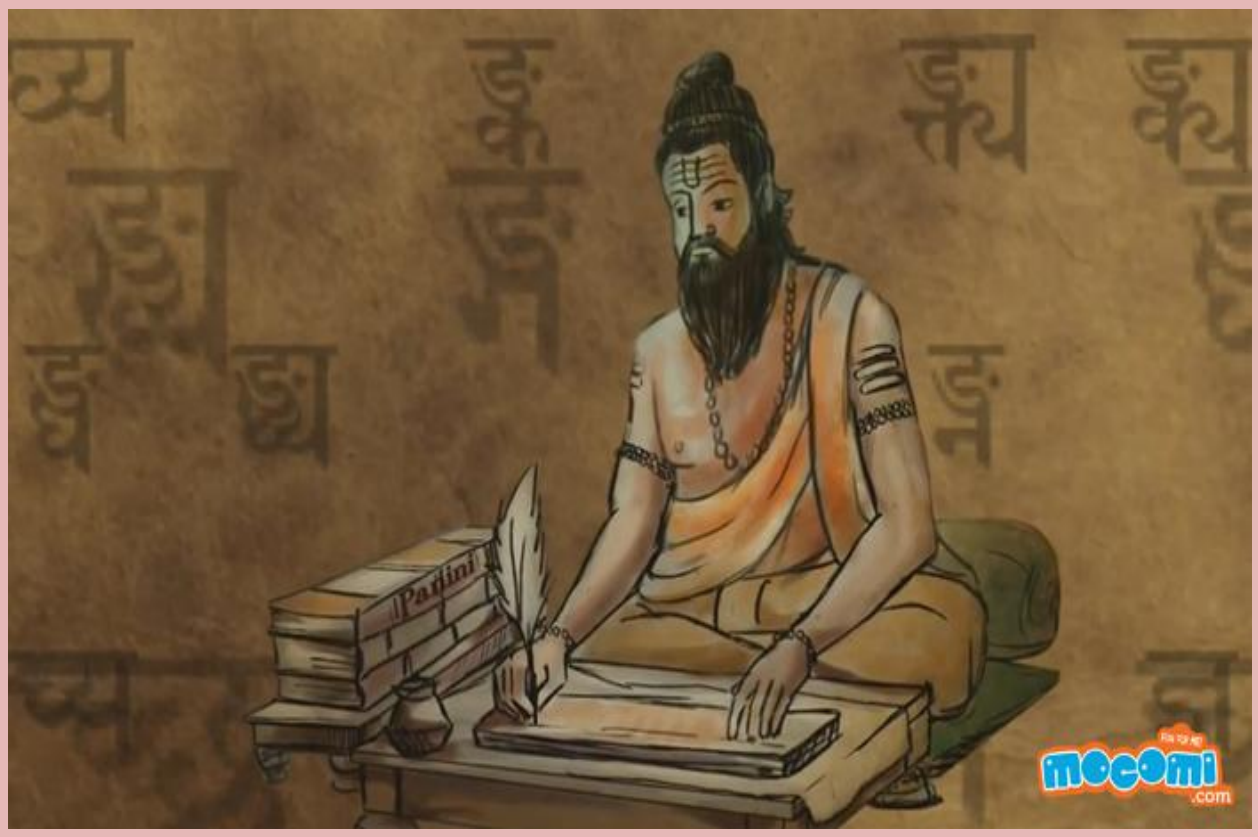

शिक्षक शिक्षा विभाग, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

ISBN: 13-978-93-85740-82-4
BED III- CPS 14 (BAR CODE)

BED III- CPS 14

संस्कृत का शिक्षणशास्त्र (भाग II)

शिक्षक शिक्षा विभाग, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

अध्ययन बोर्ड	विशेषज्ञ समिति
□**प्रोफेसर एच० पी० शुक्ल** (अध्यक्ष- पदेन), निदेशक, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय □**प्रोफेसर मुहम्मद मियाँ** (बाह्य विशेषज्ञ- सदस्य), पूर्व अधिष्ठाता, शिक्षा संकाय, जामिया मिल्लिया इस्लामिया व पूर्व कुलपति, मौलाना आजाद राष्ट्रीय उर्दू विश्वविद्यालय, हैदराबाद □**प्रोफेसर एन० एन० पाण्डेय** (बाह्य विशेषज्ञ- सदस्य), विभागाध्यक्ष, शिक्षा विभाग, एम० जे० पी० रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली □**प्रोफेसर के० बी० बुधोरी** (बाह्य विशेषज्ञ- सदस्य), पूर्व अधिष्ठाता, शिक्षा संकाय, एच० एन० बी० गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर, उत्तराखण्ड □**प्रोफेसर जे० के० जोशी** (विशेष आमंत्री- सदस्य), शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय □**प्रोफेसर रम्भा जोशी** (विशेष आमंत्री- सदस्य), शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय □**डॉ० दिनेश कुमार** (सदस्य), सहायक प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय □**डॉ० भावना पलड़िया** (सदस्य), सहायक प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय □**सुश्री ममता कुमारी** (सदस्य), सहायक प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा एवं सह-समन्वयक बी० एड० कार्यक्रम, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय □**डॉ० प्रवीण कुमार तिवारी** (सदस्य एवं संयोजक), सहायक प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा एवं समन्वयक बी० एड० कार्यक्रम, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय	□**प्रोफेसर एच० पी० शुक्ल** (अध्यक्ष- पदेन), निदेशक, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय □**प्रोफेसर सी० बी० शर्मा** (बाह्य विशेषज्ञ- सदस्य), अध्यक्ष, राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान, नोएडा □**प्रोफेसर पवन कुमार शर्मा** (बाह्य विशेषज्ञ- सदस्य), अधिष्ठाता, शिक्षा संकाय व सामाजिक विज्ञान संकाय, अटल बिहारी बाजपेयी हिन्दी विश्वविद्यालय, भोपाल □**प्रोफेसर जे० के० जोशी** (विशेष आमंत्री- सदस्य), शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय □**प्रोफेसर रम्भा जोशी** (विशेष आमंत्री- सदस्य), शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय □**डॉ० दिनेश कुमार** (सदस्य), सहायक प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय □**डॉ० भावना पलड़िया** (सदस्य), सहायक प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय □**सुश्री ममता कुमारी** (सदस्य), सहायक प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा एवं सह-समन्वयक बी० एड० कार्यक्रम, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय □**डॉ० प्रवीण कुमार तिवारी** (सदस्य एवं संयोजक), सहायक प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा एवं समन्वयक बी० एड० कार्यक्रम, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

दिशाबोध: प्रोफेसर जे० के० जोशी, पूर्व निदेशक, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

कार्यक्रम समन्वयक:	कार्यक्रम सह-समन्वयक:	पाठ्यक्रम समन्वयक:	पाठ्यक्रम सह समन्वयक:
डॉ० प्रवीण कुमार तिवारी समन्वयक, शिक्षक शिक्षा विभाग, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल, उत्तराखण्ड	**सुश्री ममता कुमारी** सह-समन्वयक, शिक्षक शिक्षा विभाग, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल, उत्तराखण्ड	**डॉ० गिरीश कुमार तिवारी** अतिथि व्याख्याता, शिक्षा विभाग, महिला महाविद्यालय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, उत्तरप्रदेश	**डॉ० प्रवीण कुमार तिवारी** समन्वयक, शिक्षक शिक्षा विभाग, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल, उत्तराखण्ड

प्रधान सम्पादक	उप सम्पादक
डॉ० प्रवीण कुमार तिवारी समन्वयक, शिक्षक शिक्षा विभाग, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल, उत्तराखण्ड	**डॉ० गिरीश कुमार तिवारी** अतिथि व्याख्याता, शिक्षा विभाग, महिला महाविद्यालय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, उत्तरप्रदेश

विषयवस्तु सम्पादक	भाषा सम्पादक	प्रारूप सम्पादक	प्रूफ़ संशोधक
डॉ० गिरीश कुमार तिवारी अतिथि व्याख्याता, शिक्षा विभाग, महिला महाविद्यालय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, उत्तरप्रदेश	**डॉ० गिरीश कुमार तिवारी** अतिथि व्याख्याता, शिक्षा विभाग, महिला महाविद्यालय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, उत्तरप्रदेश	**सुश्री ममता कुमारी** सहायक प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय	**सुश्री ममता कुमारी** सहायक प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

सामग्री निर्माण

प्रोफेसर एच० पी० शुक्ल निदेशक, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय	**प्रोफेसर आर० सी० मिश्र** निदेशक, एम० पी० डी० डी०, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

© उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, 2017

ISBN-13-978-93-85740-82-4

प्रथम संस्करण: 2017 (पाठ्यक्रम का नाम: संस्कृत का शिक्षणशास्त्र (भाग II), पाठ्यक्रम कोड- BED III- CPS 14)

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पुस्तक के किसी भी अंश को ज्ञान के किसी भी माध्यम में प्रयोग करने से पूर्व उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय से लिखित अनुमति लेना आवश्यक है। इकाई लेखन से संबंधित किसी भी विवाद के लिए पूर्णरूपेण लेखक जिम्मेदार होगा। किसी भी विवाद का निपटारा उत्तराखण्ड उच्च न्यायालय, नैनीताल में होगा।

निदेशक, शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय द्वारा निदेशक, एम० पी० डी० डी० के माध्यम से उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय के लिए मुद्रित व प्रकाशित।
प्रकाशक: उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय; **मुद्रक:** उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय।

कार्यक्रम का नाम: बी० एड०, कार्यक्रम कोड: BED- 17

पाठ्यक्रम का नाम: संस्कृत का शिक्षणशास्त्र (भाग II), पाठ्यक्रम कोड- BED III- CPS 14

इकाई लेखक	खण्ड संख्या	इकाई संख्या
श्री प्रदीप कुमार पाण्डेय शिक्षा निदेशालय, दिल्ली सरकार, नई दिल्ली	1	1 व 2
श्री कालीशंकर मिश्र प्रोजेक्ट फेलो, एन० सी० ई० आर० टी०, नई दिल्ली	1	3
	2	2 व 4
डॉ० सुरेन्द्र महतो सहायक प्रोफेसर, शिक्षा विभाग, श्री लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली	1	4
	2	5
डॉ० शिवदत्त आर्य सहायक प्रोफेसर, शिक्षा विभाग, श्री लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली	1	5
सुश्री अरुणिमा शिक्षा विभाग, श्री लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली	2	1
श्री प्रभाकर पाण्डेय सहायक प्रोफेसर, वैकल्पिक शिक्षा विभाग, साँची बौद्ध भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय, अकादमिक परिसर बारला, रायसेन, मध्य प्रदेश	2	3

BED III- CPS 14
संस्कृत का शिक्षणशास्त्र (भाग II)

खण्ड 1		
इकाई सं०	**इकाई का नाम**	**पृष्ठ सं०**
1	भाषा अधिगम के विभिन्न पाश्चात्य सिद्धांत	2-23
2	भाषा अधिगम के विभिन्न भारतीय सिद्धांत	24-39
3	अधिगम योजना (लर्निंग प्लान)	40-56
4	भाषाई कौशलों का विकास एवं उनका मूल्यांकन: संस्कृत भाषा के विशेष सन्दर्भ में	57-73
5	संस्कृत भाषा शिक्षणार्थ शिक्षण अधिगम सामाग्री एवं पाठ्य सहगामी क्रियाएं	74-90

खण्ड 2		
इकाई सं०	**इकाई का नाम**	**पृष्ठ सं०**
1	पाठ्यक्रम एवं पाठ्य सामग्री का निर्माण	92-124
2	संस्कृत शिक्षण की पाठ्यपुस्तकों का मूल्यांकन	125-137
3	परीक्षण, मापन एवं मूल्यांकन: संस्कृत भाषा के शिक्षण एवं अधिगम के विशेष संदर्भ में	138-152
4	संस्कृत भाषा में उपलब्धि के मूल्यांकन हेतु उपलब्धि परीक्षण का निर्माण	153-169
5	संस्कृत शिक्षण एवं क्रियात्मक अनुसंधान	170-182

खण्ड 1

Block 1

इकाई 1- भाषा अधिगम के विभिन्न पाश्चात्य सिद्धांत

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 जॉन डीवी
1.3.1 जॉन डीवी के सिद्धांत
1.3.2 डीवी का सिद्धांत तथा भाषा अधिगम
1.4 जीन पियाजे
1.4.1 संज्ञानात्मक विकास का सिद्धांत: जीन पियाजे
1.4.2 पियाजे का सिद्धांत तथा भाषा अधिगम
1.4.3 पियाजे-सिद्धांत का शैक्षिक निहितार्थ
1.5 लेव वाइगोत्स्की
1.5.1 वाइगोत्स्की के सिद्धांत तथा संप्रत्यय
1.5.2 समीपस्थ विकास का क्षेत्र
1.5.3 वाइगोत्सकी और भाषा विकास
1.5.4 वाइगोत्स्की सिद्धांत का शैक्षिक निहितार्थ
1.6 अब्राम नोम चोमस्की
1.6.1 चोमस्की-भाषा अधिगम सिद्धांत
1.7 स्टीफन क्रेशन का सिद्धांत
1.7.1 क्रेशन के सिद्धांत का शैक्षिक निहितार्थ
1.8 सारांश
1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.11 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री
1.12 लघु उत्तरीय प्रश्न
1.13 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

भाषा शिक्षण (संस्कृत) के तृतीय सत्र के खंड 1 में संस्कृत भाषा के विशेष संदर्भ में भाषा अधिगम एवं भाषा शिक्षक के सभी पहलुओं का अध्ययन करना है। द्वितीय सत्र के पाठ्यक्रम में सम्मिलित पाठ्यबिंदुओं के अध्ययन के उपरांत आप संस्कृत भाषा के सैद्धांतिक एवं व्यवहारिक पक्षों को समझ चुके हैं। सैद्धांतिक पक्ष में आपने संस्कृत भाषा परिचय, शिक्षण के सैद्धांतिक पक्ष, शिक्षण की प्रस्थिति, पाठ्यक्रम एवं संस्कृत भाषा तथा शिक्षण के कुछ अनछुए पहलुओं का अध्ययन किया है। साथ ही साथ व्यवहारिक पक्ष के अंतर्गत भाषा शिक्षण की विभिन्न विधियां, भाषा साहित्य संबंध, भाषा साहित्य के विभिन्न विधाओं का शिक्षण, भाषा शिक्षण के परिप्रेक्ष्य में सूचना एवं तकनीकी का उपयोग, तथा संस्कृत के विशेष संदर्भ में भाषा शिक्षक के गुणों, योग्यताओं तथा आवश्यक कौशलों को बतलाने वाले महत्वपूर्ण कारकों से भी आप परिचित हो चुके हैं।

तृतीय सत्र के खंड 1 के अंतर्गत भाषा शिक्षण विधि (संस्कृत) के प्रथम खंड में **संस्कृत भाषा के विशेष संदर्भ में भाषा अधिगम एवं भाषा शिक्षक** को परिलक्षित किया गया है। इसी के अंतर्गत प्रथम इकाई के रूप में **भाषा अधिगम के विभिन्न पाश्चात्य सिद्धांतों अथवा उपागमों** का वर्णन हैं। पश्चात्य मनोवैज्ञानिको ने भाषा अधिगम के सिद्धांतों की विवेचना स्पष्ट रूप में तथा विस्तारपूर्वक की है। इस अधिगम प्रक्रिया को प्रभावी रूप से क्रियान्वित करने के लिए शिक्षण परिस्थिति के अनुसार कौन से सिद्धांत उचित है? समयांतराल पर भिन्न भिन्न मनोवैज्ञानिकों ने किन-किन सिद्धांतों की स्थापना की? भाषा अधिगम से संबंधित उनके विचार क्या रहे हैं? उनके अनुसार भाषा अधिगम प्रक्रिया किन सिद्धांतों पर आधारित होनी चाहिए? प्रस्तुत इकाई में विस्तार से मनोवैज्ञानिकों के सिद्धांतों तथा उनके विचारों को विश्लेषण सहित प्रस्तुत किया गया है।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप-

1. भाषा अधिगम के संप्रत्यय को समझ सकेंगे।
2. भाषा अधिगम संबंधी विभिन्न पाश्चात्य सिद्धांतों के बारे में जान सकेंगे।
3. किन परिस्थितियों में इन सिद्धांतों की स्थापना हुई इस विचार को समझ सकेंगे ।
4. भारतीय भाषा अधिगम के परिप्रेक्ष्य में पाश्चात्य सिद्धांतों की भूमिका को समझ सकेंगे।
5. पाश्चात्य चिंतकों के भाषा अधिगम संबंधी विचारों का सम्यक विश्लेषण कर सकेंगे।
6. अधिगम को संवर्धित करने में इन सिद्धांतों का अनुप्रयोग कर सकने में सक्षम होंगे।

1.3 जॉन डीवी (1859-1952)

जॉन डीवी एक अमेरिकन मनोविज्ञानिक, दार्शनिक, शिक्षा विशारद, चिंतक तथा सामाजिक आलोचक के रूप में विख्यात रहे। जीवन पर्यंत उनके द्वारा किए गए कार्यों का इन सभी क्षेत्रों में स्पष्टतया प्रभाव

परिलक्षित होता है। उन्होंने अपने अध्ययनो एवं कार्यगत अनुभव के आधार पर कई सिद्धांतों की नीव डाली जिसका प्रभाव आज भी शिक्षा जगत में देखने को मिलता है। डीवी ने संरचनावादी सिद्धांतों का कड़ा विरोध किया। उन्होंने यह मत व्यक्त किया की किसी भी मनोवैज्ञानिक क्रिया को लघु-लघु तत्वों या अंशों में न बांटकर अपितु उनका अध्ययन समग्र रूप में (ls whole) करना चाहिए।

1.3.1 जॉन डीवी के सिद्धांत (Constructivism)

जॉन डीवी ने अपने भाषा अधिगम संबंधी विचार इस सिद्धांत में निहित किए हैं। constructivism शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के CON तथा STRUERE से मिलकर बना हुआ है। CON का अर्थ साथ में तथा STRUERE का अर्थ निर्माण करना होता है। अंग्रेजी भाषा में परिवर्धित इस शब्द का सम्मिलित अर्थ साथ-साथ निर्माण करना हुआ, अर्थात जहां अधिगम प्रक्रिया व्यक्तिगत तथा सामाजिक रूप में प्रासंगिकता तथा सहभागिता के सिद्धांत पर निर्भर करती है।

डीवी के अनुसार सर्वाधिक रूप में अधिगम प्रक्रिया तब पूर्ण होगी जब परिस्थिति ही शिक्षार्थी की रुचि क्रियाशीलता तथा प्रासंगिकता से संबंधित हो। ऐसी स्थिति में शिक्षार्थी स्वयं सक्रिय होकर आवश्यकतानुगत ज्ञान तथा अर्थ का निर्माण करते हैं। डीवी के इस सिद्धांत को रचनात्मकतावाद (Constructivism), पुनर्रचनावाद (Re-constructivism), प्रयोगवाद (Experimenalism), करणवाद (Instrumentalism) तथा व्यवहारवाद (Pr|gmatism) के नामों से भी जाना जाता है। डीवी के इस सिद्धांत के अनुसार अधिगम (Learning) एक सक्रिय तथा प्रासंगिक प्रक्रिया है, जिसमें शिक्षार्थी (Learner) अथवा लाभार्थी स्वयं के लिए व्यक्तिगत (Individual) तथा सामाजिक (Social) दोनों परिप्रेक्ष्य में ज्ञान का निर्माण करता है। डीवी के अनुसार अधिगम प्रक्रिया (Learning Process) निर्मित (Construct) की जाती है, जिसमें शिक्षार्थी सक्रिय प्रतिभागी(active participent) के रुप में शामिल होता है।

डीवी ने ज्ञान (Knowledge) को क्रिया (action) का परिणाम (result) माना है, मार्गदर्शक नहीं। अतः किसी क्रिया के उपरांत प्राप्त होने वाला अनुभव ही ज्ञान अथवा सीखना के रूप में जाना जाता है। ज्ञान अनुभव का परिणाम है तथा अनुभव क्रियाओं द्वारा संगठित होता है, अपने इस विचार से डीवी अधिगम की प्रयोगात्मक रीति (experimental method) पर बल देते हैं। डीवी के विचार से यह स्पष्ट होता है कि अधिगम प्रक्रिया सर्वाधिक उन्नत रूप को तब प्राप्त होगी, जब वह शिक्षार्थी के लिए उपयोगी, उसकी रुचियों से संबंधित, तथा उसे निरंतर क्रियाशील बनाए रखती हो। सिद्धांत के अनुसार बालकों का सीखना क्रिया द्वारा (learning by doing), स्व-अनुभव द्वारा (learning by self-experience), खोज द्वारा (learning by discovery) तथा प्रयोग द्वारा (learning by experimentation) के माध्यम से सफल हो पाता है।

Constructivism एक ऐसा प्रतिमान है जिसमें अधिगम (learning) को एक सक्रिय (active) तथा संगठित (constructive) प्रक्रिया (process) माना गया है। सिद्धांत के अनुसार बालक में ज्ञान का हस्तांतरण (transfer) नहीं होता है, अपितु वैयक्तिक रूप से सक्रियता पूर्वक उस का निर्माण होता है,

जहां शिक्षार्थी स्वयं अपने ज्ञान का निर्माण करता है ना कि वह ज्ञान को एक उत्पाद (Product) के रूप में ग्रहण करता है। ज्ञानार्जन की यह प्रक्रिया वैयक्तिक होती है तथा प्रत्येक के अनुसार अलग-अलग संदर्भ अर्थ तथा अनुभव रखती है। उदाहरण- किसी एक कविता (poem) के अनेक अर्थ हो सकते हैं। यह अर्थ संदर्भों, पाठक के पूर्व अनुभवो तथा तात्कालिक अनुभूति के आधार पर भी निर्मित हो सकते हैं।
इसी कविता को लिखने वाले तथा पढ़ने वाले दोनों अलग-अलग संदर्भ में व्याख्यायित भी कर सकते हैं। यह सिद्धांत शिक्षार्थी के तार्किक (logical) तथा संप्रत्ययात्मक विकास (conceptual development) को संवर्धित करता है। इस समस्त अधिगम प्रक्रिया में वातावरण (environment) महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। शिक्षार्थी इस वातावरण के माध्यम से प्राप्त अनुभव, घटनाओं तथा परिस्थितियों से जुड़कर अपने ज्ञान का निर्माण करते हैं। अधिगम सिद्धांत इस तर्क पर बल देता है की शिक्षार्थी ज्ञान अथवा अर्थ को दूसरों के सामने व्यक्त करता है, वह उसके पूर्व अनुभवो से संबंध रखती हुई निर्मित होती है।
समायोजन (Accommodation) तथा आत्मसातकरण (Assimilation) इस सिद्धांत को और भी वैध बनाने में महती भूमिका निभाते हैं। इन दोनों संप्रत्ययों का वर्णन पियाजे ने अपने अधिगम सिद्धांत में भी की हुई है।

आत्मसातकरण की अनुरूपता के आधार पर शिक्षार्थी अपने पूर्व-अनुभव (Pre-existing experience) नूतन अनुभव (new experience) के साथ संबंधित करता है, लेकिन जब पूर्व अनुभव नूतन अनुभव के साथ मेल नहीं खाते तब शिक्षार्थी पुनः परिस्थितियों का मूल्यांकन (evaluation) तथा उस पर चिंतन (thinking) करता है और आवश्यकतानुसार अपने दृष्टिकोण (views) में बदलाव कर नूतन अनुभव का निर्माण करता है। उदाहरण के रूप में जब बालक किसी दो आंख, दो कान, दो सिंग, तथा चार पैर वाले जानवर को देखता है, और अगली बार ऐसी ही शारीरिक संरचना वाले किसी अन्य जानवर को देखकर समान समझ बैठता है। लेकिन अगली बार पुनः देखने पर जब वह कुछ भिन्न विशेषताओं पर गौर करता है तब वह विशेष चिंतन के माध्यम से अपने दृष्टिकोण में सकारात्मक बदलाव (positive changes) कर नए ज्ञान का निर्माण करता है।

1.3.2 डीवी का सिद्धांत तथा भाषा अधिगम (Dewey's Theory and Language Learning)

शिक्षा अनुभव का पुनर्निर्माण अथवा पुनर्रचना करने वाली प्रक्रिया है जिससे की विवृद्ध वयक्तिक कुशलता के माध्यम द्वारा उसे अधिक सामाजिक मूल्य प्राप्त होता है"[1]
(Education is the process of re-construction or reconstitution of experience, giving it a more socialized value, through the medium of increased individual efficiency.)
शिक्षा को संदर्भित करते हुए डीवी ने अपने जो विचार दिए हैं उसमें वैयक्तिक कुशलता तथा सामाजिक मूल्यों की प्राप्ति का एक आधार भाषा भी सिद्ध होती है। शिक्षार्थी अपने विचारों द्वारा तथा भाषिक

[1] शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि, डॉ. एल के ओड़, पृष्ठ संख्या ७२

कौशलों के आधार पर किसी भी बिंदु को व्याख्यायित पुनर्व्याख्यायित करता है। भाषिक दक्षता जितनी अधिक होगी विचारों में उतनी ही वस्तुनिष्ठता परिलक्षित होगी।

डीवी वर्तमान परिस्थितियों की बात करते हुए कहते हैं की बालक सदा वर्तमान में रहता है। अतः भविष्य को आधार मानकर उस पर किसी भी प्रकार का विचार थोपना उचित नहीं है, इसलिए अध्यापक का कर्तव्य है कि वह छात्र के वयक्तिक विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए प्रभावकारी ढंग से भाषागत तत्वों की रचना एवं पुनर्रचना करने की क्षमता उत्पन्न करने वाले वातावरण का विकास करें।

भाषा शिक्षण की प्रारंभिक अवस्था में अध्यापक बालक की रुचि (interest), क्षमता (efficiency), आदतों (habits), सहज प्रवृतियों को ध्यान में रखते हुए भाषा अधिगम व्यूह की संकल्पना तैयार करें।

"डीवी चार मूलभूत रुचियों (four basic interests) को शिक्षा का आधार मानता है। वे चार रुचियां इस प्रकार है-

- वार्तालाप अथवा विनिमय की रुचि।
- जिज्ञासा अथवा नवीन वस्तुओं की खोज करने की रुचि।
- निर्माण की रुचि और
- कलात्मक अभिव्यक्ति की रूचि।

विनिमय की रुचि सामाजिक अभिव्यक्ति का सबसे आसान तरीका है और इस तरह भाषा शिक्षा प्रदान करने का महत्तम साधन है "[2] । इन रुचियों को भाषा अधिगम का सोपान मानना जरा भी गलत प्रतीत नहीं होता, अतः इसे आधार मानकर अध्यापक को चाहिए की क्रमिक रूप में वह ऐसे भाषागत बिंदुओं का अध्यापन आरंभ करें जिसमें शिक्षार्थी अपनी सक्रियता शीघ्र ही सुनिश्चित कर लें। जिसके कारण वह भाषागत पदों के समतुल्य अन्य पदों की खोज स्वयं आरंभ करने लगे साथ ही उनमें निर्माण की रुचि भी उत्पन्न हो। अर्थात शिक्षार्थी उन भाषागत तत्वों से संबंधित पदों के निर्माण में सक्रियता प्रदर्शित कर कुछ नूतन पदों के माध्यम से भी कलात्मक अभिव्यक्ति प्रकट कर सकते हो।

भाषा अधिगम के लिए अध्यापक ऐसे सामाजिक वातावरण का निर्माण करें जिसके फलस्वरूप शिक्षार्थी की शक्तियां उदित होती हो। आरंभ में यह शक्तियां अविकसित होती हैं, किंतु जब वे अन्य लोगों के साथ वार्तालाप या वैचारिक विनिमय का संबंध कायम करते हैं तब उनकी शक्तियों का विकास प्रारंभ हो जाता है। भाषा अधिगम के कंस्ट्रक्टिवविस्म सिद्धांत के अनुसार अध्यापक का प्रमुख कार्य ऐसी परिस्थितियां निर्माण करना है, जो शिक्षार्थी के लिए प्रभावपूर्ण अनुभव प्राप्त करने के लिए उपयुक्त है। डीवी ज्ञान प्राप्ति के लिए आगमन विधि को सर्वोत्तम मानते हैं, क्यूँकि आगमन विधि में छात्र के स्वयं प्रयत्नों द्वारा ज्ञान अर्जित किया जाता है।

डीवी ने अपने आगमन विधि के 5 सोपान उल्लिखित किए हैं-[3]

---

[2] शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि, डॉ. एल के ओड़, पृष्ठ संख्या ७४.

[3] शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि, डॉ. एल के ओड़, पृष्ठ संख्या ८१.

- क्रिया
- समस्या
- प्रदत्त का संकल्प
- प्राक्कल्पना निर्माण
- परीक्षण या मूल्यांकन

अध्यापक को चाहिए कि इन सोपानों की संकल्पना के साथ पाठ योजना तैयार करें जिससे छात्रों में उत्तम परिणाम देखने को प्राप्त हो।

अभ्यास प्रश्न

1. डीवी का सिद्धांत किस नाम से जाना जाता है?
2. 'कंस्ट्रक्टिविज्म' शब्द का क्या अर्थ है?
3. डीवी शिक्षार्थी के किन गुणों की बात करते हैं?

1.4 जीन पियाजे (Jean Piaget 1896-1980)

जीन पियाजे एक प्रमुख स्विस मनोवैज्ञानिक थे, जिन्होंने प्राणी विज्ञान जूलॉजी में प्रशिक्षण प्राप्त किया था। अल्फ्रेड बिने (alfred Binet) के साथ उन्होंने बालकों के बुद्धि परीक्षणों पर भी कार्य किया है। बिने की बुद्धि परीक्षण प्रयोगशाला में कार्य करते हुए ही इन्होंने बालकों के संज्ञानात्मक विकास पर कार्य करना प्रारंभ कर दिया था। सन 1923 से 1932 के बीच में अपने पांच पुस्तकों का प्रकाशन किया, जिसमें उन्होंने संज्ञानात्मक विकास के सिद्धांत का प्रतिपादन किया। संज्ञानात्मक विकास का सिद्धांत वस्तुतः बौद्धिक विकास (intellectual development) से संबंधित है, इसका तात्पर्य बालकों में किसी संवेदी सूचना (sensory information) को ग्रहण करके उस पर चिंतन करने तथा क्रमिक रूप से उसे इस योग्य बना देना है जिसके फलस्वरूप वह विभिन्न परिस्थितियों में अपने संज्ञान (cognition) का प्रयोग करते हुए समस्याओं का आसानी से समाधान कर सके।

पियाजे के अनुसार बालक वास्तविकता के स्वरूप का निर्धारण मात्र परिपक्वता स्तर (maturation level) या अपने अनुभव (self-experience) के आधार पर ही नहीं करता है, अपितु स्वरूप का निर्धारण दोनों (परिपक्वता अस्तर तथा अनुभव) की अंतः क्रिया (interaction) द्वारा निर्धारित होती है। संज्ञानात्मक विकास (cognitive development) के अध्ययन के क्षेत्र में पियाजे का सिद्धांत एक अभूतपूर्व सिद्धांत माना गया है। उन्होंने बालकों के चिंतन एवं तर्कणा (thinking and reasoning) शक्ति के विकास के जैविक (biological) तथा संरचनात्मक (structural) तत्वों पर बल डालकर संज्ञानात्मक विकास (cognitive development) की व्याख्या की है।

1.4.1 संज्ञानात्मक विकास का सिद्धांत: जीन पियाजे (Theory of cognitive development)

पियाजे ने अपने इस सिद्धांत के विकास क्रम की चार अवस्थाएं (four stages) बताई हैं, इसलिए इसे चार अवस्था सिद्धांत (four stages theory) भी कहा जाता है।

इन अवस्थाओं की व्याख्या करते हुए ही वह बौद्धिक विकास (intellectual development) की संज्ञानात्मक प्रक्रिया को बताते है। वे चार अवस्थाएं इस प्रकार हैं-

1. संवेदी पेशीय अवस्था (Sensory motor stage)
2. पूर्व संक्रियात्मक अवस्था (Pre operational stage)
3. ठोस संक्रियात्मक अवस्था (Concrete operational stage)
4. औपचारिक संक्रियात्मक अवस्था (Formal operational stage)

i. संवेदी पेशीय अवस्था (Sensory motor stage) -जन्म से 2 वर्ष तक की अवस्था संवेदी पेशीय अवस्था कहलाती है। इस अवस्था में शिशु अन्य क्रियाओं के अतिरिक्त शारीरिक रूप से चीज़ों को इधर-उधर करना, वस्तुओं की पहचान करने की कोशिश करना, किसी चीज को पकड़ना और उसे प्रायः मुंह में डालकर उसका अध्ययन करना आदि प्रमुख होता है। विकास क्रम की दृष्टि से देखने पर ज्ञात होता है कि बालक 8 से 12 महीने की अवधि तक उद्देश्य (goal) तथा उस तक पहुंचने के साधन (means) में अंतर करना प्रारंभ कर देते हैं। 12 से 18 महीने की अवधि में वस्तुओं के गुणों को अपने बार बार के त्रुटियों से सीखने की कोशिश करता है। इस अवधि की अंतिम अवस्था अर्थात 18 से 24 महीने तक की अवस्था में बालक वस्तुओं के प्रति चिंतन करना तथा सीधे दृष्टिगोचर (observable) नहीं होने वाली वस्तुओं के प्रति अनुक्रिया करना भी प्रारंभ कर देता है। अब बालकों में स्थायित्व (object permanence) के गुण दिखाई देने लगते हैं।

ii. **1.4.3 पूर्व संक्रियात्मक अवस्था (Pre Operational Stage)** -2 वर्ष से 7 वर्ष तक की अवस्था पूर्व संक्रियात्मक अवस्था कहलाती है इसे प्रारंभिक बाल्यावस्था (early childhood) की अवस्था भी कहा जाता है। पियाजे ने इस अवस्था को पूर्व संप्रत्ययात्मक अवधी (pre conceptual period) तथा अंतर्दर्शी अवधी (intuitive period) में विभाजित किया है।

(क) पूर्व संप्रत्ययात्मक अवस्था (Pre-conceptual period) - 2 वर्ष से 4 वर्ष तक की इस अवधि में बालक सूचकता (signifiers) विकसित कर लेते हैं, इस सूचकता को बालक अनुकरण (imitation) तथा खेल (game) के माध्यम से सीखते हैं। सुचकता अर्थात बालक जब यह समझने में समर्थ होने लगे कि वस्तु (object), शब्द (words), प्रतिमा (image) तथा चिंतन (thinking) किसी चीज के लिए किया जाता है। इस उम्र के बालकों में चिंतन के पलटावी गुण (trait of reversibility) भी देखने को नहीं मिलता है।

प्रारंभ में बालक निर्जीव वस्तुओं जैसे- वाहन, पंखा, हवा, पानी इत्यादि को सजीव समझने लगता है। जिसे पियाजे ने जीववाद (animism) की संज्ञा दी है। पियाजे ने बालकों की आत्मकेंद्रित (egocentric) भावना पर भी प्रकाश डाला है। पियाजे के अनुसार बालक अपने ही विचारों को सत्य स्वीकार करता है। उसे विश्वास होने लगता है वह जो कुछ भी सोचता है, सिर्फ वही सत्य है। वह अपने क्रियाओं के साथ-साथ यह महसूस करने लगता है कि उसके आसपास की वस्तुएं तथा वातावरण भी वैसे ही क्रियाएं कर रहा है। जैसे की भागते समय यह सोचना की आसपास के पेड़-पौधे, सूरज, चंद्रमा सब मेरे साथ भाग रहे हैं। किसी खिलौने को देखने पर यह मानना कि वह खिलौना भी मुझे देख रहा है, जैसी बातों में विश्वास होने लगता है। बालकों में उत्पन्न यही चिंतन का भाव ही आत्म केंद्रित (egocentrism) कहलाती है। पारिवारिक तथा सामाजिक रुप में संपर्क होने से आत्मकेन्द्रिता की यह भावना न्यून होने लगती है

(ख) अन्तर्दर्शी अवधि (Intuitive Period) -इस अवधि का समय 4 से 7 वर्ष तक का माना गया है। इस अवधि के बालकों में चिंतन तथा तर्कणा शक्ति पहले की अपेक्षा अधिक परिपक्व हो जाती है। वह अब भाषा तथा गणित की सामान्य संक्रियाएं करने लगते हैं, किंतु वह अभी भी संक्रियात्मक नियमों से अनभिज्ञ होते हैं।

iii. **ठोस संक्रियात्मक अवस्था (Concrete Operational Stage) -**7 वर्ष की उम्र से प्रारंभ होकर 12 वर्ष तक संक्रियात्मक अवस्था का काल माना गया है। इस अवस्था की विशेषता है कि बालक ठोस वस्तु के प्रत्यक्ष होने पर या उससे संबंधित प्रतिमानों के आधार पर मानसिक संक्रियाएं करके समस्या का समाधान करने लगते हैं। किंतु उन्हीं वस्तुओं से संबंधित शाब्दिक कथन के रूप में समस्या प्रस्तुत करने पर वह किसी निष्कर्ष पर पहुंचने में असमर्थ हो जाते हैं। जैसे- दो वस्तुओं को देखकर वह छोटे बड़े का अंतर बता सकते हैं, किंतु यदि इन वस्तुओं का नामकरण करके कोई समस्या प्रस्तुत की जाए या शाब्दिक कथन किया जाए तब उनकी असमर्थता दिखाई देती है। इस उम्र के बालकों के चिंतन में पलटावी गुण देखने को मिलने लगता है।

iv. **औपचारिक संक्रियात्मक अवस्था (Formal operational stage) -**इस अवस्था का समय 11 वर्ष की उम्र से व्यस्कावस्था तक माना गया है। इस उम्र के बालकों के चिंतन में क्रमबद्धता (systematization), लचीलापन (flexibility), तथा प्रभावयुक्त (effectiveness) तथ्य दिखाई देने लगता है। अब वह वस्तुनिष्ठता तथा वास्तविकता से पूर्ण चिंतन प्रारंभ कर देते हैं।

v. पियाजे के अनुसार औपचारिक संक्रियात्मक अवस्था का संबंध बालकों के शिक्षा स्तर से सीधा संबंधित होता हैa जिन बालकों का शिक्षा स्तर न्यून होगा उनमें संक्रियात्मक चिंतन का भी निम्न स्तर देखने को मिलेगा, किंतु उच्च शिक्षा स्तर वाले बालकों में इसका उन्नत स्वरूप देखने को मिलता है।

vi. भाषा अधिगम के परिप्रेक्ष्य में यह अवस्था अधिक महत्वपूर्ण है। इस अवस्था में बालकों को भाषा के विभिन्न अंगों, स्वरूपों तथा संरचनाओं से जोड़ना काफी सुगम हो जाता है।

1.4.2 पियाजे का सिद्धांत तथा भाषा अधिगम (Piaget theory and language learning)

पियाजे के सिद्धांत के अनुसार बालक भाषा अधिगम के लिए आत्मसातकरण (accommodation) तथा समायोजन (assimilation) इन दोनों का प्रयोग करते हैं। बालकों में यह देखा जाता है कि संपर्क स्थापित करने के लिए ही वह भाषा का प्रयोग नहीं करते हैं। अगर ऐसा होता तो वह एकांत अवस्था में, जब कोई उनके आस-पास ना हो तब किसी प्रकार के बातचीत में संलिप्त नहीं दिखाई पड़ते। पियाजे ने बालकों के इस प्रकार के बातचीत को आत्मकेंद्रित वाक् (egocentric speech) तथा संपर्क स्थापित करने वाली भाषा को सामाजिक वाक् (socialized speech) का नाम दिया है। उन्होंने बालकों के आत्मकेंद्रित वाक् के तीन प्रकारों का भी वर्णन किया है।

- **आवृत्ति (Repetition) -** इसका संबंध ऐसी वाणी से है, जिसे बालक सिर्फ आनंद एवं सुख के लिए बोलते हैं। जो प्रत्यक्षतया किसी व्यक्ति या वस्तु की ओर निर्देश न करती हो। उदाहरण के रूप में जब सात-आठ महीने का बालक किसी ध्वनि को बार-बार बोलता है। जैसे 'मां' 'मां', 'पा' 'पा', 'चा' 'चा' इत्यादि, किंतु वह प्रत्यक्ष रूप से इन ध्वनियों का संबंध स्थापित नहीं कर पाता।
- **आत्मभाषण (Monologue) -** इसका संबंध ऐसे वार्तालाप से है, जिसे बच्चे खेलते समय प्रयोग में लाते हैं। उदाहरण- अकेले या एकांत में खेलते समय बालक के द्वारा प्रयोग की जाने वाली भाषा।
- **सामूहिक आत्मभाषण (Collective monologue) -**इसका संबंध ऐसे वार्तालाप से है, जब बच्चे समूह में होकर खेलते तो हैं, लेकिन जरूरी नहीं कि उनकी बातें एक दूसरे से संबंधित हो। उदाहरण- खेल के मैदान में या समूह में बोले बोले जाने वाली वाणी।

पियाजे विचारों को मुख्य (primary) तथा भाषा को गौण (secondary) मानते हैं। उनके अनुसार विचार पहले आता हैं और उसके बाद भाषा का विकास होता है। बालक पहले स्कीमा (schema) के द्वारा इस संसार को समझते हैं फिर इससे संबंधित विचारों का निर्माण करते हैं, और उसके बाद अपनी समझ विकसित कर विचारों को व्यक्त करते हैं। जबकि चोमस्की के अनुसार बालकों में भाषा समझ के जन्मजात गुण पाए जाते हैं। जिसे चोमस्की ने भाषा ग्रहण साधन language acquisition device-LAD) का नाम दिया है।

जब बालक छोटा होता है तब वह स्वयं को इस संसार का केंद्र समझता है। जिसके कारण वह अपनी वाणी को व्यक्तिगत नहीं रख पाता है, जबकि प्रौढ़ लोगों में संसार के प्रति समझ बन चुकी होती है, इसलिए वह आत्मकेंद्रित वाक् (egocentric speech) का प्रयोग नहीं करते हैं।

आत्म केंद्रित वाक् के स्व-केंद्रित (self-centred) होने का मुख्य कारण यह है कि बालकों में आस-पास के वातावरण को अन्य व्यक्तियों के दृष्टिकोण से देखने की क्षमता नही होती है। बालक प्रायः उन्हीं चीजों

या वस्तुओं के बारे में बात करते हैं, जो उनके महत्व की होती है। पियाजे के अनुसार संज्ञानात्मक विकास तथा सामाजिक अनुभव होने के बाद आत्मकेंद्रित वाक् स्वतः समाप्त होने लगती है। इसका एक मुख्य कारण यह भी है कि आसपास के लोग बालकों की इन बातों पर अपनी असहमति (disagreement) व्यक्त करने लगते हैं, जिसके कारण बालकों में यह समझ विकसित होने लगती है कि किसी चीज के प्रति और भी बहुत से दृष्टिकोण हो सकते हैं।

पियाजे ने भाषा विकास (language development) और भाषा तथा विचारों (language and thoughts) के संबंध में कहा है कि विचार का सृजन भाषा से पहले होता है। क्योंकि भाषा भाव प्रकट करने का एकमात्र तरीका है, जबकि विचारों का बनना शारीरिक अंगों के संचालन पर निर्भर करता है, न की भाषा पर। भाषा की आवश्यकता तब होती है जब बालकों में भाषा सीखने की योग्यता उत्पन्न हो जाती है, जो केवल विचारों को भाषा के अधीन करने का काम करती है। भाषा किसी भी व्यक्ति को उन सभी चीजों के बारे में बात करने का अवसर प्रदान करती है जो उस समय वहां उपस्थित ना हो। पियाजे ने यह भी बताया है की भाषा सभी प्रकार के मानसिक संक्रिया (mental conditions) को समझाने में सक्षम नहीं रहती। उदाहरण के रूप में प्रायः लोगों को यह भी बोलते हुए पाया जाता है कि किसी अनुभव को बतलाने के लिए या व्यक्त करने के लिए उनके पास शब्द नहीं है अर्थात वह कई बार शब्दों के माध्यम से अपने विचारों को व्यक्त करने में असफल रहते हैं।

1.4.3पियाजे-सिद्धांत का शैक्षिक निहितार्थ

शिक्षाविदों ने पियाजे द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत को शिक्षा के लिए काफी महत्वपूर्ण बताया है। भाषा शिक्षक इन सिद्धांतों में निहित अर्थ को समझ कर भाषा शिक्षा को विशेष दिशा प्रदान कर सकते हैं। पियाजे ने बालक को सक्रिय शिक्षार्थी (active learners) के रूप में स्वीकार किया है। अतः शिक्षार्थी की आवश्यकता (need), प्रेरणा (motivation) तथा रुचि (interest) को ध्यान में रखते हुए शिक्षण कार्य किया जाना चाहिए। 7 से 11 वर्ष की अवस्था में संज्ञानात्मक विकास का स्तर बढ़ जाता है, जिससे वे संरक्षण (conservation), संबंध (relations) तथा वर्गीकरण (classification) से संबंधित समस्याओं को हल करने लगते हैं। अतः शिक्षक इस अवस्था तथा योग्यता को ध्यान में रखते हुए जटिल मानसिक संक्रियाओं को अधिक बढ़ा सकते हैं, जिससे बौद्धिक विकास में तीव्र वृद्धि प्राप्त किया जा सके। पियाजे ने खेल के महत्व को भी स्वीकार किया है, तथा बताया है कि इससे बालकों में संज्ञानात्मक संपन्नता (cognitive competence) विकसित होती है। किशोरों में औपचारिक संक्रियात्मक चिंतन के स्तर को बढ़ाने के लिए उच्च स्तर की शिक्षा प्रदान की जाए। उन्होंने इस बात पर विशेष बल दिया है कि शिक्षार्थियों को अपनी ही क्रियाओं द्वारा एक नई समझ विकसित करने में काफी मदद मिलती है। अतः शिक्षार्थियों को हर कदम पर मदद नहीं करनी चाहिए। क्योंकि ऐसा करने से उनमें स्वायत्तता तथा आत्मविश्वास जैसे गुणों का विकास नहीं हो पाता है, इसलिए शिक्षक को चाहिए की सभी तथ्यों को ध्यान में रखकर शिक्षण व्यूह-रचना का निर्माण करें।

अभ्यास प्रश्न

4. संज्ञानात्मक विकास का सिद्धांत किससे संबंधित है?
5. 'संज्ञानात्मक' शब्द को परिभाषित कीजिए?
6. संज्ञानात्मक विकास की चार अवस्थाओं के नाम लिखिए?

1.5 लेव वाइगोत्स्की (Lev Vygotsky, 1896-1934)

रूसी मनोवैज्ञानिक वाइगोत्स्की ने सामाजिक संस्कृति दृष्टिकोण से संज्ञानात्मक विकास का प्रगतिशील विश्लेषण प्रस्तुत किया है। वस्तुत: वाइगोत्स्की ने बालक के संज्ञानात्मक विकास में सामाजिक कारकों (जैसे परिवार समाज विद्यालय मित्र मंडली परिवेश) तथा भाषा को महत्वपूर्ण कारक माना है। उनका मत था की संज्ञानात्मक विकास कभी भी एकाकी नहीं हो सकता, यह भाषा विकास (language development), सामाजिक विकास (social development), यहां तक की शारीरिक विकास (physical growth) के साथ-साथ सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ (social-cultural perspective) में होता है, इसलिए वाइगोत्स्की बालकों के संज्ञानात्मक विकास में सामाजिक अंत:क्रिया को एक मूलभूत अंग स्वीकार करने पर बल देते हैं। उनका मानना है कि ज्ञान निर्माण की प्रक्रिया में समुदाय एक केंद्रीय भूमिका के रूप में कार्य करता है, अतः वाइगोत्स्की के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धांत को सामाजिक संस्कृतिक सिद्धांत (socio-cultural theory) भी कहा जाता है।

1.5.1 वाइगोत्स्की के सिद्धांत तथा संप्रत्यय (Vygotsky's theory and concepts)

वाइगोत्स्की का सिद्धांत यह बताता है की संज्ञानात्मक विकास एक अंतर्वैयक्तिक सामाजिक परिस्थिति (interpersonal social context) में पूर्ण होती है, इस प्रकार उन्होंने भाषा अर्जन की संवादात्मक दृष्टि की नीव स्थापित की। वाइगोत्स्की के मतानुसार अधिगम प्रक्रिया में सामाजिक अंत:क्रिया की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इस प्रक्रिया में बालकों को उनकी वास्तविक विकास के स्तर (level of actual development) से संभावित विकास के स्तर (level of potential development) की ओर ले जाने का प्रयास किया जाता है। वास्तविक विकास स्तर का तात्पर्य ऐसी अवस्था से हैं जहां बालक बिना किसी मदद के किसी भी समस्या को हल कर पाते हैं। जब की संभावित विकास से तात्पर्य ऐसी अवस्था से है जिसमें बालक सार्थक एवं महत्वपूर्ण व्यक्तियों की सहायता से किसी कार्य को करने में सक्षम हो पाते हैं । वाइगोत्स्की ने इसे समीपस्थ विकास का क्षेत्र (zone of proximal development) की संज्ञा दी है। वाइगोत्स्की ने बताया है कि किसी भी प्रकार के नए ज्ञान के निर्माण में या किसी नई भाषा को सीखने में समाज निर्देशित अंतर्क्रिया (socially mediated interaction) की भूमिका महत्वपूर्ण होती है उनके सिद्धांत का समर्थन जेरोम ब्रूनर (Jerome Bruner) ने भी किया है। उनके अनुसार बालक का वातावरण और आसपास के लोग उसकी भाषा विकास में सहायक होते हैं। उन्होंने भाषा को एक मनोवैज्ञानिक

साधन के रुप में देखा और बताया कि इसके द्वारा बालक किसी भी चीज़ के प्रति अपनी समझ विकसित करता है तथा आसपास के प्रौढ़ तथा कुशल व्यक्ति (more experienced and knowledgeable adults and peers) उसकी इस अधिगम प्रक्रिया में सहायता करते हैं। जब बालक प्रौढ़ व्यक्तियों तथा साथियों के साथ संवादात्मक क्रिया में सम्मिलित होते हैं तब वे उन संवादों (dialogues) को आत्मसात (internalise) कर लेते हैं, जिसका प्रयोग वह बाद में स्वयं के विचार (thoughts) को निर्देशित करने के लिए आंतरिक संभाषण (internal speech) के रूप में करते हैं। उदाहरण- एक बालक किसी कार्य को करते समय अपनी मां द्वारा दी गई निर्देश को ध्यान पूर्वक सुनता है तथा बाद में जब स्वतंत्र पूर्वक वह ऐसे किसी कार्य को करना प्रारंभ करता है तब पुनः उस निर्देशों का अनुसरण करता है। वाइगोत्स्की ने अपने सिद्धांत में 'समीपस्थ विकास का क्षेत्र' (zone of proximal development) का वर्णन किया है।

1.5.2 समीपस्थ विकास का क्षेत्र (Zone of proximal development)

यह एक महत्वपूर्ण संप्रत्य है, जो यह बताता है कि कोई बालक स्वयं के स्तर तथा किसी अन्य कुशल व्यक्तियों की सहायता एवं मार्गदर्शन से क्या प्राप्त करने में सक्षम हो सकते हैं। उदाहरण के रुप में मान लिया जाए की एक बालक भाषा के किसी विशेष बिंदु पर व्याकरणगत नियमों पर आधारित वाक्य संरचना बनाने में कठिनाई महसूस करता है, लेकिन जब उसे किसी कुशल व्यक्ति की सहायता प्राप्त होती है तब वह इसे आसानी से करने में सक्षम हो जाता है। वाइगोत्स्की ने इसे 'पाठ बांधना' (scaffolding) की संज्ञा दी है। स्काफोल्डिंग का तात्पर्य बालकों में प्रगतिशील तरीके से उच्च समझ तथा अंततःविशेष अनुभव प्रदान करने वाले अधिगम प्रक्रिया में प्रयुक्त विभिन्न निदेशक तकनीकों से है। इस प्रक्रिया में शिक्षक छात्रों को क्रमिक स्तर से तात्कालिक सहायता उपलब्ध कराता है, जो बालकों में उच्च स्तर की समझ तथा कौशल विकसित करने में सहायता प्रदान करती है। यह बालकों में उत्पन्न समस्या तथा अधिगम के अंतराल को कम करने में भी मदद करता है। उदाहरण के रूप में जैसे किसी बालक को रेफ तथा हलंत युक्त 'र' के नियमों का ज्ञान नहीं होने से इस अर्धाक्षर से बनने वाले शब्दों के उच्चारण में बार-बार समस्या महसूस करता है लेकिन किसी के द्वारा जब उसे उचित सहयोग तथा 'र' के नियमों की जानकारी प्राप्त होती है तब वह स्वतंत्र रूप से उच्चारण करने में समर्थ हो जाता है । जब बालक किसी वस्तु या व्यक्ति से संपर्क स्थापित करता है तथा अन्य स्वनियंत्रित क्रियाएँ (self-regulated activities) करता जाता है तब उसकी समस्त गतिविधियां एक दुसरे से संबंधित होती जाती है, जो एक प्रकार से कार्य उपलब्धि का मानसिक प्रस्तुतीकरण कहलाती है।

1.5.3 वाइगोत्सकी और भाषा विकास (Vygotsky and language development)

वाइगोत्स्की भाषा विकास के लिए सामाजिक अंतः क्रिया को एक जिम्मेदार कारक के रूप में देखते हैं। उनके अनुसार अर्थपूर्ण संवादात्मक प्रक्रिया के द्वारा जब संपर्क स्थापित किया जाता है तब भाषा विकास में विशेष सहायता प्राप्त होती है। उन्होंने वाह्य जगत से संपर्क स्थापित करने के लिए भाषा को एक महत्वपूर्ण साधन माना है । उनके अनुसार बालकों के संज्ञानात्मक विकास में भाषा की दो महत्वपूर्ण

भूमिकाएं हैं**:** पहला यह कि इसके द्वारा व्यक्ति बालको तक समस्त सूचनाएं हस्तांतरित (transfer) कर पाता है तथा दूसरा की भाषा स्वयं में बौद्धिक आत्मसात करने का बहुत ही सशक्त साधन है**।** वाइगोत्स्की ने भाषा विकास के 3 स्वरूपों की चर्चा की है-

i. **सामाजिक वाक् (Social speech) -**वाह्य संपर्क स्थापित करने के लिए के अन्य के साथ संवाद स्थापित करने की क्रिया सामाजिक वाक् कही जाती हैं **।** यह जन्म से 2 वर्ष तक की अवधि तक होता है और इसे वाह्य संभाषण (external speech) भी कहा जाता है**।**

ii. **आंतरिक संभाषण (Internal speech) -**यह अंतरण 3 साल से 7 साल के बीच होता है**।** इसमें बच्चे आपस में बातचीत करना सीख लेते हैं और इसके बाद आत्म बातचीत (self-talk) बालकों का स्वभाव बनता जाता है फिर वह बिना स्पष्ट बोले ही कई कार्य करने की क्षमता विकसित कर लेते हैं। आत्म बातचीत संज्ञानात्मक विकास की नीव मानी गई है।

iii. **आंतरिक संभाषण (Inner speech) -**आत्म बातचीत (self-talk) बालकों को स्व निर्देशन में सहायता प्रदान करती है जैसे-जैसे बच्चे बड़े होते जाते हैं उनकी यह आत्म बातचीत अंतरीकृत होकर आंतरिक संभाषण (inner speech) में परिवर्तित होती जाती है, जो आगे की अवस्था में चिंतन के रूप में परिलक्षित होती है । पियाजे ने इस बातचीत को अपरिपक्व को तथा आत्म केंद्रित (egocentric speech) स्पीच कहा है। वाइगोत्स्की ने यह भी माना है कि जो बालक आत्म बातचीत अधिक करते हैं, वह अन्य की अपेक्षा सामाजिक रूप में अधिक दक्ष होते हैं। बालक इसका प्रयोग उच्च संवेगात्मक स्तर की क्रिया करने में भी करते हैं। वाइगोत्स्की ऐसे पहले मनोवैज्ञानिक हैं जिन्होंने बालकों के आत्म बातचीत (self talk) की धनात्मक (positive) भूमिका को स्वीकार किया है। संभवत: इन्हीं कारणों से वाइगोत्स्की को पियाजे के सिद्धांत के विस्तारक के रूप में भी जाना जाता है।

1.5.4 वाइगोत्स्की सिद्धांत का शैक्षिक निहितार्थ

वाइगोत्स्की के अनुसार भाषा अर्जन के लिए मात्र शब्दों पर बल देना ही पर्याप्त नहीं अपितु भाषा तथा विचारों पर आधारित परस्पर प्रक्रिया की आवश्यकता होती है। शिक्षक बालकों के दृष्टिकोण को समझ कर उनके भाषिक स्तर में सुधार ला सकते हैं। वाइगोत्स्की का कहना है कि बालक सामाजिक अनुभव द्वारा स्वयं ज्ञान निर्माण करते हैं और इस स्थिति में प्रौढ़ तथा अनुभवी व्यक्ति उसे मार्ग निर्देशन तथा सहायता पहुंचाते हैं। वायगोत्स्की के इस विचार का द्वितीय भाषा अध्ययन तथा शोध (second language learning and research) पर दूरगामी प्रभाव देखने को मिलता है, जो सांस्कृतिक (cultural) ऐतिहासिक (historical) तथा सामाजिक परिप्रेक्ष्य (social perspective) में सामाजिक अंतःक्रिया पर अत्यधिक हैं। यद्यपि वाइगोत्स्की ने प्रत्यक्षतया द्वितीय भाषा अर्जन (second language acquisition) पर टिप्पणी नहीं की है, किंतु मनुष्य की भाषा सीखने तथा संपर्क स्थापित करने की क्षमता का विश्लेषण करते हुए उन्होंने इसे परिभाषित किया हैं।

वाइगोत्स्की ने यह भी बताया है कि बालकों की वैयक्तिक विभिन्नता (individual differences) को ध्यान में रखते हुए कक्षा में उनकी सक्रिय सहभागिता सुनिश्चित किया जाना चाहिए। उन्हें ऐसी समस्या प्रदान की जानी चाहिए जिसमें वह अपने साथियों एवं शिक्षकों के सहयोग से समीपस्थ विकास के क्षेत्र को सशक्त बना सकें। ऐसा करने से वे आत्मानुशासन (self-control) के प्रति सजग भी रहेंगे। कक्षा में शिक्षकों को चाहिए कि वह सहयोगी अधिगम समूह (collaborative active learning group) का निर्माण करें जिसमें परस्पर समस्या-समाधान विधि से उच्च संज्ञानात्मक चिंतन (high cognitive thinking) विकसित करने में मदद मिल सके।

अभ्यास प्रश्न

7. वाइगोत्स्की ने अपने सिद्धांत में किन कारकों को महत्वपूर्ण माना है?
8. वाइगोत्स्की के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धांत को और किस नाम से जाना जाता है?
9. वाइगोत्स्की का 'पाठ बांधना (scaffolding)' से क्या तात्पर्य है?
10. डीवी मनोवैज्ञानिक क्रिया का अध्ययन समग्र रूप (as whole) में करने की बात करते हैं? (सत्य/असत्य)
11. डीवी ने संरचनावादी सिद्धांतों का कड़ा विरोध किया हैं? (सत्य/असत्य)
12. अधिगम प्रक्रिया सर्वाधिक तब होगी जब वह शिक्षार्थियों के रुचि से सम्बन्ध रखती हो? (सत्य/असत्य)
13. डीवी के अनुसार शिक्षा अनुभव का पुनर्निर्माण अथवा पुनर्रचना करने वाली प्रक्रिया है? (सत्य/असत्य)
14. पियाजे के संज्ञानात्मक विकास की चार अवस्थाएं बताई है? (सत्य/असत्य)
15. जन्म से 2 वर्ष तक की अवस्था संवेदी पेशीय अवस्था कहलाती है? (सत्य/असत्य)
16. पियाजे ने ठोस संक्रियात्मक अवस्था की कोई अवधि निर्धारित नहीं की है? (सत्य/असत्य)
17. वाइगोत्स्की के सिद्धांत में सामाजिक कारकों को महत्व नहीं दिया गया है? (सत्य/असत्य)
18. स्काफोल्डिंग से तात्पर्य अधिगम प्रक्रिया में प्रयुक्त विभिन्न निदेशक तकनीकों से है? (सत्य/असत्य)

1.6 अब्राम नोम चोमस्की (Avram Noam Chomsky-1928)

नोम चोमस्की एक अमेरिकी भाषाविद हैं जो संज्ञानात्मक वैज्ञानिक तथा दार्शनिक के रूप में भी जाने जाते हैं जिन्होंने भाषा को समझने के क्षेत्र में तीव्र परिवर्तन किया है। इन्होंने मानव के जैविक गुणों को आधार मानकर मनोभाषीय सिद्धांत का विकास किया है और इसी आधार पर बताया कि भाषा मानव की एक जैविकीय आधारित संज्ञानात्मक क्षमता है अर्थात भाषा अर्जन भी एक प्रकार से जैविकीय क्रिया (biological action) हैं जैसे देखना, सुनना इत्यादि। उनका मानना है कि मानव मस्तिष्क में एक जन्मजात लक्षण होते हैं जो भाषा और व्याकरण की समझ के प्रति जिम्मेदार होते हैं।

नोम चोमस्की के भाषा संबंधित विस्तृत विचार संगणक (computer), गणित (mathematics) तथा विज्ञान (science) पर भी अपना प्रभाव रखते हैं। चोमस्की ने 1957 में वाक्य विन्यास (syntactic structure) प्रकाशित किया। इस अवधि में भाषा उत्पत्ति की संकल्पना स्किनर के व्यवहारवादी दृष्टिकोण से प्रभावित थी। स्किनर ने इस बात का समर्थन किया था कि नवजात शिशु का मस्तिष्क कोरे कागज (tabula rasa) जैसा होता है जिसे भाषा अर्जन के लिए केवल स्मरणीकरण (rote memorisation), नकल (imitation) तथा अनुकरण (mimicry) की आवश्यकता होती है।

चोमस्की ने स्किनर समर्थित मत को नकारते हुए तर्क दिया कि नवजात शिशु का मस्तिष्क कोरे कागज के समान नहीं होता बल्कि उनमें भाषा अर्जित करने की जन्मजात क्षमता (inborn ability) होती है जो उसे दुनिया के किसी भी भाषा को सीखने के लिए तत्पर रखती है। इसी जन्मजात क्षमता के कारण बच्चे किसी भी भाषा को सीख सकते हैं।

चोमस्की ने 1973 में वाक्यविन्यास सिद्धांत का वर्णन (aspects of the theory of syntax तथा 1973 में तार्किक संरचना (logical structure) द्वारा अपने भाषा संबंधी विचारों को आधार प्रदान किया जिसे संज्ञानात्मक विज्ञान (cognitive science) में होने वाले कार्यों से समर्थन भी प्राप्त हुआ।

जिस तरह से डार्विन के विकासवाद के सिद्धांत को जीव विज्ञान के क्षेत्र में एक क्रांति के रुप में देखा जाता है उसी तरह चोमस्की के कार्य भी मनोविज्ञान (psychology), मानव विज्ञान (anthropology) तथा तंत्रिका विज्ञान (neurology) के क्षेत्र में अपना बहुत प्रभाव रखते हैं।

1.6.1 चोमस्की-भाषा अधिगम सिद्धांत (Chomsky's language learning theory)

चोमस्की ने भाषा अर्जन (language learning) के लिए सहजवादी सिद्धांत (nativist approach) को स्वीकार किया है। उनके अनुसार भाषा एक अद्भुत उपलब्धि है जो मानव मस्तिष्क की संरचना में जन्मजात होती है। वह ऐसे पहले भाषाविद है जो वैज्ञानिक समुदाय को यह समझाने में सफल रहे की व्यवहारात्मक दृष्टिकोण के विपरीत बालकों में भाषा अर्जन के प्रति सक्रिय प्रतिभागिता (active participation) होती है। भाषा के व्याकरणिक पक्षों पर अपने विचार केंद्रित करते हुए उन्होंने तर्क दिया है कि वाक्य संरचना से संबंधित नियमों को प्रत्यक्ष रुप से सिखाना अत्यधिक कठिन होता है। बालक अनायास ही स्वयं से अनगिनत वाक्यों को समझ पाते हैं तथा उन्हें अभिव्यक्त भी करते हैं। जब वह भाषा के जटिल नियमों के प्रति अग्रसर होते हैं तब वे नए-नए वाक्यों के निर्माण करने की क्षमता भी विकसित

कर लेते हैं जिसका उर्ध्वगामी परिणाम उनके भाषा कौशल के रूप में दिखाई देता है। इस अद्भुत क्षमता का कारण बताते हुए उन्होंने कहा है कि प्रत्येक बालक भाषा ग्रहण साधन (language acquisition device-LAD) के साथ जन्म लेता है जो बालकों में एक जन्मजात जैविक क्षमता (in born biological potentials) के रूप में निहित होती है। यह क्षमता ही उन्हें पर्याप्त शब्द भंडार अर्जित करने में, शब्दों एवं व्याकरण का शुद्ध रूप में संयोजन करने में तथा वाक्यों के अर्थ को समझने की क्षमता प्रदान करता है।

उनके इन विचारों पर अब प्रश्न यह उठता है कि कैसे भाषा ग्रहण साधन (LAD) बालकों को विश्व की किसी भी भाषा को सीखने की क्षमता प्रदान करता है? चोमस्की ने समाधान प्रस्तुत किया कि भाषा ग्रहण साधन मानव मस्तिष्क का एक काल्पनिक अंग है जो वैश्विक व्याकरण (universal grammar) के नियमों को संग्रहित रखता है और यह प्रत्येक मानवीय भाषा (human language) में प्रयुक्त होता है। छोटे बालक इस वैश्विक व्याकरण का प्रयोग भाषा की समझ विकसित करने में करते हैं और उन्हें इससे भाषा के व्याकरणिक वर्गीकरण और संबंधों (grammatical categorisation and relationship)को समझने में मदद मिलती है।

चुकी LAD पूर्णत: भाषा संसाधन पर केंद्रित होता है, इसलिए बालक अपने लघु प्रयास से ही किसी भी भाषा को अर्जित कर लेते हैं। सहज वादी विचार (nativist idea) भाषा अधिगम हेतु व्यवहारवादियो द्वारा अपनाए जाने वाली विधि (अर्थात भाषा की संरचना को लघु विन्यासों में तथा विस्तारपूर्वक प्रशिक्षण के माध्यम से भाषा अधिगम की विधि) को अनुपयुक्त मानता है।

चोमस्की के सिद्धांत का वर्तमान भाषा विकास के दृष्टिकोण पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा है लेकिन इस सिद्धांत की कुछ न्यूनताएँ भी दृष्टिगत होती है। उनके भाषा विकास के जैविकीय आधार पर विद्वानों ने आक्षेप भी प्रकट किया है।जैसे वैश्विक व्याकरण का संप्रत्यय बहुत ही जटिल है जो कि भाषा की बृहत प्रकृति, नियम तथा संरचना को स्पष्टतया व्याख्यायित नहीं करता है। लोगों के मन में प्रश्न उत्पन्न होता हैं कि कैसे एक ही वैश्विक व्याकरण संसार की सभी भाषाओं को सीखने का आधार हो सकती है? इसके अतिरिक्त भाषा अधिगम में बालकों की संस्कृति, समाज तथा व्यवस्थिति को कोई महत्व नहीं दिया गया है जबकि यह माना जाता है कि यह भाषा अधिगम के परिप्रेक्ष्य में इनकी महत्वपूर्ण भूमिका होती है अर्थात चोमस्की के विचार वाइगोत्स्की के विचारों से भिन्नता रखते हैं। चोमस्की ने इस बात पर बल दिया है कि किसी भी संस्कृति में रहने वाले बालक बस एक ही प्रकार से भाषा को सीखते हैं।

अभ्यास प्रश्न

19. चोमस्की ने बालकों में किस जन्मजात क्षमता की बात की है?
20. चोमस्की ने भाषा अर्जन के लिए किस सिद्धांत को स्वीकार किया है?
21. भाषा ग्रहण साधन (LAD) क्या है?

1.7 स्टीफन क्रेशन (Stephen Krashen-1941)

स्टीफन क्रेशन एक भाषाविद, शिक्षाविद, अनुसंधाता तथा राजनीतिक विचारक है। इन्होंने अपना मुख्य शोध कार्य भाषा-अधिगम के क्षेत्र में किया है। भाषा अधिगम के प्रति इन्होने जो अपने विचार प्रस्तुत किए उसे भाषा अर्जन सिद्धांत (language acquisition theory) कहा जाता है। इनके अनुसार भाषा अर्जन के लिए व्यापक व्याकरणिक नियमों को जानने की आवश्यकता नहीं होती है और ना ही अत्यधिक परिश्रम वाले अभ्यास की । हमें जिस किसी भी भाषा को सीखना होता है, उस भाषा में अर्थपूर्ण अंतःक्रिया करने की आवश्यकता होती है और यह सब स्वाभाविक स्थिति एवं संचार में होना चाहिए ना कि किसी निर्मित परिस्थिति में। स्वभाविक स्थिति में वक्ता नियमों के प्रकार पर बल न देकर अपितु संचारित किए जाने वाले अर्थ पर विशेष बल देता है। इसलिए भाषा अर्जन के लिए सबसे अच्छी विधि वह कही जाएगी जो प्राकृतिक हो और न्यूनतम तनाव में समझ तथा अर्थ निर्माण करने में सहायता प्रदान करती हो। इस स्थिति में परिणाम के जल्दी प्राप्त होने की आशा नहीं होती है बल्कि यह उम्मीद की जाती है कि बालक तभी किसी भाषा को सीख पाएगा जब वह ऐसा करने के लिए पूर्णत: तैयार हो।

क्रेशन का भाषा अर्जन सिद्धांत पांच केंद्रीय प्राक्कल्पनाओं पर आधारित है-

1. भाषा अर्जन अधिगम प्राकल्पना (The acquisition learning hypothesis)
2. भाषा प्राकृतिक-क्रम प्राक्कल्पना (the natural order hypothesis)
3. भाषा निरीक्षण प्राक्कल्पना (the monitor hypothesis)
4. भाषा निवेश प्राकल्पना (the input hypothesis)
5. भाषा भावनात्मक निष्पादन प्राकल्पना (the affective filter hypothesis)

i. **भाषा अर्जन अधिगम प्राकल्पना (The Acquisition Learning Hypothesis)-** भाषा मुख्यत: दो तरह की योग्यताओं के कारण विकसित होती है- पहला अर्जन (acquisition) तथा दूसरा अधिगम (learning)।

भाषा अर्जन (Acquisition) - भाषा अर्जन एक अवचेतन प्रक्रिया (subconscious process) है । जब हम किन्हीं बिंदुओं पर बात कर रहे होते हैं तब यह बिना हमारे जागरूक हुए भी निरंतर कार्य करती रहती हैं। ऐसी स्थिति में सूचना (information) तथा ज्ञान (knowledge) के साथ-साथ हमारा अवचेतन मन (subconscious mind) उन भाषिक तत्वों (language elements) को भी सीख रहा होता है, जिसे भाषा अर्जन (language acquisition) की संज्ञा दी जाती है। इस अर्जन से प्राप्त ज्ञान हमारे अवचेतन मन में स्थिर जाता है। अर्जन की यह प्रक्रिया बच्चे तथा व्यस्क इन दोनों के ही विषय में संभव है। भाषा अधिगम शुद्धतया एक चेतन प्रक्रिया (conscious process) है। जब हम कुछ भी सीखते हैं, तब हमें यह पता होता है की क्या, कब और कैसे सीखना है। अशुद्धियां तथा सुधार चेतन अवस्था में ही हो रहा होता है, इसलिए यह भाषा अधिगम का मुख्य अंग माना जाता है।

ii. **भाषा प्राकृतिक-क्रम प्राक्कल्पना (the natural order hypothesis) -**भाषा के किसी भी बिंदु को अपनी इच्छा तथा आवश्यकता के अनुसार अर्जित किया जाता है, जैसे- व्याकरण के अनेक नियमों में से कुछ नियम हम पहले सीख जाते हैं और कुछ विलंब के साथ। सीखने की इस प्रक्रिया में क्रम हमेशा एक जैसा नहीं होता। प्रत्येक व्यक्ति अलग अलग क्रम में भाषा को अर्जन करता है शोधकर्ताओं ने भी भाषा के प्राकृतिक क्रम पर कई विचार दिए हैं, जैसे कि किसी भी भाषा के साधारण नियम जल्दी सीख लिए जाते हैं तथा कठिन नियमों के अर्जन मैं विलंब लगता है। इन्हीं तथ्यों को आधार मानकर पाठ्यक्रम निर्माता (curriculum developer) भाषा अधिगम को साधारण से जटिल (simple to complex) की ओर प्रेरित करते हैं।

iii. **भाषा निरीक्षण प्राक्कल्पना (The monitor hypothesis) -**भाषा जब चेतनावस्था में सीखी जाती है तब वह हमेशा ही निरीक्षक या संपादक के रूप में उपलब्ध रहती है।निरंतरता (fluency) तथा स्पष्टता (clarity) के साथ किसी भाषा को सीखना तब संभव हो पाता है जब हम भाषा अर्जन कर लेते हैं। व्यक्ति द्वारा बोली जाने वाली किसी भी भाषा के वे वाक्य स्वतः ही उसके मस्तिष्क में स्थान बना लेते हैं, इसलिए हमारे द्वारा जब भी वाक्य संरचना की जाती है तब आंतरिक रुप से निरीक्षित तथा मूल्यांकित होती हैं। भाषा अर्जन (language acquisition) के माध्यम से भाषा बोलने में निरंतरता (fluency) प्राप्त होती है

iv. **भाषा निवेश प्राकल्पना (The input hypothesis) -** भाषा (language) अर्जन (acquire) कर पाने के बाद ही किसी भी व्यक्ति के द्वारा प्रदान की जाने वाली सूचनाओं (information) तथा संदेशों (massages) को हम समझ पाते हैं या उसके उद्देश्यों तक पहुंच पाते हैं। यह प्राक्कल्पना इस सिद्धांत का सबसे महत्वपूर्ण अंग है, इसकी वजह से ही हम भाषा अर्जन तथा भाषा शिक्षा के प्रश्नों के उत्तर दे पाते हैं।

क्रेशन के इस सिद्धांत के अनुसार द्वितीय भाषा शिक्षण (second language learning) हेतु बालकों को तब अनुमति प्रदान की जानी चाहिए जब वे ऐसा करने में सक्षम हो। हमें यह समझना चाहिए कि कोई भी भाषा तभी संवर्धित होगी जब हम उसमे संवाद तथा समझ का निवेश करें, ना कि इस हेतु बालकों को बलपूर्वक ऐसा करने के लिए दबाव बनाये। क्रेशन के अनुसार निवेश (input) तथा उत्पाद (products) के बीच ऐसे कई अवसर होते हैं जब बच्चे वास्तविक कथन प्रस्तुत करते हैं। क्रेशन ने इसे मौन अवधि (silent period) कहा है जो सूचनाओं को संयोजित करने में सहायक होता है। अगर इस अवधि में रुकावटें आती है तब बच्चों के मन में भाषा अधिगम के प्रति नकारात्मकता उत्पन्न होने लगती है। भाषा अधिगम हेतु बच्चों को जिस प्रकार से भी निवेश (input) दिया जाए, वह स्वयं में पूर्ण होना चाहिए अर्थात उनकी रुचियों तथा प्रासंगिकताओं से संबंधित होनी चाहिए।

v. **भाषा भावनात्मक चयन प्राकल्पना (the affective filter hypothesis) -** भाषा अर्जन प्राप्त करने हेतु मात्र सूचनाओं तथा संदेशों को समझना ही पर्याप्त नहीं है हमें उन संदेशों के प्रति इस प्रकार उन्मुख होना चाहिए जिससे कि वे सभी सूचनाएं भाषा ग्रहण साधन तक पहुंच जाए।

ऐसा करना इसलिए आवश्यक है क्योंकि बहुत से संदेश बीच में ही सांद्रित या चयनित (filter) हो जाते हैं। सूचनाओं की यह चयन प्रक्रिया भावनात्मक चयन के माध्यम से होती है, जो भाषा का निवेश होते समय एक प्रकार से द्वार (gate) का स्वरूप ले लेता है। चयन की यह प्रक्रिया हमारे मनोस्थिति के अनुसार खुलता और बंद होता रहता है। अगर हम संदर्भित तथा रोचकता पूर्ण अधिगम वातावरण में हैं तब ज्यादा से ज्यादा निवेश भाषा ग्रहण साधन तक पहुंच पाता है लेकिन विपरीत स्थितियों में यह निवेश न्यूनतम हो जाता है। ऐसी स्थिति में किए गए किसी भी प्रकार के प्रयत्न फलदायी होते हैं। इन्हीं कारणों से कक्षा में तनावरहित (anxiety free) तथा उत्साहपूर्ण (pleasant) छात्र सहायक वातावरण (students supporting environment) बनाना आवश्यक हो जाता है। ऐसी स्थिति में मौन अवधि (silent period) साइलेंट पीरियड का महत्व भी बढ़ जाता है।

1.7.1 क्रेशन के सिद्धांत का शैक्षिक निहितार्थ

क्रेशन के भाषा अधिगम संबंधित सिद्धांत में कई विशेषताओं के साथ कुछ न्यूनताएँ भी परिलक्षित होती हैं। इनके सिद्धांत में भावनात्मक चयन (affective filter) के विकास की स्पष्ट व्याख्या नहीं की गई है और ना ही इस सिद्धांत का पूर्ण रुप से अध्ययन किया जा सकता है। अर्थात् मूल रूप से यह सिद्धांत अस्पष्ट हैं। यह सिद्धांत प्रथम भाषा अर्जन से किसी भी प्रकार का संबंध नहीं रखता है और ना ही इसमें बालकों के व्यक्तिगत अंतर के बारे में चर्चा की गई है। इन सभी न्यूनताओं के बाद भी क्रेशन का यह सिद्धांत भाषा अधिगम की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। इनके सिद्धांत में भाषा अधिगम की सभी सहज प्रवृतियों पर विचार केंद्रित किया गया हैं। किसी भी भाषा को समझकर सीखना या सीखकर समझना, इन दोनों ही स्थितियों पर इन्होंने अपने विचार दिए हैं। शिक्षक इनके विचारों का अच्छे से मूल्यांकित करके कक्षा अधिगम परिस्थिति में सकारात्मक बदलाव ला सकते हैं। अतः कहीं न कहीं, भाषा अधिगम हेतु इनके द्वारा व्याख्यायित पांचों प्राक्कल्पनाएँ अपने सार्थक महत्त्व का प्रतिपादन करती हैं।

अभ्यास प्रश्न

22. स्टीफन क्रेशन ने किस अधिगम सिद्धांत का प्रतिपादन किया है?
23. क्रेशन के अनुसार अर्जन (acquisition) तथा अधिगम (learning) में क्या अंतर है?
24. क्रेशन ने किस प्राक्कल्पना को सबसे अधिक महत्वपूर्ण माना है ?

1.8 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप यह जान चुके हैं कि पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों ने अपने-अपने सिद्धांतों के अनुसार भाषा अधिगम की विभिन्न विधियों पर प्रकाश डाला हैं। प्रत्येक विधि की अपनी कुछ

विशेषताएं हैं तो कुछ न्यूनताएँ भी । किंतु मुख्य बात यह है कि अध्यापकों को इन विधियों की विशेषताओं पर अपना ध्यान केंद्रित करते हुए कक्षा-अधिगम-परिस्थिति को उन्नत स्वरूप देने के लिए उचित सिद्धांत का आलंबन करना चाहिए। डीवी ने अधिगम को एक सक्रिय प्रक्रिया मानकर शिक्षार्थियों के रुचियों को ध्यान में रखते हुए प्रासंगिक शिक्षण की बात की हैं। वह बालकों को निरंतर क्रियाशील बनाए रखने में विश्वास रखते हैं तथा भाषिक दक्षता के माध्यम से बालकों को वस्तुनिष्ठता के प्रति गमन कराना चाहते हैं। कहने का आशय हैं कि बालकों की अभिव्यक्ति जितनी सुदृढ़ होगी उनके विचार भी उतने ही वस्तुनिष्ट रूप में अभिव्यक्त होंगे। डीवी ने अपने सिद्धांत में अनुभव की बात की है और कहा है कि बालक अपने अनुभव स्वयं विकसित करते हैं। पियाजे ने भी अपने आत्मसातकरण तथा समायोजन के संप्रत्यय के माध्यम से डीवी की बातों का समर्थन करते हुए दिखाई पड़ते हैं। पियाजे ने अपने सिद्धांत में बालकों के संज्ञान के ऊपर ध्यान केंद्रित करते हुए संज्ञानात्मक विकास की चार अवस्था सिद्धांत का प्रतिपादित किया है। पियाजे विचारों को मुख्य तथा भाषा को गौण मानते है, उनके अनुसार विचारों का सृजन भाषा-सृजन के पूर्व की अवस्था है।

वाइगोत्स्की अपने अधिगम सिद्धांत में और आगे बढ़ते हुए सामाजिक कारकों की बात करते हैं। वाइगोत्स्की इस बात पर बल देते हैं कि परिवार, समाज, विद्यालय, मित्र-मंडली, परिवेश के द्वारा भाषा अधिगम समृद्ध होती है। अपने सामाजिक-सांस्कृतिक-सिद्धांत में भाषा अधिगम की प्रक्रिया में सामाजिक अंतःक्रिया को मूल अंग स्वीकार करते हैं। अधिगम की प्रकृति समझाने के लिए चोमस्की ने जैविकीय गुणों को आधार मानकर मनोभाषीय सिद्धांत का प्रतिपादन किया है। चोमस्की का मानना है कि बालकों में जन्मजात ही भाषा-ग्रहण-साधन विकसित होता है, जो भाषा और व्याकरण की समझ के प्रति जिम्मेदार कारक है। क्रेशन ने अधिगम के संबंध में बताया है कि भाषा अर्जन के लिए विशिष्ट व्याकरण के नियमों का ज्ञान होना आवश्यक नहीं है। बालक अनायास ही अनेक अर्थपूर्ण क्रियाएं करता है जो पूर्णतया लोगों के परस्पर अंतर्क्रिया पर आधारित होती है। इस प्रकार विभिन्न सिद्धांतों के माध्यम से मनोवैज्ञानिकों ने अधिगम की प्रकृति को परिभाषित करने का महत कार्य किया हैं। चूँकि अधिगम शिक्षण प्रक्रिया के परिणाम के रूप में देखा जाता हैं इसलिए यह शिक्षक, छात्र और तात्कालिक परिस्थिति पर आश्रित दिखाई पड़ती हैं, ऐसे में शिक्षक की भूमिका महत्वपूर्ण हो जाती हैं।

1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

- सत्य
- सत्य
- सत्य
- सत्य
- सत्य

- सत्य
- असत्य
- असत्य
- सत्य

1.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Young, Gerald (2011). Development and causality: Non-Piagetian Perspective. New York, NY: Springer. ISBN: 978-1-441-99421-9.
2. Woolfolk, Anita (2008). Educational Psychology. New Jersey, US. ISBN: 978-81-317-0196-6.
3. Yule, George (2009). The Study of Language, Cambridge University press, New York, ISBN: 978-0-521-74024-1.
4. ओड़, डॉ एल. के. (२०१४), शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि, राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, राजस्थान, ISBN: 978-93-5131-092-1.
5. सफाया, डॉ. रघुनाथ. (२०११), संस्कृत शिक्षण, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकुला, हरियाणा.
6. सिंह, अरुण कुमार.(२०१२), शिक्षा मनोविज्ञान, भारती भवन, पटना, ISBN: 978-81-7709-986-7.

1.11 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री

1. Cognitive Development in the School Years (1979), Edited by Ann Floyd, Open University Press, London, ISBN: 0-85664-816-7.
2. Reading for Meaning (2008), Edited by Sonika Kaushik, NCERT, New Delhi.
3. The Child Language And The Teacher, written by Krishna Kumar, (1994), NBT, India, ISBN: 978-81-237-2863-6.
4. संस्कृत शिक्षण, डॉ. रघुनाथ सफाया, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकुला, हरियाणा
5. संस्कृत शिक्षण (२००८), डॉ. रामशकल पाण्डेय, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
6. उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान (२०१०), प्रो. एस. पी. गुप्ता, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद
7. संस्कृत शिक्षक संदर्शिका (२०१२), राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली

1.12 लघुत्तरीय प्रश्न

1. डीवी के अनुसार अधिगम में वातावरण की क्या भूमिका होती है?
2. बालकों के दृष्टिकोण में सकारात्मक बदलाव कब उत्पन्न होते हैं?
3. डीवी ने किन चार मूलभूत रुचियों को शिक्षा का आधार माना है?
4. डीवी द्वारा बताए गए अधिगम के पांच सोपान लिखिए?
5. जीन पियाजे ने किस विषय में प्रशिक्षण प्राप्त किया था?
6. पियाजे ने संज्ञानात्मक विकास पर कार्य करना कब प्रारंभ किया?
7. संज्ञानात्मक विकास का सिद्धांत किससे संबंधित है?
8. बालक वास्तविकता के स्वरूप का निर्धारण किस प्रकार करते हैं?
9. पूर्व संक्रियात्मक अवस्था किन दो भागों में विभाजित है ?
10. ठोस संक्रियात्मक अवस्था की मुख्य विशेषता क्या है?
11. आत्मसात करण तथा समायोजन में क्या अंतर है ?
12. पियाजे ने सामाजिक वाक् किसे कहा है?
13. आत्मकेंद्रित वाक् की प्रकृति किस प्रकार की होती है?
14. पियाजे ने बालक को किस रूप में स्वीकार किया है?
15. वाइगोत्स्की के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धांत को और किस नाम से जाना जाता है?
16. वाइगोत्सकी का संज्ञानात्मक विकास किन परिस्थितियों में पूर्ण होता है ?
17. समीपस्थ विकास का क्षेत्र किसे कहते हैं
18. आंतरिक संभाषण की क्या विशेषता है ?
19. चोमस्की ने भाषा अर्जन के लिए किस सिद्धांत को स्वीकार किया है?
20. चोमस्की के अनुसार वैश्विक व्याकरण को परिभाषित कीजिए?
21. क्रेशन के अनुसार भाषा अर्जन की पांच केंद्रीय प्राक्कल्पना क्या है?

1.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. डीवी के सिद्धांत की विस्तारपूर्वक व्याख्या कीजिए?
2. डीवी ने भाषा अधिगम हेतु वातावरण की भूमिका पर अत्यधिक बल क्यों दिया है?
3. डीवी के सिद्धांत से आप क्या समझते हैं?
4. पियाजे के संज्ञानात्मक विकास को किस प्रकार परिभाषित किया है?
5. वाइगोत्स्की ने अधिगम सिद्धांत में सामाजिक कारकों को क्यों महत्वपूर्ण माना है?
6. वाइगोत्स्की के सामाजिक-सांस्कृतिक सिद्धांत की व्याख्या कीजिए?
7. चोमस्की के अनुसार भाषा ग्रहण साधन की विवेचना कीजिए?
8. स्टीफन क्रेशन के सिद्धांत की महत्वपूर्ण विशेषताओं को लिखिए?

इकाई 2 - भाषा अधिगम के विभिन्न भारतीय सिद्धांत

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3.1 पाणिनी द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त
2.3.2 वाक्य-पद-वर्ण सिद्धान्त का निरुपण
2.3.3 पाणिनी मत का शैक्षिक निहितार्थ
2.4.1 भर्तृहरि द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत
2.4.2 भर्तृहरि के भाषा अधिगम संबंधी विचार
2.4.3 भर्तृहरि के विचारों का शैक्षिक निहितार्थ
2.5.1 न्याय शास्त्र तथा भाषा शिक्षण
2.5.2 न्याय शास्त्रीय भाषा शिक्षण सिद्धांत
2.5.3 न्याय शास्त्र का शैक्षिक निहितार्थ
2.6.1 मीमांसा दर्शन तथा शिक्षण
2.6.2 मीमांसा शास्त्रीय भाषा शिक्षण
2.6.3 मीमांसा दर्शन का शैक्षिक निहितार्थ
2.7 सारांश
2.8 शब्दावली
2.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.11 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री
2.12 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

भाषा, भावनाओं तथा विचारों को अभिव्यक्त करने का सशक्त माध्यम है। मानव प्राचीन काल से ही ऐसा प्रयास करता आया है कि भावनाएं उसी रुप में व्यक्त हो, जिस रुप में वह अनुभूत की जाती है। भाषा अभिव्यक्ति का प्राणस्वरूप है, अतः फलस्वरूप उत्तरोत्तर विकास को प्राप्त करती हुई कालांतर में संस्कृत, प्राकृत, पाली, लैटिन इत्यादि अनेक रूपों में समृद्ध हुई। भाषा के उत्तरोत्तर विकास में भाषिक व्यवहार,

अध्ययन-अध्यापन, ग्रंथादि लेखन की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही हैं। इसकी सहायता से मानव एक दूसरे को भाषा के स्वरूप से परिचित कराता आया है। समय-समय पर उत्पन्न विसंगतियों या समयांतराल के कारण भाषा के स्वरूप में किंचित अंतर देखने को भी प्राप्त होता है, लेकिन एक बात सदा से ही सामान्य रही है, जो यह है कि इसके निश्चित स्वरूप का बोध कराने के लिए विभिन्न प्रक्रियाओं का अपनाया जाना। आज भी समृद्ध भाषा अधिगम हेतु विभिन्न सिद्धांत अपनाए जाते हैं, जिसके द्वारा यह पुष्ट किया जाता है कि शिक्षार्थी को भाषा के निश्चित स्वरूप का बोध हो। अतः इससे संबंधित विभिन्न भारतीयविद्वानों ने स्व-स्व-विचारानुसार भाषा अधिगम सिद्धांतोंकी व्याख्या करते हुए तत्हेतु उपयुक्त विधियों का सुझाव दिया हैं । इस इकाई के अंतर्गत आप विभिन्न भारतीय सिद्धांतों की पृष्ठभूमि को समझकर भाषा अधिगम संबंधी उनके विचारों के अनुसार अधिगम परिस्थिति का निर्माण करने में कुशल होंगे।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप-

- भारतीय भाषा-अधिगम के संप्रत्यय को समझ सकेंगे।
- भाषा अधिगम संबंधी भारतीय विद्वानों के विचारों को जान सकेंगे।
- पाणिनी द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत से अवगत होंगे।
- भर्तृहरि द्वारा प्रतिपादित भाषा सिद्धांत को जान सकेंगे।
- न्याय दर्शन तथा भाषा शिक्षण के संबंधों से परिचित होंगे।
- मीमांसा दर्शन तथा शिक्षण के सिद्धांतों को समझ सकेंगे।

2.2.1 पाणिनी द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त

पाणिनी के शिक्षा संबंधित विचार उनकी महक कृतियों में देखने को मिलता है, वैसे तो पाणिनीयुगीन शिक्षा पद्धति तथा वर्तमान शिक्षा पद्धति में अनेक विभिन्नताए दृष्टिगोचर होती हैं, लेकिन विशेषतया दृष्टिपात करने पर अनेक समानताएं भी देखने को मिलती हैं । चूकिं अधिगम परिस्थिति के केंद्र में शिक्षक शिक्षार्थी तथा विषय स्थित हैं । विषय से तात्पर्य वातावरण, पाठ्यबिंदु तथा विधियों से हैं, अतः कितना भी समयांतराल क्यों न हो गया हो, तदपि पाणिनीयुगीन विचार आज भी अपनी प्रासंगिकता स्थापित किए हुए हैं । प्राचीनकाल से ही 'वेद' धरोहर राशि के रूप में स्वीकृत हैं । वेद को वर्ण राशि का स्वरूप भी माना गया हैं अर्थात् 'वर्ण' वेद की सबसे छोटी तथा प्रारंभिक अवयव हैं ।

पाणिनी के अनुसार शिक्षा का संबंध वर्णों के उच्चारण से हैं । "उच्चारणम् बलम दीयते" यह उक्ति भी इस संदर्भ को ध्वनित करती है । भाषा-अधिगम के दृष्टि से विचार करें तो पाणिनी सर्वप्रथम अभिव्यक्ति-प्रधान भाषा के स्वरूप का बोध कराने की बात करते हैं । उनके अनुसार बालकों को समृद्ध भाषा अधिगम हेतु

'वाक्य>पद>वर्ण' सिद्धांत के प्रति गमन कराना चाहिए। उनके इस सिद्धांत से अभिव्यक्ति प्रधान भाषा की महत्ता सिद्ध होती है। बालक जब अपने विचारों को अभिव्यक्त करने लगे तब उन्हें शब्दार्थ बोध के लिए प्रेरित करना चाहिए। अर्थात् लौकिक दृष्टि से विचार करने पर पाणिनी भाषा अधिगम की प्राकृतिक नियम का समर्थन करते हैं। उनके इस विचार को इस उदाहरण के द्वारा समझा जा सकता है। जैसे- कोई भी बीज सर्वप्रथम पादप के रूप में रूपांतरित होता है और क्रमिक रूप से पल्लवित पुष्पित तथा फलित भी। इसके बाद भी यदि हमें किसी प्रकार की कमी महसूस होती हैं तब तदुपरांत विभिन्न विधियों के अनुसरण से अनावश्यक तत्व को परिमार्जित तथा संशोधित करते हुए उस पौधे को और अत्यधिक समृद्ध स्वरुप प्रदान किया जात हैं। अतः इस उदाहरण को आधार मानकर बालकों को भी क्रमिक रूप में 'वाक्य>पद>वर्ण' सिद्धान्त क अनुसरण करते हुये भाषा अधिगम के प्रति अनुगमन कराना चाहिए।

2.3.2 वाक्य-पद-वर्ण सिद्धान्त का निरुपण

वाक्य- वाक्य से तात्पर्य विचारों की अभिव्यक्ति तथा उच्चारण से है, जो पारिवारिक तथा सामाजिक परिवेश में बालकों को सतत रूप से सुनने को मिलता है। इन वाक्यों को सुनकर उनमें श्रवण तथा धारण शक्ति का विकास होता है। कुछ समय पश्चात वह भी लघु-लघु वाक्यों में विचारों की अभिव्यक्ति करने लगते हैं, इस प्रकार उच्चारण श्रवण धारण की यह प्रक्रिया धीरे-धीरे आत्मसात होकर वस्तुओं तथा क्रियाओं से संबंधित विचारों की अभिव्यक्ति में भी प्रयुक्त होने लगती हैं।

पद- 'पद' का संबंध चुने गए ध्वनियों का उनके सामान्य तथा विशेष अर्थों में संयोग एवं प्रयोग से है। बालक जब पूर्व प्रयुक्त पदों का भिन्न स्थिति-परिस्थिति तथा विचार के संदर्भ में प्रयोग होते हुए देखता या सुनता हैं, तब उनमें भी प्रयुक्त पदों की विशेष विवेचना जानने की उत्कंठा उत्पन्न होती है। ऐसी स्थिति में शिक्षक छात्रों को इन पदों के विशेष अर्थों से परिचित कराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। व्यवहार में पदों के बार-बार सुनने से बालक भी उन पदों का उनके पदार्थ के साथ संयोग करना सीख जाता है। अर्थात् संक्षेप में कह सकते हैं कि 'पद' का संबंध विभिन्न परिस्थितियों में प्रयोग की जाने वाली क्षमता के विकास से है।

वर्ण- पदों के अवबोधन के पश्चात बालकों को वर्णों से परिचित कराना आवश्यक है। वर्णों से तात्पर्य लिखित रूप में व्यक्त किए जाने वाले उन चिन्हों से है, जिसके संयोग-विप्रयोग से नए-नए पदों का निर्माण होता है। अर्थात् वर्ण शिक्षण का लक्ष्य बालकों में नए-नए पदों के निर्माण की योग्यता का उत्पादन करना है। इस प्रकार से अब तक होने वाली मौखिक अभिव्यक्ति लिखित रूप में व्यक्त होनी प्रारंभ हो जाती है। लेखन का संबंध भाषा के संगठित तथा संरचित स्वरूपों का अनुसरण करते हुए विचारों को अभिव्यक्त करने से है। भाषा को संगठित तथा संरचित स्वरूप देने का कार्य व्याकरण के द्वारा पूर्ण होता है। अर्थात् भाषा-अधिगम की प्रक्रिया में व्याकरण के शिक्षा सर्वप्रथम ना देकर तब दिया जाना चाहिए, जब बालक अपने विचारों को मौखिक रूप से व्यक्त करने लगे। महर्षि पतंजलि ने भी पाणिनी के इन तर्कों का समर्थन करते हुए महाभाष्य में लिखा है- 'व्याकरणम् नामेयमुत्तरा विद्या" इस वाक्य से यह स्पष्ट होता है कि व्याकरण का क्रम शिक्षाशास्त्र के पश्चात आता है, अर्थात बालकों को शिक्षाशास्त्र के अधिगम उपरांत ही

व्याकरण शिक्षा के प्रति अभिमुख कराना चाहिए। यहां वर्णित शिक्षाशास्त्र को स्पष्ट करते हुए महर्षि सायण ने ऋग्वेद व्याख्या भूमिका में लिखा है- " वर्ण स्वराद्युच्चारणप्रकारो यत्रोपदिश्यते सा शिक्षा" अर्थात् अकारादि वर्ण, उदात्तादि स्वर, ह्रस्व-दीर्घादि मात्रा, स्थान-करण-प्रयत्न-अनुप्रदान रूप, उच्चारण माधुर्यादि विषयों को निरूपित करने वाला शास्त्र 'शिक्षाशास्त्र' कहा गया है।

2.3.3पाणिनी मत का शैक्षिक निहितार्थ

पाणिनी का यह सिद्धांत श्रवण-उच्चारण सिद्धांत का जा सकता है। उनके विचारों के अनुसार भाषा-अधिगम प्रक्रिया में कल्पना, उच्चारण, शुद्धता, प्रयोग तथा अभ्यास पर विशेष बल दिया जाना चाहिए। पाणिनी के शिक्षा संबंधी विचारों की स्पष्टतया प्रतीति पाणिनी शिक्षा तथा अष्टाध्यायी नामक ग्रंथ में पाई जाती है। इन ग्रंथों की अनेक कारिकायें तथा सूत्र ऐसे हैं, जो पाणिनी के मतों (विचारों) को समझने में सहायक सिद्ध होते हैं। "वाच उच्चारणे विधिम्" यह उक्ति अधिगम काल में शुद्ध उच्चारण की महत्ता को प्रतिपादित करती है।

"आत्मा बुद्ध्या सामर्थ्यार्थान् मनो युङ्क्ते विवक्षया।
मनः कायाग्निमाहन्ति स प्रेरयति मारुतम्॥

वस्तुतः यह श्लोक उच्चारण पूर्व होने वाले आंतरिक प्रयत्न को संदर्भित करता है, किंतु अधिगम के परिप्रेक्ष्य में यह अर्थ निकालना जरा भी गलत प्रतीत नहीं होता की "आत्मा पर्यावरणगत विषयों को जानकर मन को प्रेरित करती है, और मन शारीरिक अंगों में उर्जा का संचरण कर क्रिया करने को बाध्य करता है। अतः अध्यापक पर्यावरणगत परिस्थितियों को ध्यान में रखकर छात्रों को अधिगमार्थ प्रेरित करें। वर्ण उच्चारण की शुद्धता पर विशेष ध्यान देते हुए सभी आठ स्थानों से उच्चरित किए जाने वाले वर्णों का अभ्यास करना चाहिए[4]। उच्चारण के प्रति बालको में सकारात्मक आदतें विकसित की जानी चाहिए । जिस प्रकार व्याघ्र अपने पुत्र को बिना पीड़ा पहुंचाए अपने दातों से पकड़ कर यहां-वहां ले जाता है, वैसे ही अध्यापक भी अपने वाणी में शुद्धता प्रकट करें तथा बालकों को अस्पष्ट तथा अशुद्ध उच्चारण के प्रति सजग करें[5]। अधिगम प्रक्रिया को निर्देशित करते समय अध्यापकों को चाहिए कि विलंबित वृति तथा भाषिक प्रयोग में मध्यम वृति का अनुसरण करें। उच्चारण संबंधित शिक्षार्थी के गुण और अवगुणों पर चर्चा करते हुए बताया है कि शिक्षार्थी में उच्चारण के प्रति मधुरता, वर्णों की स्पष्टता, पद विभाग, सुस्वरता, स्थिरता तथा लय आदि गुणों को समावेशित किया जाना चाहिये[6] और अनभ्यस्त, अकंठस्थीकृत, शीघ्र उच्चारण जैसे अवगुणों से दूर रखना चाहिए। पाणिनी के सूत्र शैली तथा समास शैली कि विधियों के माध्यम से कठिन विषयों को समझाया जा सकता हैं। यह विधि कठिन विषय को दीर्धकालिक स्मरण रखने में अतीव सहायक सिद्ध होती

[4] अष्टौ स्थानानि वर्णानामुरः कण्ठः शिरस् तथा। जिह्वामूलं च दन्ताश्च नासिकौष्ठौ च तालु च॥ पाणिनीय शिक्षा॥१३॥
[5] व्याघ्री यथा हरेत् पुत्रान् द्रन्ष्ट्राभ्यां न च पीडयेत्। भीता पतनभेदाभ्यां तद्वद वर्णान् प्रयोजयेत्॥ पाणिनीय शिक्षा॥ २५॥
[6] माधुर्यमक्षरव्यक्तिः पदच्छेदस् तु सुस्वरः। धैर्यं लयसमर्थं च षडेते पाठका गुणाः॥ पाणिनीय शिक्षा॥ ३३॥

2.4.1 भर्तृहरि द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत

भर्तृहरि व्याकरणविद्, भाष्यकार, दार्शनिक, नीतिवेत्ता के रूप में विश्व विख्यात है । यद्यपि भर्तृहरि के जीवन विषय में अनेक भ्रांतियां ध्वनित होती है, किंतु यहां हमें उनके जन्मकाल गणना से कोई सार्थक प्रयोजन सिद्ध नहीं करना । यहाँ तो उनके ग्रंथों, कृतियों तथा विचारों पर ध्यान केंद्रित करते हुए भाषा अधिगम के परिप्रेक्ष्य में उनके अनुरोध को समझना आवश्यक है। व्याकरण तथा नीतिशास्त्र आधारित कृतियों में भर्तृहरि की बौद्धिकता का अद्भुत परिचय देखने को प्राप्त होता है। इन ग्रंथों में व्यक्त कुशल विचारों से मानव आज भी अपने परिवार, समाज तथा स्वयं को गौरवान्वित करता आया है । महाभाष्यदीपिका, वाक्यपदीयम्, भट्टिकाव्यम् , शतकत्रयम् आदि इनकी प्रमुख कृतियां हैं। यद्यपि भर्तृहरि के जीवनकाल तथा आधुनिक काल के शिक्षा व्यवस्था मैं अत्यधिक अंतराल तथा शैक्षिक अधिगम संबंधित परिस्थितियां भी बहुत भिन्न हैं, तथापि इनकी कृतियों में वर्णित इनके विचार आज भी अपनी प्रासंगिकता स्थापित किए हुए हैं । यही कारण है कि भर्तृहरि तथा इनके विचार शैक्षिक समाज तथा परिस्थितियों को पथ प्रदर्शित करती आ रही है।

2.4.2 भर्तृहरि के भाषा अधिगम संबंधी विचार

भर्तृहरि ने अपनी कृतियों में भाषिक तत्वों की विस्तृत व्याख्या करते हुए अपने विचार दिए हैं। इन भाषिक तत्वों के विचारों को समझकर इन के अनुसार भाषा अधिगम संबंधित व्यूह की रचना की जा सकती है। भर्तृहरि ने शब्द नित्यत्ववाद को स्वीकार किया है, तथा शब्द को ब्रह्म का वाचक कहा है। उनका मानना है कि शब्द ही अविद्या का नाश करने वाला है, इन्ही शब्दों से ही अर्थ की प्रतीति होती है, अतः शब्द तथा अर्थ में तादात्म्य (एकरूपता) माना जाता है। इसीलिए यह शब्द ब्रह्म वाचक कहा गया है। चूकिं शब्द हमारी अज्ञानता का विनाश करके ज्ञानचक्षु को उदघाटित करता है, इसलिए भर्तृहरि ने इसे अनादि निधनं कहा है। जो उत्पन्न तथा विनष्ट न होकर अथवा किसी भी क्रम में उत्पन्न होने वाले वर्णों का कारण होते हुए भी अर्थ (कार्य) रूप में भाषित होता है[7] ।

भर्तृहरि ने शब्द के दो भेद स्वीकार किए हैं- स्फोट तथा बैखरी वाक् । जब कोई विचार बुद्धि (मन) में अभिव्यंजित हो जिसे व्यक्ति मौन स्थिति में स्वयं समझा जा सके अर्थात् जो कारण स्वरूप हो उसे स्फोट कहा जाता है। जब यह स्फोट अर्थबोध के उद्देश्य से उच्चरित किया जाता है तब इसे ही बैखरी वाक् कहा जाता है। इन दोनों (स्फोट तथा बैखरी) का संबंध वक्ता तथा श्रोता, शिक्षक-शिक्षार्थी, अनुदेशक तथा अनुदेशन प्राप्तकर्ता से हैं । श्रोता पहले बैखरी वाणी के रूप में शब्दों को सुनता है और फिर अपनी बुद्धि इसमें स्फोट के माध्यम से अर्थ को समझता है । वक्ता पहले मन में सोचता है फिर बोलता है,

[7] अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्वं यदक्षरम्। विवर्तते-अर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः ॥ वाक्यपदीयम् ॥ 1 ॥

तथा श्रोता सुनकर समझता है । इसलिए सोचना तथा समझना यह मानसिक क्रियाएं स्फोट रूप में कही जाएंगी जबकि बोलना तथा सुनना अभिव्यंजक ध्वनि से संबंधित है, इसलिए यह वैखरी वाणी का रूप कही जाएगी। तात्पर्य है कि जिसमें प्रथम ज्ञान उत्पन्न होता है वह निमित्त है और जिससे बाद में ज्ञान उत्पन्न होता है वह प्रतिपादक है[8]।भर्तृहरि भाषा अधिगम की लक्षित प्रक्रिया पूर्ण करने के लिए क्रमशः वर्ण>पद>वाक्य का अवबोध कराने की बात करते हैं, जबकि पाणिनी सर्वप्रथम वाक्यबोध को उत्तम मानते हैं । भर्तृहरि ने वर्ण-पद-वाक्य के नियत क्रम को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि वर्णों से अलग पद की कोई सत्ता नहीं है और न ही वर्ण तथा पद से अतिरिक्त वाक्यों का कोई अस्तित्व। अर्थात् वर्ण ही पद और वाक्य है । अतः वर्ण नित्य है और उन्हीं से पद तथा वाक्य निर्मित होते हैं[9]। उदाहरण- जैसे सौ संख्या और एक संख्या परस्पर भिन्न है, तदपि एक संख्या का ज्ञान सौ संख्या की ज्ञान में सहायक है, वैसे ही वाक्य, पद तथा वर्ण परस्पर भिन्न होते हुए भी इनके अवबोध में वर्ण सहायक है[10]। तात्पर्य है कि जैसे दूध से दही का बनना क्रमिक परिवर्तन है बीज से वृक्ष का रूपांतरण क्रमिक है वैसे ही पहले वर्ण फिर पद फिर वाक्य ग्रहण बुद्धि का नियत कर्म है । कोई वैधानिक नियम भी इस प्रक्रिया में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं कर सकता । भर्तृहरि भाषा को एक अद्भुत शक्ति के रूप में स्वीकार करते हैं। अतः अधिगम की विधियों को जानने के लिए उनके द्वारा स्वीकृत प्रमाणों को भी समझना आवश्यक है-

आगम- आगम का संबंध शब्द और वेद से है। वेद वर्ण रूप राशि कहा गया है। भर्तृहरि कहते हैं कि बहुत से धर्माचरण संबंधी विषय ऐसे विषय हैं जिसे तर्क के बल पर सिद्ध नहीं किया जा सकता। उदाहरण- यज्ञ करने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है या नहीं? आग में दहकता क्यों होती है? इन दोनों वाक्यों का तात्पर्य अनुमान या किसी अन्य प्रमाण से सिद्ध नहीं किया जा सकता यह सिर्फ आगम के द्वारा ही संभव है। अतः जीवन की ऐसी परिस्थितियों के लिए छात्रों में उचित आत्मनिर्णय की क्षमता जैसे भाव विकसित करना चाहिए[11]।

प्रत्यक्ष- भर्तृहरि ने प्रत्यक्ष के दो भेद स्वीकार किए हैं- लौकिक एवं अलौकिक प्रत्यक्ष। लौकिक प्रत्यक्ष- इंद्रियों के सन्निकर्ष से उत्पन्न ज्ञान और बोध है। जैसे- नदी,पहाड़,वस्तु,पेड़-पौधे, प्राणी इत्यादि। अलौकिक प्रत्यक्ष उसे कहते हैं जब कोई वस्तु इंद्रियों से गृहित नहीं की जा सके, अर्थात इंद्रियों के माध्यम से जिसका ज्ञान संभव नहीं है, वह अलौकिक प्रत्यक्ष है। जैसे ईश्वर, परमाणु,शब्दब्रह्म आदि। इन भावों को महर्षियों ने अपने आर्ष नेत्रों के द्वारा देखा है। अधिगम की दृष्टि से देखने पर यह ज्ञात होता है कि भर्तृहरि

[8] द्वावुपादानशब्देषु शब्दौ शब्दविदो विदुः एको निमित्तं शब्दानामपरोऽर्थे प्रयुज्यते ।। वाक्यपदीयम् ।। 44 ।।

[9] न वर्णव्यतिरेकेण पदमन्यच्च विद्यते । वाक्य वर्णपादाभ्यां च व्यतिरिक्तं न किञ्चन ।। वाक्यपदीयम् ।। 72 ।।

[10] यथाद्यसंख्याग्रहणमुपायः प्रतिपत्तये। संख्यांतराणाम् भेदेऽपि तथा शब्दान्तरश्रुतिः ।। वाक्यपदीयम् ।। 87 ।।

[11] न चागमादृते धर्मस्तर्केण व्यवतिष्ठते। ऋषीणामपि यज्ज्ञानं तदप्यागमपूर्वकम् ।। वाक्यपदीयम् ।। 30 ।।

लौकिक प्रत्यक्ष तथा अलौकिक भावों के प्रति व्यक्त महर्षियों-विद्वतजनों के विचारों का अवबोध कराना स्वीकार करते हैं [12]।

अनुमान- अलौकिक प्रत्यक्ष का संबंध अनुमान से भी है। अनुमान विशेष अनुभव पर आधारित होता है। महर्षियों के आशीर्वचन भी इसी प्रमाण पर आधारित है। लोक व्यवहार में भी कई बार इस अनुमान का आश्रय ग्रहण करना पड़ता है। उदाहरण- किसी बालक को अंबा-अंबा सिखाने पर वह असमर्थतावश अव्यक्त 'वं' 'वं' बोलने लगता है, किंतु समझने वाले लोग उस अव्यक्त 'वं' 'वं' से अंबा-अंबा का तात्पर्य ग्रहण करते हैं [13]। अर्थात् भाषा अधिगम की स्थिति में भी बालकों द्वारा होने वाली अशुद्धियों पर सकारात्मक प्रतिपुष्टि देखकर उत्तरोत्तर ज्ञानावबोध कराना चाहिए।

अभ्यास- भर्तृहरि इसकी विशेषता बताते हुए लिखते हैं की लौकिक मणि तथा गिन्नी आदि की शुद्धता तथा मूल्य के तारतम्यता का ज्ञान जानकार स्वर्णकारों को ही होता है। वह चाहकर भी इसे बता नहीं सकते क्योंकि किसी वस्तु के विशेषता का ज्ञान तो वस्तु संबंधित अभ्यास पर ही निर्भर करता है [14]। अर्थात् अभ्यास शिक्षार्थियों को विशेष अनुभव प्राप्त कराने में सहायक है। इस निरंतर अभ्यास के द्वारा शिक्षर्थियों में सूझ उत्पन्न होती है।

प्रतिभा- प्रतिभा के संबंध में भर्तृहरि ने कहा है कि संज्ञा वाचक शब्दों में नियत संज्ञि (अर्थ) की प्रतीति होती है। अतः कल्पित पदार्थों से ज्ञेय (जाना जाने वाला) वाक्यार्थ ही प्रतिभा है। प्रतिभा की प्रकृति कुछ ऐसी है जो समय पर स्फुरित होती रहती है। जैसे- बसंत में कोयल के मीठे स्वर स्वयं हो जाते हैं । पक्षियों को घर बनाने की शिक्षा भी स्वयं आ जाती है । अतः अधिगम के संबंध में यह समझना आवश्यक है कि प्रतिभा शिक्षार्थी के अधिगम पूर्ण होने में सहायिका है। इस प्रतिभा के कारण शिक्षार्थियों में वैभिन्न्यता दृष्टिगोचर होती है।

2.4.3भर्तृहरि के विचारों का शैक्षिक निहितार्थ

भर्तृहरि ने बड़े ही मनोवैज्ञानिक रूप से अपने विचारों को व्यक्त किया है। भाषा अधिगम के परिप्रेक्ष्य में वर्ण-पद-वाक्य सिद्धांत हो या स्वीकृत प्रमाण । सभी अधिगम परिस्थितियों में अपनी महत्ता स्थापित करते दिखाई पड़ते हैं। शिशु जब बोलने की क्रिया में प्रथमतया प्रवृत्त होता है तब बोलने की यह शुरुआत वर्णों से ही प्रारंभ होती है, अनंतर शब्दों में परिणत होती है और फिर वाक्यों में रुपांतरित होकर विचारों में अभिव्यक्त होने लगती है । बालकों की शक्तियों को स्वीकार करते हुए प्रतिभा को विशेष स्थान दिया है। प्रतिभा विकसित करने का आधार शब्द (भाषा) को स्वीकार किया है तथा सीखने-सिखाने की प्रक्रिया में प्रत्यक्ष-अनुमान तथा अभ्यास विधि पर उचित बल देने का आग्रह किया है।

---

[12] वाक्यपदीयम् ।। कारिका संख्या 30 ।।

[13] देखें वाक्यपदीयम् ।। कारिका संख्या- १५२ ।।

[14] देखें वाक्यपदीयम् ।। कारिका संख्या- ३५ ।।

2.5.1 न्याय शास्त्र तथा भाषा शिक्षण

महर्षि गौतम को न्याय दर्शन के प्रवर्तक के रूप में जाना जाता है। न्याय का अर्थ परमाणु द्वारा तत्वों की परीक्षण करना है। अतः इसे तर्कशास्त्र तथा ज्ञानमीमांसा के रूप में भी जाना जाता है। न्याय दर्शन यह स्वीकार करता है कि किसी भी प्रकार का बंधन अविद्या के कारण उत्पन्न है और यह दुख का प्रतीक रूप भी है। जिसकी निवृत्ति केवल तत्वज्ञान से ही संभव है। न्याय वस्तुवाद (Materialism) को स्वीकार करता है। वस्तुवाद का तात्पर्य है कि जगत जिस प्रकार दृश्यमान है, उसकी उसी रुप में सत्ता मानी जाए । न्यायदर्शन का वस्तुवाद-सिद्धांत अद्वैतवाद का विरोधी है, जिसमें नाम रूपात्मक जगत की सत्ता स्वीकार नहीं की जाती है।

2.5.2 न्याय शास्त्रीय भाषा शिक्षण सिद्धांत

न्याय शास्त्र अविद्या (अज्ञानता) का नाश तत्वज्ञान से मानता है। ज्ञान ही समस्त सुखों का कारण है। बुद्धि, उपलब्धि तथा अनुभव यह तीनों ज्ञान के पर्याय के रूप में स्वीकृत है। न्याय शास्त्र के अनुसार ज्ञान का संबंध जानने वाला (ज्ञाता) तथा जिसका ज्ञान प्राप्त किया जाना है (ज्ञेय) से है। अर्थात् ज्ञाता और ज्ञेय के संबंध से ज्ञान उत्पन्न होता है। जब कोई व्यक्ति या ज्ञाता विषय (ज्ञेय) के संपर्क में आता है, तब इस ज्ञान का उद्भाव होता है। ज्ञान का एक अर्थ बुद्धि माना गया है, अतः बुद्धि का कार्य ज्ञेय पदार्थ को प्रकाशित करना है, कहा भी गया है "अर्थ प्रकाशको बुद्धि:" ।

न्याय दर्शन यह स्वीकार करता है कि अधिगम उचित रूप में तभी होगा जब ज्ञान उत्पन्न करने वाली सामग्री दोषहीन तथा स्पष्ट हो। अस्पष्ट तथा दोषयुक्त विधि से सम्यक ज्ञान उत्पन्न नहीं किया जा सकता। न्याय शास्त्र अनुव्यवसाय के द्वारा आत्मा के मानस प्रत्यक्ष को स्वीकार करते हुए कहता है कि आत्मा को भी मन के द्वारा ही ज्ञान होता है।

यह दर्शन स्मृति भिन्न ज्ञान को अनुभव मानता है और इसके यथार्थ अनुभव तथा अयथार्थ अनुभव के रूप में दो भेद स्वीकार करता है। किसी वस्तु को देखकर उसके नियत रूप का ज्ञान यथार्थ अनुभव है। अर्थात जो है उसको वैसा ही देखना। किसी वस्तु को देखकर भिन्न रूप में उसका ज्ञान होना अयथार्थ अनुभव कहा जाता है। न्याय दर्शन के चार प्रमाणों द्वारा शिक्षार्थी तक इस ज्ञान को हस्तांतरित किया जाता है। यह चार प्रमाण है- प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द प्रमाण । अयथार्थ ज्ञान भी तीन है- संशय, विपर्यय और तर्क। संदिग्ध ज्ञान को संशय, विपर्यय ज्ञान को मिथ्या, तथा 'ऐसा होने पर ऐसा परिणाम होगा' इस प्रकार के ज्ञान को तर्क कहा जाता है। अतः न्याय दर्शन यथार्थ तथा अयथार्थ ज्ञान के बोध के लिए इन प्रमाणों को हेतु के रूप में स्वीकार करता है

प्रत्यक्ष प्रमाण- इंद्रियों के सन्निकर्ष होने पर उत्पन्न ज्ञान प्रत्यक्ष ज्ञान कहलाता है। इंद्रिय सन्निकर्ष होने पर वस्तु इंद्रिय संवेदन के द्वारा मन पर अपनी छाप छोड़ देती है, जिसे मन सविकल्प ज्ञान का रूप दे देता है। अर्थात् बालक जब किसी वस्तु को देखता है, तब उस वस्तु की आकृति (छवि) उसके मन में अंकित हो जाती है। ऐसी वस्तु से पुनः तादात्म्य स्थापित होने पर उसे जान लेने की यह अवस्था ही प्रत्यक्षतया सविकल्पक ज्ञान की होती है ।

अनुमान प्रमाण-पूर्व ज्ञान के बाद तथा उस पर आधारित या उसके कारण से उत्पन्न ज्ञान का दूसरा नाम अनुमान है। जैसे- कही पर धुएं को देखकर अग्नि का अनुमान। न्याय शास्त्र प्रमाण के द्वारा अधिगम संदर्भित यह अनुरोध करता है कि बालकों के नए ज्ञान को उनके पूर्व ज्ञान से जोड़ना चाहिए तथा किसी भी प्रकार से उत्पन्न शंका का निवारण किया जाना चाहिए। अनुमान का संबंध परामर्श जन्य ज्ञान से है। यह आगमनविधि तथा निगमनविधि, दोनों ही प्रकार की विधियों को स्वीकार करता है। अनुमान दो प्रकार का होता है। स्वार्थानुमान- जब बालक या शिक्षार्थी अपने पूर्व अनुभव या ज्ञान के आधार पर निष्कर्ष ज्ञान प्राप्त करें। यह स्वार्थानुमान वस्तुत: एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है। परार्थानुमान- किसी अन्य की सहायता से उत्पन्न होने वाला ज्ञान परार्थानुमान कहा जाता है। अर्थात् अध्यापकों या परामर्शकों की सहायता से शिक्षार्थी जब ज्ञान प्राप्त करें, तब यह परार्थानुमान जन्य ज्ञान कहा जाएगा। परार्थानुमान एक प्रायोगिक प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया पंचावयववाक्य के द्वारा पूर्ण होती है। प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनयन, तथा निगमन, ये सभी पंचावयववाक्य कहे जाते हैं। प्रायोगिक ज्ञान प्रदान करते समय इसका प्रयोग किया जाना चाहिए। इसे स्पष्ट करता हुआ न्याय दर्शन में वर्णित उदाहरण दृष्टव्य है-

१- पर्वत पर अग्नि हैं (प्रतिज्ञा)

प्रश्न: यह कैसे स्वीकार किया जाए कि पर्वत पर अग्नि है?

२- क्योंकि वहां धुँआ दिखाई दे रहा है। (हेतु)

प्रश्न: धुँआ दिखाई देने से क्या सिद्ध होता है?

३- जहाँ-जहाँ धुँआ होता है वहा नियत रूप से अग्नि होती है। जैसे- रसोईघर, भट्टी आदि। (उदाहरण)

४- पर्वत धुँआ से युक्त है, जिसका अग्नि के साथ नियत साहचर्य है। (उपनयन)

५- अतः पर्वत पर भी अग्नि है। (निगमन)

इन पंचावयववाक्यों को यदि थोड़ा लघु किया जाए तब यह अरस्तु के न्यायवाक्य के समान ही प्रतीत होंगे। अरस्तू ने अपने सिद्धांत में तीन ही न्यायवाक्य स्वीकार किए हैं। उदाहरण-

1- सभी धूम युक्त पदार्थ अग्नि युक्त है। (major premises/व्याप्ति)

2- यह पर्वत धूम युक्त है। (minor premises/उपनयन)

3- अतः पर्वत अग्नि युक्त है। (conclusion/निगमन)

अरस्तु तथा न्यायशास्त्र के न्याय वाक्यों में यह अंतर है कि अरस्तू ने मात्र निगमनात्मक न्याय वाक्यों को ही अपनाया है जबकि न्यायशास्त्र में निगमन-आगमनात्मक न्याय वाक्य को स्वीकार किया है।

उपमान प्रमाण - उपमिति का करण उपमान है। उपमिति अर्थात पूर्व अनुभूत वस्तु के सादृश्यता से उत्पन्न बोध अथवा जब सादृश्यता के कारण किसी वस्तु का बोध हो। अधिगम परिस्थिति में इसका प्रयोग कक्षा में प्रत्यक्ष तथा अनुपलब्ध वस्तुओं का बोध कराने के लिए किया जा सकता है। न्यायशास्त्र में एक उदाहरण प्रसिद्ध है- कोई व्यक्ति जिसे 'गो' पद वाच्य है, किंतु वन में जाकर जब वह सदृश पशु को देखकर गवय समझ लेता है। इस बोध का मुख्य कारण सादृश्य ज्ञान है, इसलिए उपमान को 'संज्ञा-संज्ञि-संबंधी ज्ञान' भी कहा गया है। सादृश्यता के बोध से बहुत सी वस्तुओं का बोध कराना संभव हो जाता है।

शब्दप्रमाण- न्यायशास्त्र शब्द को आप्तवाक्य मानता है तथा लौकिक और वैदिक रूप में इसके दो भेद स्वीकार करता है। वेद ईश्वर के द्वारा उच्चरित होने से प्रमाणित, निश्चित तथा संदेह रहित है। अतः इसे वैदिक शब्द कहते हैं। यथार्थ वक्ता के द्वारा बोले गए शब्द अलौकिक शब्द कहे जाते हैं। जब यह शब्द वाक्यों में प्रयुक्त होते हैं, तब पद कहे जाते हैं। पद समूहात्मक वाक्यों से अर्थबोध की प्रतीति होती है। आकांक्षा,योग्यता, सन्निधि तथा तात्पर्य से युक्त वाक्यों का समग्र अर्थ बोध होता है। जब आकांक्षा, योग्यता तथा सन्निधि सहित पद वाक्य में अन्वित होते हैं तब शाब्दबोध की उत्पत्ति होती है। अधिगमार्थ देखने पर यह प्रतीत होता है कि शिक्षार्थी के लिए प्रयुक्त निर्देशन. सूचना या संबंधित विषय आकांक्षा, योग्यता, सन्निधि तथा तात्पर्यार्थ से युक्त हो और यह इस प्रकार दिशा निर्देशित किया जाना चाहिए, जिससे की समग्र शाब्दबोध (लक्षित ज्ञान) को प्राप्त किया जा सके।

2.5.3 न्याय शास्त्र का शैक्षिक निहितार्थ

न्याय दर्शन के सिद्धांत जितने प्राचीन हैं उतने ही प्रासंगिक । अधिगम की परिस्थितियों में इसके संप्रत्ययो के प्रयोग से उच्च उपलब्धि प्राप्त की जा सकती है। इसकी विधियां तार्किक तथा मानसिक शक्ति को सुदृढ़ करने वाली हैं, इसीलिए यह विधियां मानसिक संक्रियाओं तथा प्रायोगिक प्रक्रियाओं को सिखाने में बेहतर साबित होती है। आगमन-निगमन पद्धति, पंचावयववाक्य सिद्धांत, तात्विक प्रमाण सिद्धांत, प्रश्नोत्तर शैली आदि का इसमें प्रभाव देखने को मिलता है। इन विधियों के प्रयोग से बालकों की उच्च उपलब्धि प्राप्त करने में तथा शैक्षिक प्रविधियों की नूतन विधियों के प्रयोग में सकारात्मक बल प्राप्त होता है।

2.6.1 मीमांसा दर्शन तथा शिक्षण

मानव आदिकाल से ही विचारों को पूजता आया है। उसकी सदैव इच्छा बनी रहती है कि वह समस्याओं की किसी भी स्थिति में निश्चित निष्कर्ष पर पहुंचे, लेकिन जब समस्याएं जीवन दर्शन से संबंधित हो तब मात्र निश्चित व परिणामी निष्कर्ष तक पहुंचना ही पर्याप्त नहीं है। उसे ऐसे विचारों की आवश्यकता होती है जो सर्वमान्य, जिज्ञासा का समन करने वाला तथा एक पूजित विचार हो। मीमांसा शब्द का संबंध भी इसी पूजित विचार से है। प्राचीन काल में वेदोक्त पारस्परिक विरोध की स्थिति में उनके परिहार तथा एकरूपता स्थापित करने के लिए जो विचार विमर्श किया जाता था, उसे मीमांसा कहते थे। बाद में यही मीमांसा शब्द जिज्ञासा, विवेचना तथा समीक्षा का पर्याय बन गया। मीमांसा शास्त्र को कर्ममीमांसा, धर्ममीमांसा या पूर्व मीमांसा भी कहा जाता है। मीमांसा-सूत्र के रचनाकार आचार्य जैमिनी इस दर्शन के प्रतिपादक तथा प्रतिष्ठित आचार्य माने जाते हैं।

2.6.2 मीमांसा शास्त्रीय भाषा शिक्षण

शैक्षिक अधिगम संबंधी दर्शन को समुन्नत करने में मीमांसा दर्शन का विशेष योगदान रहा है। 'मीमांसा-सूत्र' ग्रंथ में वर्णित सूत्रों को देखने से इसकी स्पष्टतया प्रतीति भी होती है। मीमांसा दर्शन का आधारभूत

सूत्र "अथातो धर्म जिज्ञासा" जिसका सामान्य अर्थ 'अब इसलिए धर्म की जिज्ञासा करनी चाहिए' है, किंतु इस सूत्र को शैक्षिक दृष्टि से देखने पर ज्ञात होता है कि वह शिक्षार्थी में जिज्ञासु प्रवृत्ति की इच्छा रखता है। दूसरी बात मानवहित से संबंधित समस्याओं का उत्तर चाहता है तथा तीसरी बात इस संदर्भ में यह कही जा सकती है कि मानव कृत्य-अकृत्य से संबंधित विषयों के ज्ञान के प्रति सदा से ही जिज्ञासु रहा है। मीमांसा दर्शन मोक्ष को परम पुरुषार्थ मानता है तथा इसकी प्राप्ति अज्ञानता के नाश से स्वीकार करता है। यह दर्शन तत्वज्ञान तथा प्रमाण मीमांसा की विवेचना के लिए न्याय के कुछ सिद्धांतों को भी स्वीकार करता है। मीमांसा दर्शन में स्वीकृत कुछ प्रमाणों की शैक्षिक अधिगम संबंधित विवेचना अधोलिखित वर्णित है-

प्रामाण्यवाद- प्रमाण का संबंधित प्रमा से है। दोषरहित तथा अबाधित ज्ञान को प्रमा कहा जाता है। अर्थात प्रमा अज्ञात तथा सत्य पदार्थ का ज्ञान है[15]। इसके करण को प्रमाण कहते हैं। मीमांसा दर्शन स्वत: प्रामाण्यवाद स्वीकार करता है। इसके अनुसार प्रमा (सत्य) की अनुभूति स्वत: प्रकाशित होती है। अर्थात ज्ञान की प्रमाणिकता अन्य ज्ञान से सिद्ध नहीं किया जा सकता है। मीमांसक प्रभाकर मिश्र स्वतः ज्ञान का अर्थ ज्ञान-जनक-सामग्री से बताते हैं। जबकि न्याय दर्शन इसके विपरीत परतः प्रामाण्य स्वीकार करता है। अतः प्रमाण के संबंध में मीमांसक तथा नैयायिकों के बीच प्रबल संघर्ष चलता रहता है, किंतु अप्रमाण्य के विषय में दोनों एकमत है। दोनों ही परतः अप्रमाण्य स्वीकार करते हैं। मीमांसक मानते हैं कि ज्ञान की उत्पत्ति तथा उसका प्रामाण्य ज्ञान (ज्ञप्ति) दोनों स्वत: होते हैं। इसका शैक्षिक अर्थ यह है कि शिक्षार्थी को इस प्रकार का अनुदेशन या मार्गदर्शन प्राप्त हो, जिससे प्राप्त ज्ञान का सत्यापन वह स्वयं कर सके। उसे पूर्णत: विश्वास हो कि प्राप्त ज्ञान संशय तथा दोष रहित है । जब तक उसे इस प्रकार का विश्वास नहीं होगा तब तक वह किसी भी प्रकार के ज्ञान की सत्यता स्वीकार नहीं करेगा। इसलिए मीमांसक कहते हैं कि यदि ज्ञान में स्वत: प्रमाण्य ना हो तो ज्ञान कभी भी प्रमाणिक नहीं हो सकता । मीमांसा के स्वत: प्रमाण्यवाद की आंशिक तुलना पाश्चात्य तर्कशास्त्र के संवाद सिद्धांत (Coherence theory) से की जा सकती है। मीमांसा यथार्थता को ज्ञान का स्वरूप मानती है तथ न्याय के समान ही कट्टर वस्तुवादी भी है। स्वत: प्रमाण मानने के साथ मीमांसा यह भी स्वीकार करता है कि ज्ञान एक अपरोक्ष अनुभूति है।

प्रत्यक्ष प्रमाण- मीमांसकों ने साक्षात प्रतीति युक्त तथा इंद्रियार्थ सन्निकर्षजन्य ज्ञान को प्रत्यक्ष कहा है। मीमांसा प्रत्यक्ष निरूपण मैं प्रायः न्याय से सहमत है। अतः इसका विवेचन न्याय दर्शन शिक्षण के अंतर्गत पूर्व में ही किया जा चुका है । प्रत्यक्ष ज्ञान सविकल्पक होता है, जबकि आलोचन (अप्रत्यक्ष) परक ज्ञान निर्विकल्पक । "मीमांसा न्याय के विपरीत यह मानती है कि निर्विकल्पक प्रत्यक्ष में भी प्रवृत्ति सामर्थ्य होता है । बालकों पशुओं तथा अविकसित मस्तिष्क वाले मंदबुद्धि बालकों की अनेक क्रियाएं निर्विकल्प अप्रत्यक्ष के आधार पर होती है । कभी-कभी तो सामान्य व्यक्ति भी शीघ्रता तथा अस्थिर मानसिक स्थिति के कारण निर्विकल्प प्रत्यक्ष के आधार पर क्रियाशील हो जाता है" [16]।

---

[15] प्रमा चाऽज्ञाततत्वार्थज्ञानम् ।मानमेयोदय,१,२ ।

[16] भारतीय दर्शन : आलोचन तथा अनुशीलन, पृष्ठ संख्या-१९६

अनुमान प्रमाण- मीमांसा दर्शन अनुमान प्रमाण का विवेचन भी न्याय शास्त्र के अनुसार ही स्वीकार करता है। इस दर्शन में अंतर मात्र इतना है कि परार्थ अनुमान के विषय में मीमांसक पंचावयव वाक्य के स्थान पर तीन अवयव न्याय वाक्य ही स्वीकार करता है, जो अरस्तु के न्याय वाक्य के समान है।

उपमान प्रमाण- मीमांसा 'संज्ञा-संज्ञि-संबंधी ज्ञान' उपमान प्रमाण से न स्वीकार करके शब्द प्रमाण के अंतर्गत मानता है। यह दर्शन मानता है कि 'गोसदृश्यगवय' इस प्रकार के ज्ञान के लिए किसी व्यक्ति की सहायता की आवश्यकता नहीं होती। जिस किसी व्यक्ति ने भी पूर्व में गाय देखी है, उसे गाय की सादृश्यता के कारण इस प्रकार का ज्ञान संभव है। अधिगम परिस्थिति में भी शिक्षार्थी पूर्व दृष्ट वस्तु की सादृश्यता के आधार पर नए ज्ञान का निर्माण करते हुए पाए जाते हैं।

शब्द प्रमाण- मीमांसक अपौरुषेय वेद को शब्द प्रमाण मानते हैं। इसके अतिरिक्त शब्द या तो सिद्धार्थवाक्य हो सकते हैं या विधायक वाक्य। जो किसी कर्म के करणीय या अकरणीय संबंधी आदेश देते हैं। मीमांसक शब्द, अर्थ तथा शब्दार्थ-संबंध, इन तीनों को नित्य मानते हैं। वर्ण नित्य तथा अपरिणामी है। नित्य वर्णों का समूह होने के कारण शब्द भी नित्य हैं तथा उसका अर्थ भी। तात्पर्य यह है कि भाषा अधिगम की शुद्धता तथा सुदृढ़ता के लिए अनर्थक शब्दों के प्रयोग से बचना चाहिए।

अर्थापत्ति प्रमाण- दृष्ट या श्रुत संबंधी किसी अर्थ की उत्पत्ति के लिए जब किसी अर्थांतर की कल्पना की जाती है, उसे अर्थापत्ति कहते है। इसके माध्यम से दो तथ्यों की विरोधाभास को दूर किया जाता है। इसके संदर्भ में मीमांसा का एक उदाहरण प्रसिद्ध है- 'मोटा देवदत्त दिन में नहीं खाता'। यहां 'मोटा होने' तथा 'दिन में न खाने' की विरोधाभास या असंगति को दूर करने के लिए अर्थापत्ति से यह कल्पना कर लिया जाता है कि वह रात्रि काल में खाता होगा। शैक्षिक दृष्टि से भी इस प्रमाण की भूमिका देखने को मिलती है, किसी विरोध की स्थिति में निष्कर्ष तक पहुंचने के लिए इस प्रमाण का आश्रय ग्रहण किया जा सकता है।

आत्मा और ज्ञान- आत्मा और ज्ञान के विषय में मीमांसक स्वीकार करते हैं कि "आत्मा ज्ञान का आश्रय है, किंतु अपनी अभिव्यक्ति के लिए स्वयं ज्ञान पर आश्रित है। सुषुप्ति में, ज्ञान के अभाव में आत्मा प्रकाशित नहीं होता। आत्मा या ज्ञाता के बिना ज्ञान संभव नहीं है। प्रत्येक ज्ञान में आत्मा ज्ञाता के रूप में प्रकाशित होता है। ज्ञाता का ज्ञान ज्ञेय के रूप में कभी नहीं हो सकता। यद्यपि ज्ञाता और ज्ञेय दोनों ही प्रकाश के लिए ज्ञान पर निर्भर है तथापि ज्ञेय का प्रकाश ज्ञेय पदार्थ के रूप में और ज्ञाता का प्रकाश सदा ज्ञाता के रूप में ही होता है। प्रत्येक ज्ञान में आत्मा ज्ञाता के रूप में (अहंवित्ति), पदार्थ ज्ञेय के विषय के रूप में (विषयवित्ति) और ज्ञान स्व प्रकाश ज्ञान के रूप में (स्वसंवित्ति) प्रकाशित होता है"[17]।

2.6.3 मीमांसा दर्शन का शैक्षिक निहितार्थ

[17] भारतीय दर्शन : आलोचन तथा अनुशीलन, पृष्ठ संख्या-२०१

मीमांसा बहुत्ववादी वस्तुवाद है। यह जगत संबंधित सभी तत्वों को सत्य स्वीकार करता है, लेकिन जगत की सृष्टि तथा प्रलय संबंधी कोई बात इसे स्वीकार्य नहीं । इसके अनुसार भाषा-अधिगम की दृष्टि से शिक्षार्थियों में तर्क परक बौद्धिकता की नीव स्थापित की जा सकती है। यह शैक्षिक निर्देशकों से आग्रह करती है कि ज्ञान की विधि दोषरहित तथा ज्ञान-सामग्री स्वयं में पूर्ण हो। ज्ञान निर्देशित करते समय ऐसी प्रक्रिया अपनाई जानी चाहिए जिससे शिक्षार्थियों में स्वयं प्रज्ञा का विकास हो। आगमन-निगमन विधि के माध्यम से तर्क परक विषयों का अध्यापन किया जाना चाहिए। संक्षेपतः कहा जा सकता है कि शिक्षार्थियों की स्वयं प्रज्ञाचक्षु उदघाटित करने वाली ज्ञान सामग्रियों को मीमांसा स्वीकृत प्रमाणों के आधार पर विकसित विधियों के माध्यम से प्रदान किया जाना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न

1. वेद को वर्ण राशि का स्वरूप माना गया है। सत्य/असत्य
2. पाणिनि ने अधिगम हेतु वाक्य-पद-वर्णसिद्धांत का प्रतिपादित किया है। सत्य/असत्य
3. अष्टाध्यायी पाणिनी द्वारा लिखित ग्रंथ है। सत्य/असत्य
4. पाणिनि ने अष्टाध्यायी में भाषा संबंधित नियमों को सूत्रात्मक शैली में लिखा है। सत्य/असत्य
5. भर्तृहरि ने शब्द को ब्रह्म का प्रतिपादक माना है। सत्य/असत्य
6. वाक्यपदीयम् भर्तृहरि द्वारा रचित ग्रंथ है। सत्य/असत्य
7. भर्तृहरि ने शब्द के दो भेद स्वीकार किए हैं- स्फोट तथा बैखरी वाक्। सत्य/असत्य
8. भर्तृहरि ने वर्ण पद वाक्य सिद्धांत स्वीकार किया है। सत्य/असत्य
9. न्यायशास्त्र वस्तुवाद को स्वीकार करता है। सत्य/असत्य
10. मीमांसा सादृश्यज्ञान को अनुमान प्रमाण के रूप में स्वीकार करता है। सत्य/असत्य
11. पाणिनि ने शिक्षा शास्त्र को उच्चारण शास्त्र भी कहा है। सत्य/असत्य

2.7 सारांश

इकाई के अध्ययन के बाद आप यह जान चुके हैं कि भारतीय विद्वानों ने भाषा अधिगम से संबंधित विभिन्न सिद्धांतों को स्थापित किया है। प्रत्येक सिद्धांत एक सिद्धांत की न्यूनता से उत्पन्न हुई है। न्यूनता तथा पूर्णता का यह क्रम सदैव गतिमान रहता है। किसी समय में कोई पूर्ण सिद्धांत ही कालांतर में न्यून प्रतीत होने लगता है, तो कभी उन सिद्धांतों की भूमिका महत्वपूर्ण सिद्ध होने लगती है। भाषाबोध जिसे शब्दबोध, उच्चारणबोध या व्याकरणबोध के नाम से भी जाना जाता है।यह बहुत प्राचीन काल से ही भारतीय विद्वानों का प्रिय विषय रही है। अनेक ऋषि-महर्षि-विद्वानों ने इससे संबंधित ग्रंथ लिखे तथा अपने विचारों को सिद्धांतों के रूप में स्थापित किया। इस इकाई के अंतर्गत आपने पाणिनि, भर्तृहरि, न्यायदर्शन, तथा मीमांसा दर्शन के भाषा शिक्षण संबंधित सिद्धांतों को समझा है। इन सभी विद्वानों के

सिद्धांतों में जहां कुछ समानताएं देखने को मिलती है, वहीं पर कई विभिन्नताएं भी दृष्टिगोचर होती है। पाणिनि भाषा अधिगम के लिए उच्चारण विधि पर बल देते हैं तथा कठिन सिद्धांतों को समझाने के लिए सूत्र विधि का आश्रय ग्रहण करते हैं। भाषा अधिगम के क्रमिक अध्ययन के लिए वाक्य-पद-वर्ण सिद्धांत का अनुसरण करते हैं, जबकि भर्तृहरि इनके ठीक विपरीत वर्ण-पद-वाक्य सिद्धांत के द्वारा भाषा अधिगम को प्रतिपादित करते हैं। भर्तृहरि वर्ण की नित्यता स्वीकार करते हैं। न्याय शास्त्र शब्दबोध को प्रधान मानता है। इस हेतु वह प्रश्नात्मकशैली, आगमन-निगमन पद्धति तथा पांचवाक्य सिद्धांत के अनुसार भाषा अधिगम की विधि को स्वीकार करता है। षडसन्निकर्ष विमर्श के द्वारा पद-पदार्थ ज्ञान की बात करता है। मीमांसादर्शन, न्यायदर्शन के कई सिद्धांतों से साम्यता रखता है किंतु कई स्थानों पर भिन्न विचारों को भी प्रतिपादित करता है। यह भाषा शिक्षण के सिद्धांत सरल से कठिन के प्रति को स्वीकार करते हुए भाषिक तत्वों को लघु-लघु विभागों में विभक्त कर अधिगम की बात स्वीकारता है। भारतीय विद्वानों के इन सभी विचारों को पढ़कर आप इस निर्णय तक पहुंचने में सफल हो पाएंगे कि किन परिस्थितियों में किन सिद्धांतों का अनुसरण उचित होगा। तदनुसार भाषा अधिगम की लक्षित प्रक्रिया पूर्ण करने हेतु निर्धारित व्यूह की योजना बनाने में सफल सिद्ध होंगे।

2.8 शब्दावली

1. **वर्ण-** भाषा की सबसे छोटी इकाई को वर्ण कहते हैं।
2. **पद-** वाक्य में प्रयुक्त होने वाले शब्दों को पद कहते हैं
3. **शिक्षाशास्त्र-** पाणिनि ने उच्चारण शास्त्र को शिक्षा शास्त्र के रूप में स्वीकार किया है, किंतु वर्तमान में इसे अधिगमशास्त्र या शिक्षणशास्त्र के रूप में जाना जाता है।
4. **सूत्रविधि-** विस्तृत तथ्य को संक्षेप में कहने की प्रक्रिया सूत्र विधि कहलाती है। इसे स्मरण रखना आसान होता है।
5. **वस्तुवाद-** दृश्य जगत की सत्ता जिस रूप में है, उसे उसी रुप में स्वीकार करना वस्तुवाद कहा जाता है।
6. **पञ्चावयव वाक्य-** किसी अन्य को कोई तथ्य समझाने के लिए प्रयुक्त किया जाने वाला पांच वाक्य सिद्धांत को पंचावयववाक्य कहते हैं।
7. **ज्ञानमीमांसा-** अधिगम तत्वों से संबंधित विचार ज्ञान मीमांसा के अंतर्गत आते हैं।

2.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य
2. सत्य
3. असत्य
4. सत्य

5. असत्य
6. सत्य
7. सत्य
8. सत्य
9. असत्य
10. असत्य
11. सत्य

2.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

7. ओड़, डॉ एल. के. (२०१४), शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि, राजस्थान हिंदी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, राजस्थान, ISBN: 978-93-5131-092-1.
8. सफाया, डॉ. रघुनाथ. (२०११), संस्कृत शिक्षण, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकुला, हरियाणा.
9. द्विवेदी, डॉ. कपिल देव (2010), भाषा विज्ञान एवं भाषाशास्त्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
10. पाणिनीय शिक्षा, चौखंबा विद्याभवन, वाराणसी
11. शुक्ल, सूर्यनारायण एवं रामगोविंद, वाक्यपदीयम्, चौखंभा संस्कृत संस्थान, वाराणसी
12. अवस्थी, डॉ. शिवशंकर, (2001), वाक्यपदीयम्, चौखंबा विद्याभवन, वाराणसी
13. शर्मा, चंद्रधर. (1995) भारतीय दर्शन: आलोचन और अनुशीलन, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी

2.11 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री

1. पाणिनीय शिक्षा- चौखंबा विद्याभवन वाराणसी
2. संस्कृत शिक्षण- डॉ. रघुनाथ सफाया, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकुला, हरियाणा
3. संस्कृत शिक्षण (२००८)- डॉ. रामशकल पाण्डेय, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
4. वाक्यपदीयम्- सूर्य नारायण शुक्ल, चौखंबा संस्कृत संस्थान, वाराणसी
5. भारतीय दर्शन आलोचन और अनुशीलन- चंद्रधर शर्मा, मोतीलाल बनारसीदास
6. शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि- डॉ एल. के. ओड, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर
7. भाषा विज्ञान एवं भाषाशास्त्र- डॉ कपिलदेव द्विवेदी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

2.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. पाणिनि के भाषा संबंधी विचारों से आप क्या समझते हैं, विस्तार से लिखिए?
2. भर्तृहरि के अधिगम संबंधी सिद्धांतों का भाषा अधिगम पर क्या प्रभाव पड़ा है?

3. न्याय शास्त्र के प्रमाण सिद्धांत का भाषा अधिगम के परिप्रेक्ष्य में व्याख्या कीजिए?
4. मीमांसा दर्शन तथा न्याय दर्शन की साम्यता तथा विभिन्नता को स्पष्ट कीजिए?
5. मीमांसा दर्शन के सिद्धांतों का शैक्षिक अधिगम के परिप्रेक्ष्य में निरूपण कीजिए?
6. पाणिनि द्वारा प्रतिपादित मुख्य सिद्धांतों को लिखिए?
7. पाणिनी के वाक्य-पद-वर्ण सिद्धांत से आप क्या समझते हैं?
8. भर्तृहरि के वर्ण-पद-वाक्य सिद्धांत को स्पष्ट कीजिए?
9. भर्तृहरि के अनुमान प्रमाण को उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए?
10. पंचावयववाक्य को उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए?
11. नयदर्शन के शब्द प्रमाण से आप क्या समझते हैं?
12. मीमांसा शब्द का शाब्दिक अर्थ क्या है?
13. मीमांसा द्वारा प्रतिपादित मुख्य सिद्धांतों को लिखिए?

इकाई 3 - अधिगम योजना (लर्निंग प्लान)

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 अधिगम योजना : अर्थ एवं परिभाषा
3.3.1 अधिगम योजनाकी अवधारणा
3.3.2 अधिगम योजना का अर्थ व परिभाषा
3.4 अधिगम योजना के विविध घटक
3.4.1 अधिगम योजना को प्रभावित करने वाले घटक
3.4.2 अधिगम योजना के विविध घटक
3.5 अधिगम योजना का संरचनात्मक मॉडल या पाँच इ (5 E) मॉडल
3.5.1 अधिगम योजना का संरचनात्मक मॉडल
3.5.2 अधिगम योजना का संरचनात्मक मॉडल के गुण
3.5.3 अधिगम योजना का संरचनात्मक मॉडल के दोष
3.6 संस्कृत भाषा-शिक्षण के लिए पाँच इ मॉडल का एक उदाहरण
3.6.1 संस्कृत भाषा-शिक्षण के लिए पाँच इ मॉडल का एक उदाहरण
3.7 सारांश
3.8 शब्दावली
3.9 अभ्यास प्रश्न
3.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.11 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

सीखना या **अधिगम** (जर्मन: Lernen, अंग्रेज़ी: learning) एक व्यापक सतत् एवं जीवन पर्यन्त चलनेवाली प्रक्रिया है। मनुष्य जन्म के उपरांत ही सीखना प्रारंभ कर देता है और जीवन भर कुछ न कुछ सीखता रहता है। धीरे-धीरे वह अपने को वातावरण से समायोजित करने का प्रयत्न करता है। इस समायोजन के दौरान वह अपने अनुभवों से अधिक लाभ उठाने का प्रयास करता है। इस प्रक्रिया को मनोविज्ञान में सीखना कहते हैं। जिस व्यक्ति में सीखने की जितनी अधिक शक्ति होती है, उतना ही

उसके जीवन का विकास होता है। सीखने की प्रक्रिया में व्यक्ति अनेक क्रियाऐं एवं उपक्रियाऐं करता है। अतः सीखना किसी स्थिति के प्रति सक्रिय प्रतिक्रिया है।

उदाहरणार्थ छोटे बालक के सामने जलता दीपक ले जानेपर वह दीपक की लौ को पकड़ने का प्रयास - करता है। इस प्रयास में उसका हाथ जलने लगताहै। वह हाथ को पीछे खींच लेता है। पुनः जब कभी उसके सामने दीपक लाया जाता है तो वह अपने पूर्व अनुभव के आधार पर लौ पकड़ने के लिए, हाथ नहीं बढ़ाता है, वरन् उससे दूर हो जाता है। इसीविचार को स्थिति के प्रति प्रतिक्रिया करना कहते हैं। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि अनुभव के आधार पर बालक के स्वाभाविक व्यवहार में परिवर्तन हो जाता है।

3.2 उद्देश्य

अधिगम में व्यवहार परिवर्तन होता है, यह परिवर्तन स्थायित्व लिए होता है। अनुभव, इन परिवर्तनों में योग देते हैं। होने वाले परिवर्तन अनुभव किए जाते हैं तथा उन्हें देखा भी जाता है। अधिगम में सम्बन्ध मूलकता पाई जाती है। यह व्यवहार का परिमार्जन का ज्ञानात्मक, भावात्मक तथा मनोग्यात्मक क्षेत्रों में वृद्धि करता है। ये व्यवहार विकास के महत्वपूर्ण सोपान के रूप में अधिगम महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है। इस इकाई से आप जानेंगे-

1. अधिगम योजनाकी अवधारणा
2. अधिगम योजना का अर्थ व परिभाषा
3. अधिगम योजना को प्रभावित करने वाले घटक
4. अधिगम योजना का संरचनात्मक मॉडल या पाँच इ (5 E) मॉडल
5. अधिगम योजना का संरचनात्मक मॉडल के गुण एवं दोष
6. संस्कृत भाषा-शिक्षण के लिए पाँच इ मॉडल का एक उदाहरण

3.3 अधिगम योजना : अर्थ एवं परिभाषा

अधिगम योजना व्यक्ति अपने जीवन के प्रारंभ में ही योजना बनाता है और सीखना आरंभ कर देता है एवं जीवनपर्यन्त सीखता ही रहता है। बालक शैशवावस्था के आरंभ से बिल्कुल असहाय होता है। उसका जीवन दूसरों पर निर्भर रहता है, किंतु वह धीरे-धीरे अपने को वातावरण के अनुकल व्यवस्थापित करने का प्रयत्न करता है। उसके सीखने की प्रक्रिया में दो मुख्य तत्त्व निहित होते है जो उसे वातावरण के अनुकूल व्यवस्थित करने में सहायता पहुँचाते है। (3) परिपक्वता (2) अनुभूति से लाभ उठाने की योग्यता, बालक की परिपक्वता, उसकी अभिवृद्धि और विकास के, जो उसकी उम्र के बढने के साथ-साथ होता जाता है।

3.3.1अधिगम योजना की अवधारणा

प्रत्येक प्राणी कुछ ऐसे जन्मजात उपस्करण को लेकर उत्पन्न होता है, जो उसकी प्रारंभिक प्रतिक्रियाओं की दिशा निर्धारित करते है। प्राणी इन्हीं उपस्करणों के आधार पर अपने को सरल वातावरण के अनुकूल व्यवस्थित करता है जो जन्म के समय चारों तरफ मिलता है किन्तु मानव तो जटिल परिस्थितियों में रहता है, अत: उसके व्यवहार को दिशा देनेवाले ये जन्मजात उपस्करण अपूर्ण सिद्ध होते हैं, उसे अपने प्रतिक्रियाओं एवं व्यवहार को अधिक व्यापक और वातावरण के उपयुक्त बनाने के लिए जीवन के अनुभवों से लाभ उठाना पड़ता है। उसे कुछ सीखना पड़ता है। इस अर्थ में हम ''सीखने'' की परिभाषा इस प्रकार देगें-

उपयुक्त प्रतिक्रिया को अपनाने की प्रक्रिया ही ''सीखना'' है। सीखने से तात्पर्य 'संचयी उन्नति' (Cumulative Improvement)। उन्नति के स्वरूप का आकलन उन परिवर्तनों द्वारा किया जा सकता है जो उस समय होते है जबकि सीखने की क्रिया हो रही होती है।

प्रत्येक व्यक्ति नित्यप्रति अपने जीवन में नये अनुभव एकत्र करता रहता है। ये नवीन अनुभव, व्यक्ति के व्यवहार में वृद्धि तथा संशोधन करते हैं। इसलिये ये अनुभव तथा इनका उपयोग ही सीखना या अधिगम करना कहलाता है।

मनोवैज्ञानिकों ने सीखने को मानसिक प्रक्रिया माना है। यह क्रिया जीवनभर निरन्तर चलती रहती है। सीखने की प्रक्रिया की दो मुख्य विशेषताएँ हैं-

1. निरन्तरता
2. सार्वभौमिकता

यह दोनों प्रक्रिया सदैव और सर्वत्र चलती रहती है। इसलिए मानव अपने जन्म से मृत्यु तक कुछ न कुछ सीखता रहता है। किसी भी व्यक्ति द्वारा किए जाने वाले व्यवहारों में अधिकांश व्यवहार अर्जित या सीखे हुए ही होते है। हम जानते है कि जन्म के समय बच्चे में कुछ सीमित जैविक विशेषताओं का ही प्रदर्शन होतो है। परन्तु उसकी आयु (परिपक्वता) एवं अनुभव में वृद्धि के साथ-साथ उसका व्यवहार भी निरन्तर परिमार्जित होता रहता है। वह अनेकानेक योग्यताएँ अर्जित करके विभिन्न पर्यावरणीय परिस्थितियों में समायोजन स्थापित करने में सफलता प्राप्त करता है। इससे संकेत मिल रहा है कि मानव जीवन में अधिगम प्रक्रिया का विशेष महत्त्व है तथा इसका क्षेत्र काफी व्यापक है।

3.3.2 अधिगम का अर्थ व परिभाषा

''अधिगम'' किसी स्थिति के प्रति सक्रिय प्रतिक्रिया है। अधिगम (सीखना) मूलत: अभ्यास या प्रयास पर निर्भर करता है। किसी भी कार्य में कौशल या दक्षता प्राप्त करने के लिए हमें उसे पहले सीखने का प्रयास करना पड़ता है। प्रारंभ में किसी नवीन कार्य को कठिनाई अधिक अनुभव की जाती है तथा त्रुटियाँ भी अधिक होती हैं। परन्तु अभ्यास करने से कठिनाई एवं त्रुटियों मे कमी आती जाती है। ऐसा होना स्पष्ट करता है कि अधिगम हो रहा है। इसी कारण अधिगम को ऐसी प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया जाता है

जिससे अनुभवों से प्राणी की क्रियाओं में सुधार होता है। अधिगम के परिमाणस्परूप प्राणी का व्यवहार क्रमश: जटिल एवं परिमार्जित होता रहता है। अत: यह कहा जा सकता है कि सीखना व्यवहार में वैसे परिवर्तनको कहा जाता है जो अभ्यास या अनुभूति के फलस्वरूप होता है तथा जिसका उद्देश्य व्यक्ति को समायेजन करने में मदद करना होता है।

''अधिगम'' के अर्थ को और अधिक स्पष्ट करने के लिए निम्नलिखित परिभाषाएं है-

स्किनर- सीखना व्यवहार में उत्तरोत्तरसामजस्य की प्रक्रिया है।

कुप्पूस्वामी-''अधिगम वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक जीव, एक परिस्थिति में उसके अन्त:क्रिया के परिणम के रूप में व्यवहार का एक नवीन प्रतिरूप अर्जित करता है, जो कुछ अंश तक स्थिरोन्मुख रहता है तथा जीव के सामान्य व्यवहार प्रतिमान को प्रभावित करता है।''

मार्ग एवं गिलीलैण्ड-''सीखना, अनुभव के परिणामस्वरुप प्राणी के व्यवहार में परिमार्जन है जो प्राणी द्वारा कुद समय के लिये धारण लिया जाता है।''

वुडवर्थ के अनुसार ''किसी भी ऐसी क्रिया को, जोकि व्यक्ति के (अच्छे या बुरे किसी भी तरह के) विकास में सहायक होती है और उसके वर्तमान व्यवहार और अनुभवों को, जो कुछ वे हो सकते को, उनसे भिन्न बनाती है।''

गार्डनर मरफी- के अनुसार ''सीखने या अधिगम शब्द में वातावरण संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए व्यवहार में होने वाले सभी प्रकार के परिवर्तन सम्मिलित है''

किंग्सले एवं गौरी के अनुसार ''अभ्यास अथवा प्रशिक्षण के फलस्वरूप नवीन तरीके से व्यवहार (अपने विस्तृत अर्थ मे) करने अथवा व्यवहार में परिवर्तन लाने की क्रिया को सीखना कहते है।''

मैक्ग्यू (McGeoch. 3942) के अनुसार ''अधिगम जैसा कि इसे हम मानते है, अभ्यास के परिणामस्वरूप व्यवहार में होने वाला पिरवर्तन है। प्राय: इस परिवर्तन की एक दिशा होती है, जो प्राणी की वर्तमान प्रेरणात्मक अवस्था की संतुष्टी करती है।''

मन (M.L. munn) के अनुसार ''सीखना व्यवहारका अपेक्षाकृत स्थायी प्रगतिपूर्ण रूपान्तरण है। यह प्रशिक्षण या निरीक्षण के परिणामस्वरूप क्रिया विशेष में होता है।''

थार्नडाइक- ''उपयुक्त अनुक्रिया के चयन तथ उसे उत्तेजना से जोड़ने को अधिगम कहते है।''

क्रो व क्रो के अनुसार ''सीखना-आदतों, ज्ञान और अभिवृत्तियों का अर्जन है।''

ब्रुनो (Brwno) के मतानुसार ''अनुभव के परिणामस्परूप व्यावहारिक प्रवृत्तियों में कुछ अंश तक स्थाई परिवर्तन को अधिगम कहा जाता है।

इस प्रकार स्पष्ट हो रहा है कि व्यवहार संबंधी केवल उन्हीं परिवर्तनों को ही अधिगम कहा जाता है जो निश्चित रूप से पूर्व अभ्यास, क्रिया या व्यवहार के परिणामस्वरूप उत्पन्न होते है। अर्थात् प्रेरणा, थकान, विकास (वृद्धि) या अन्य कारणों से उत्पन्न परिवर्तन अधिगम नहीं है (Hilgard and Bower, 3975) अभ्याससे उत्पन्न परिवर्तनों से कार्य में उन्नति या व्यवहार में परिमार्जन होता है।

3.4 अधिगम योजना के विविध घटक

अधिगम योजना की प्रक्रिया में अनेक सहायक एवं बाधक कारक होते है। इनका उल्लेख करते हुए सिम्पसन ने लिखा है- "अन्य दशाओं के साथ-साथ सीखने की कुछ दशाएँ- उत्तम स्वास्थ्य रहने की अच्छी आदतें, शारीरिक दोषों से मुक्ति, अध्ययन की अच्छी आदतें, संवेगात्मक संतुलन, मानसिक योग्यता, कार्य-सम्बन्धी परिपक्वता, वांछनीय दृष्टिकोण और रुचियाँ, उत्तम सामाजिक अनुकूलन, अंधविश्वास से मुक्ति।"

3.4.1अधिगम योजना को प्रभावित करने वाले घटक

अधिगम की प्रक्रिया अनेक घटकों से प्रभावित हो सकती है। प्रभावशाली अधिगम से आश्य स्थायी, उपयोगी अनुक्रियाओं से है। ये अनुक्रियायें जीवन में व्यक्ति को सफलता के शीर्ष तक पहुँचाती है। इन घटको से अधिगम प्रभावशाली बनता है।

बहुविमीय (Multi Dimensional) घटक- इस घटक में अनेक आयाम होते है जो प्रभावशाली अधिगम के प्रतीक होते है।

1. पूर्व अधिगम
2. विषयवस्तु
3. शारीरिक स्वास्थ्य व परिपक्वता
4. मानसिक स्वास्थ्य व परिपक्वता
5. अधिगम की इच्छा
6. प्रेरणा
7. थकान
8. वातावरण
9. सीखने की विधि

1. **पूर्व अधिगम (Previous Learning)-** बालक कितनी शीघ्रता से अथवा कितनी अच्छी तरह से सीखता है, यह इस बात पर निर्भर करता है कि वह पहले से क्या सीख चुका है। अधिगम की प्रक्रिया शून्य से प्रारंभ नहीं होती है वरन् बाला द्वारा पूर्वअर्जित ज्ञान से प्रारंभ होती है। बालक के ज्ञान की आधारशिला जितनी सुदृढ़ तथा व्यापक होती है, उसके ज्ञान प्राप्त करने की प्रक्रिया उतनी ही अधिक सुचारू ढंग से चलती है अत: अध्यापकों को ज्ञात से अज्ञात की ओर के शिक्षण सिद्धान्त के अनुरूप शिक्षण कार्य करना चाहिए।
2. **विषयवस्तु (Subject Matter)-** अधिगम की प्रक्रिया पर सीखी जाने वाली विषयवस्तु का भी प्रभाव पड़ता है। कठिन व असार्थक बातों की अपेक्षा सरल व सार्थक बातें बालक शीघ्रता व सुगमता से सीख लेता है। विषय सामग्री की व्यक्तिगत उपादेयता भी सीखने में महत्त्वपूर्ण योगदान करती है। यदि सीखने वाली विषय सामग्री बालक के लिए व्यक्तिगत उपयोग तथा महत्व रखती है तो बालक उसे सरलता से सीख लेता है। अत: बालक के जीवन से संबंधित तथा महत्वपूर्ण विषय सामग्री को पाठ्यक्रम में प्रमुख स्थान दिया जाना चाहिए।
3. **शारीरिक स्वास्थ्य व परिपक्वता (Physical Health and Maturity)-**शारीरिक दृष्टि से स्वस्थ व परिपक्व बालक सीखने में रूचि लेते हैं जिससे वे शीघ्रता से नवीन बातों को सीख लेते हैं। इसके विपरीत कमज़ोर, बीमार व अपरिपक्व बालक सीखने में कठिनाई का अनुभव करते हैं। छोटी कक्षाओं में पढ़ने वाले बालकों के लिए शारीरिक स्वास्थ्य व परिपक्वता का विशेष महत्व है जिससे वे पुस्तक, कलम, कापी आदि ठीक ढंग से पकड़ सके। इसलिए बालकों के शारीरिक स्वास्थ्य व परिपक्वता के अनुरूप ही उन्हें नवीन बातें सीखनी चाहिए।
4. **मानसिक स्वास्थ्य व परिपक्वता (Mental Halth and Mathurity)-**मानसिक रूप से स्वस्थ व परिपक्व बालकों में सीखने की क्षमता अधिक होती है। अधिक बुद्धिमान बालक कठिन बातों को शीघ्रता से तथा सरलता से सीख लेता है। मानसिक रोगों से पीड़ित या कम बुद्धि वाले बालक मन्दगति से नवीन बातों को सीख पाते है। कड़ी कक्षाओं में पढ़ने वाले छात्रों के सीखने में उनकी बुद्धि तथा मानसिक परिपक्वता का विशेष महत्व होता है।
5. **अधिगम की इच्छा (Will to Learn)-**अधिगम सीखने वाले की इच्छा पर भी निर्भर करता है। यदि बालक में किसी बात को सीखने की दृढ़ इच्छाशक्ति होती है तो वह प्रतिकूल परिस्थितियों में भी उस बात को सीख लेता है। इसके विपरीत यदि कोई बालक किसी बात को सीखना ही नही चाहता है तो उसे जबरदस्ती सिखाया नही जा सकता है। अत: अध्यापकों व अभिभावकों को सिखाने से पहले बालकों में दृढ़ शक्ति को उत्पन्न करना चाहिए।
6. **प्रेरणा (Motivation)** प्रेरणा का अधिगम की प्रक्रिया में सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान है। यदि बालक सीखने के लिए प्रेरित नहीं होता तो वह सीखने के कार्य में रूचि नहीं लेता है। अत: अध्यापकों को चाहिए कि सीखने से पहले बालक को सीखने के लिए प्रेरित करें। प्रशंसा व प्रोत्साहन के द्वारा तथा प्रतिद्वन्दिता व महत्वाकांक्षा की भावना उत्पन्न करके बालकों को प्रेरित किया जा सकता है।

7. **थकान (Fatigue)**थकान सीखने की प्रक्रिया में बाधा उत्पन्न करती है। थकान की स्थिति में बालक पूर्ण मनोयोग से सीखने की क्रिया में रत नहीं हो पाता है तथा उसका ध्यान विकेन्द्रित होता रहता है जिससे थकान की स्थिति में सीखना संदिग्ध हो जाता है। प्रात: काल बालक स्फूर्ति से युक्त रहते है जिसके कारण प्रात:काल में सीखने में सुगमता रहती है। धीरे-2 बालकों की स्फूर्ति में शिथिलता आती जाती है जिसके कारण बालकों की सीखने की गति मन्द होती जाती है। अत: बालकों के पढ़ने की समय-सारणी बनाते समय विश्राम की व्यवस्था रखने का भी ध्यान रखना चाहिए।
8. **वातावरण (Atmosphere)**अधिगम की प्रक्रिया पर वातावरणका भी प्रभाव पड़ता है। शान्त, सुविधाजनक, नेत्रप्रिय, उचित प्रकाश तथा वायु वाले वातावरण में बालक प्रसन्नतासे व एकाग्रचित होकर सीखता है। इसके विपरीत शोरगुल वाले अनाकर्षक तथा असुविधाजनक वातावरण में बालक के सीखने की प्रक्रिया मंद हो जाती है। ऐसे वातावरण में बालक जल्दी ही थकान का अनुभव करने लगता है। अत: अभिभावकों, अध्यापकों तथा प्राचार्यो को घर, कक्षा व विद्यालय के अंदर सीखने में सहायक वातावरण तैयार करने का प्रयास करना चाहिए।
9. **सीखने की विधि (Learning Methods)** सीखने की विधि का भी अधिगम की क्रिया में महत्वपूर्ण स्थान होता है। कुछ विधियों से सीखा ज्ञान अधिक स्थायी होता है। खेल विधि या करके सीखना विधि जैसी मनोवैज्ञानिक व आधुनिक विधियों से ज्ञान शीघ्रता व सुगमता से प्राप्त किया जाता है तथा यह ज्ञान अधिक स्थायी होती है। इसके विपरीत अमनोवैज्ञानिक विधियों से यदि बालकों को जबर्दस्ती सिखाया जाता है तो बालक सीखने में रुचि नहीं लेता है। अत: बालकों को सीखाते समय उपयुक्त विधि का चयन करना चाहिए।

3.4.2 अधिगम योजना के विविध घटक

किसी नई क्रिया या नए पाठ को सिखने के लिए विभिन्न घटकों का प्रयोग किया जाता है। ये घटक इस प्रकार है –

a. **करके सीखना-** बालक जिस कार्य को स्वयं करते है उसे जल्दी सीखते है। कारण यह है की उसे करने में वे उसके उदीस्य का पता चलता हैं, उसको करने की योजना बनाते हैं और योजना को पूर्ण करते हैं।
b. **निरीक्षण करके सीखना-**बालक जिस वस्तु का निरीक्षण करते है, उसके बारे में वे जल्दी और स्थायी रूप से सीखते है। इसका कारण यह है कि वे निरीक्षण करते समय उस वस्तु को छुते है या प्रयोग करते है या उसके बारे में बातचीत करते है।
c. **परीक्षण करके सीखना-** नइ बातों की खोज करना, एक प्रकार का सीखना है। बालक इस खोज को परीक्षण द्वारा कर सकता है। परीक्षण के बाद वह निष्कर्ष तक पहुंचता है।
d. **सामूहिक विधियों द्वारा सीखना-** सीखने का कार्य व्यक्तिगत और सामूहिक विधियों द्वारा होता है। इन दोनों में सामूहिक अधिक प्रभावशाली और उपयोगी माना जाता है। मुख्या सामूहिक विधियाँ निम्नलिखित है-

- वाद-विवाद विधि
- वर्कशॉप विधि
- सम्मलेन व विचार-गोष्ठी विधियाँ
- प्रोजेक्ट, डाल्टन व बेसिक विधियाँ

3.5 अधिगम योजना का संरचनात्मक मॉडल या पाँच इ (5E) मॉडल

आजकल छात्रों के मन में भाषा शिक्षण की दुरूह एवं भयावह प्रतिमूर्ति विकसित होती जा रही है।फलस्वरूप छात्र भाषा शिक्षण के निकट आने की अपेक्षा दूर होते जा रहे है। इसका मुख्या कारण है शिक्षा की दोषपूर्ण शिक्षण पद्धति, जिसमे भाषा की मौलिकता, सरलता, सरसता, सहजता एवं समुचित बोधगम्यता का ह्रास हो जाता है। इस दृष्टि से भाषा शिक्षण में सरसता, सरलता, रोचकता एवं बोधगम्यता लाने के लिए कक्षा में विभिन्न शिक्षण पद्धतियों का प्रयोग कर अध्यापन करना चाहिए।

3.5.1अधिगम योजना का संरचनात्मक मॉडल

हरबार्टीय पञ्चदी-प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री व मनोवैज्ञानिक हरबार्ट के सिद्धान्तों के आधार पर उसके शिष्यों ने इस सिद्धांत को प्रस्तुत किया था। अन्य विषयों की भाँति संस्कृत शिक्षणकरते समय भी इसका प्रयोग किया जाने लगा। इसमें पाँच पदों द्वारा पाठ के शिक्षण का विधान किया गया है ये पाँच पद हैं-

(1) प्रस्तावना-यह छात्रों के पूर्वज्ञान से संबंधित होती है। इसमें पढ़ाए जाने वाले पाठ को जोड़ने के लिए कतिपय सरल प्रश्न छात्रों से पूछे जाते हैं जो कि परस्पर संबंधित होते हैं। यदि प्रस्तावना सफल रहती है तब पाठ की सफलता के अवसर भी बढ़ जाते हैं। अत:इसे विवेक से बनाया जाना चाहिये। यह अन्त:कथा, उदाहरण, चित्र व प्रश्नों के माध्यम से निकलवाई जा सकती है इसके उदाहरणार्थ देखें विभिन्न पाठ योजनाएँ जो इस ही पुस्तक में प्रत्येक विधा के साथ दी गई है।

(2) विषयोपस्थापन- इस सोपान के उद्देश्य कथन के साथ विषय का प्रस्तुतीकरण किया जाता है। प्रत्येक विधा को पढ़ाते समय विषयोपस्थापन अलग-अलग ढंग से किया जाता है जैसे गद्य पाठ में आदर्श वाचन,अनुकरण वाचन के बाद विविध विधियों से काठिन्यनिवारण, पाठप्रवर्धन प्रश्नोत्तर माध्यम से, सार कथन आदि किया जाता है।

(3) तुलना- जिन-जिन स्थलों पर कठिनाई होती है उन शब्दों व भावों को स्पष्ट करने के लिए विविध दृश्य-सामग्री का प्रयोग किया जाता है तथा तुलना करवाते हुए विषय स्पष्ट किया जाता है।

(4) सामान्यीकरण-इस सोपान में पढ़े गए पाठ के निष्कर्ष अथवा सार पर छात्र पहुँचने का प्रयत्न करते हैं जैसे व्याकरण शिक्षण में विविध उदाहरणों का अध्ययन करने के बाद तत्संबंधी नियम

बताना। गद्य व पद्य शिक्षण में पाठ का सार अध्यापक द्वारा बताना तथा छात्रों से प्रश्नों द्वारा मुख्य भाव ज्ञात करना। समान भाव की कविता के आधार पर प्रश्न पूछना आदि।

(5) प्रयोग- पाठ को पढ़ाने व तुलनात्मक अध्ययन करने के बाद नवार्जित ज्ञान को व्यवहार में लाने की योग्यता छात्रों में उत्पन्न करना आवश्यक है। इस सोपान में संस्कृत भाषा के पाठों में छात्रों से अभ्यास कार्य करवाया जाता है। यह अभ्यास कार्य कक्षा कार्य व गृहकार्य के माध्यम से सम्पन्न होता है। इसका मुख्य उद्देश्य छात्रों के प्राप्त ज्ञान को परिपुष्ट करना है।

3.5.2 अधिगम योजना का संरचनात्मक मॉडल के गुण

संरचनात्मक मॉडल के निम्नलिखित गुण इस प्रकार है-

i. यह विधि मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित है। इसमें शिक्षण सूत्रों का पूर्णत: अनुसरण किया जाता है।
ii. इस विधि द्वारा शिक्षण क्रमबद्ध होता है।
iii. इसमें शिक्षण की बोधगम्यता पर बल दिया जाता है।
iv. इससे प्राप्त ज्ञान स्थायी होता है।

3.5.3 अधिगम योजना का संरचनात्मक मॉडल के दोष

संरचनात्मक मॉडल के निम्नलिखित गुण इस प्रकार है-

i. सभी विषयों के शिक्षण में यह उपयोगी नहीं है जैसे- विज्ञान विषय ।
ii. संस्कृत शिक्षण करते समय भी सभी विधाओं के लिए लाभदायक नहीं है।

तथापि इस विधि का प्रयोग लम्बे समय से किया जा रहा है क्योंकि अन्य विधियों की तुलना में यह पूर्णता लिए हुए है। यदि इसमें थोड़ा बहुत परिवर्तन विधा व विषय के अनुसार किया जाए तब यह बहुत उपयोगी भी सिद्ध हो सकती है।

3.6 संस्कृत भाषा-शिक्षण के लिए पाँच इ मॉडल का एक उदाहरण

संस्कृत भाषा-शिक्षण में सुगम्यता एवं रोचकता लाने हेतु पाँच इ मोडल का प्रयोग किया जाता है। इस विधि द्वारा छात्रों के भीतर भाषा के प्रति रूचि उत्पन्न होता है। संस्कृत पाठ्यवस्तु को सरल, सरस, सहज एवं बोधगम्य बनाना एवं सामान्य- व्यवहार में आने वाले शब्दों का पाठ्यवस्तु में समावेश करना नितान्त आवश्यक है। इस प्रकार छात्र संस्कृत विषय के सन्निकट आयेंगे तथा संस्कृत के प्रति उनकी रूचि बढ़ेगी।

3.6.1 संस्कृत भाषा-शिक्षण के लिए पाँच इ मॉडल का एक उदाहरण

गद्य पाठ योजना

बिल्व पत्रस्य महत्त्वम्

भगवान शिव: सर्वदेवेषु अत्यधिक: लोकप्रिय: दयालुश्च मन्यते। कथयते- यत् शिव: स्वभक्तेषु शीघ्रतया प्रसन्न: भवति। तस्य अप्रत्यक्ष रूपे स्मृते अपि द्रवित: भवति। निम्न घटना एकस्य शिव भक्तस्य अस्ति।

एक: महान आखेटक: आसीत्। स: आखेटम अन्वेषणार्थं ऐके वृक्षे आरूरोह। तस्य चरणाभ्यां तस्य वृक्षस्य पत्राणि अधोस्थित शिवलिङे अपतन्। अयं वृक्ष: शिवं प्रिय: वृक्षेषु एक: आसीत्। बिल्व पत्राणां शिवलिङे पतनेन्, शिव: प्रसन्न: अभवत् शिव: तत्काल प्रकटितो भूत्वा तम् आखेटकम् अकथयत्- 'याच् वरम्'।

तदा आखेटक: अवदत्- अहं तु तव आराधनामेव न कृतवान, पुन: अपि इयम् कृपा कथम्। तदा शिव: उत्तरम् अददात्- यं: जन: मम शिवलिङे बिल्व पत्राणि अर्पयन्ति । स: मम रोचते। अत: त्वम् वरदानाधिकारी असि।

आखेटक: धनुषबाणान् अवतार्य शिवसय चरणौ प्रणम्याद्। अधुना अहं कुत्सित मार्गान् त्यक्त्वा परं भक्ति मार्गं ग्रहीष्यमि। इत्थं स: आखेटक: शिवस्य पूजक: अभवत्: अस्मिन् लोके सुखं प्राप्य वैकुण्ठं च अगच्छत्।

दिनांक: 03/06/2005 **विषय:**संस्कृतम् **कालांश:** द्वितीय:
कक्षा: अष्टी 'स' **विधा:** गद्यम् **समय:** त्रिंशत् कलानि
प्रकरणम्- बिल्व पत्रस्य महत्त्वम्

3) संलग्न

उद्देश्यानि	अपेक्षित व्यवहारगत-परिवर्तनानि
3.ज्ञानात्मकम् (क) भाषा तत्वानां ज्ञानम् आखेटक:, अनवेषणार्थं, भूत्वा, अर्पयन्ति अवतार्य, ग्रहीष्यामि अत्यधिक: (ख) विषयवस्तुनो: ज्ञानम् भगवान शिव:..... ..... वैकुण्ठम् अगच्छत्।	छात्रा: नवीन शब्दानां प्रतयभिज्ञानं करिष्यन्ति। छात्रा: ऐते शब्दानां प्रत्यास्मरणं करिष्यन्ति। छात्रा: नवीन शब्दानां स्ववाक्येषु प्रयोगं कर्तुं शक्षन्ति। ते नवीन शब्दानां संश्लेषणं विश्लेषणं च करिष्यन्ति। ते अशुद्धि संशोधनमपि करिष्यन्ति।

2. अर्थग्रहणम् (क) श्रुत्वा अर्थग्रहणस्य क्षमतोत्पादनम्। (ख) पठित्वा अर्थग्रहणस्य क्षमतोत्पादनम्। 3. अभिव्यक्ति: (क) मौखिकाभिव्यक्ति: (ख) लिखिताभिव्यक्ति:	 छात्रा: मनोयोग पूर्वकं श्रोष्यन्ति। छात्रा: श्रुत्वा अर्थग्रहणं करिष्यन्ति। ते श्रवणे शिष्टाचारस्य पालनं करिष्यन्ति। छात्रा: समुचितारोहवरोहपूर्वकं विषयवस्तुनो: वाचनं करिष्यन्ति। छात्रा: यथोचितं भावानुकूलं अभिव्यक्ति: करिष्यन्ति। ते प्रसंगानुकूलं भावानाम् अभिव्यक्ति: करिष्यन्ति। छात्रा: सरल संस्कृत वाक्येषु प्रश्नानां उत्तरं दास्यन्ति। छात्रा: शुद्ध-सरल स्पष्ट वाक्येषु रचना कार्यं करिष्यन्ति।
	ते गृहकार्य माध्यमेन लिखित्वा अभिव्यक्ति: करिष्यन्ति।
उद्देश्यानि	अपेक्षित व्यवहारगत-परिवर्तनानि
4. कौशलम् वाचनं, लेखनं वर्तनी विरामञ्च	छात्रा: समुचितारोहवरोहगतिपूर्वकं शुद्ध वाचनस्य क्षमतां प्राप्स्यन्ति। ते लेखने विरामादि चिह्नानां ध्यानं रक्षिष्यन्ति। ते शुद्ध लेखनस्य क्षमतां प्राप्स्यन्ति।
5. अभिरुचि: भाषायां साहित्यं च प्रति रुचे: विकासकरणम्।	छात्रा: पाठ्यपुस्तकात् अतिरिक्तानि पुस्तकानि, पत्र-पत्रिकाश्च पठिष्यन्ति। छात्रा: साहित्यिक-सांस्कृतिक गतिविधिषु सहयोगं दास्यन्ति।
6. अभिवृत्ति सद्वृत्तिनां विकासकरणम्।	छात्रा: शिवं प्रति आस्थावन्ता: भविष्यन्ति। तेषां कुत्सित मार्गान् त्यक्त्वा परं भक्ति मार्गं ग्रहणस्य सद्वृत्ति: विकसित: भविष्यन्ति।

सहायकोपकरणानि- कक्षा-कक्षस्य समान्योपकरणानि, यथा- लपेटफलकं, श्वेतवर्तिका:, संकेतकं, प्रौञ्छन वस्त्रं, शिवलिङस्य प्रतिरूपं, बिल्व पत्राणि इत्यादय:।

पूर्वाज्ञानम्- छात्रा: बिल्व पत्रस्य विषये सामानय रूपेण परिचिता: सन्ति।

2) विस्तृत

पाठोपस्थानम्

छात्राध्यापकस्य क्रिया:	**छात्राणं क्रिया:**
(छात्राध्यापक: शिवलिङ प्रतिरूपं दर्शयित्वा प्रश्नान् प्रक्ष्यन्ति) 1. प्रस्तुत प्रतिरूपं कस्य अस्ति? 2. वयं शिवलिङे का: का: सामग्री अर्पयाम: ? 3. शिवाय का वस्तु अत्यधिकं रोचते? 4. बिल्व पत्रस्य किं महत्त्वं अस्ति?	छात्रा: उत्तरान् दास्यन्ति। शिवलिङस्य। चन्दनं, तण्डुलान, बिल्व पत्राणि इत्यादय:। बिल्व पत्राणि। समस्यात्मकम्।

3) व्याख्या

पाठ्याभिसूचनम्- भो छात्रा:! अद्य वयं ''बिल्व पत्रस्य महत्त्वं'' विषये विस्तारपूर्वकम अध्ययनं करिष्याम:।

प्रस्तुतीकरणम्-

शिक्षण सोपानानि	छात्राध्यापस्य क्रिया:	छात्राणां क्रिया:	श्यामपट्टकार्यम्
आदर्शवाचनम्	छात्राध्यापक: छात्राणां सम्मुखं ''बिल्व पत्रस्य महत्त्वं'' पाठस्य उचित आरोहावरोह गतिपूर्वकेण, विरामादि चिह्नानुसारेण आदर्श वाचनं करिष्यति।	छात्रा: छात्राध्यापक-कृत आदर्श वाचनं ध्यानपूर्वकं श्रोष्यन्ति।	
शिक्षण सोपानानि	छात्राध्यापस्य क्रिया:	छात्राणां क्रिया:	श्यामपट्टकार्यम्
अनुकरण वाचनम् अशुद्धि संशोधनम् काठिन्य निवारणम्	छात्राध्यापक:कतिपय छात्रान् अनुकरण वाचनार्थं निर्देशं दास्यति तथा स्वयं अनुकरण वाचनं ध्यान पूर्वकं श्रोष्यन्ति छात्राध्यापक: अनुवाचनसमये छात्रकृतान् दोषन् अन्येषां छात्राणां	निर्दिष्टा: छात्रा: अनुकरण वाचनं करिष्यन्ति। अपरा: छात्रा: ध्यानपूर्वकं श्रोष्यन्ति। छात्रा: छात्राध्यापकस्य निर्देशानुसारेण अशुद्धि	

	सहाय्येन संशोधनं करिष्यति। छात्राध्यापक: छात्राणां सहयोगेन कठिन शब्दानां अर्थान्	संशोधनं करिष्यन्ति। छात्रा: कठिन शब्दानां अर्थान् स्व–स्व उत्तर पुस्तिकासु लेखिष्यन्ति।	

4) विस्तार

शब्दा:	**अर्था:**	**प्रविद्यय:**	**व्याख्या:**
आखेटक: अन्वेषणार्थं भूत्वा अर्पयन्ति अवतार्य ग्रहीष्यामि अत्यधिक:	शिकारी खोजने के लिए होकर अर्पित करते हैं। उतारकर ग्रहण करूँगा बहुत अधिक	वाक्य प्रयोग: सन्धि: प्रत्यय: व्युत्पत्ति: वाक्य प्रयोग: व्युत्पत्ति: सन्धि:	आखेटक: आखेटं करोति। अन्वेषण+अर्थम् भू धातु क्त्वा प्रत्यय अर्पधातु लट् लकार, प्रथम पुरुष, बहुवचन स: स्व वस्त्रान् अवतार्य स्नानं करोति। ग्रह् धातु लट् लकार, उत्तम पुरुष एकवचन अति+अधिक: इ +अ= श् (यण् सन्धि)

शिक्षण सोपानानि	**छात्राध्यापस्य क्रिया:**	**छात्राणां क्रिया:**	**श्यामपट्टकार्यम्**
बोध प्रश्ना:	छात्राध्यापक: विषय वस्तुनो: अंगीकृतान्	छात्रा: प्रश्नानाम् समुचित उत्तरान् दास्यन्ति	

	कतिपय बोध प्रश्नान् (बिल्व पत्राणि प्रस्तुतं कृत्वा) 1. इदं किम् अस्ति	इदं बिल्व पत्रम् अस्ति।	
शिक्षण सोपानानि	**छात्राध्यापस्य क्रिया:**	**छात्राणां क्रिया:**	**श्यामपट्टकार्यम्**
विचार विश्लेषणात्मक प्रश्ना:	2. बिल्व पत्रं कस्मै प्रियं आसीत्। 3. शिवभक्त: क: आसीत्? 4. वृक्षस्य अध: किम् आसीत्? छात्राद्यापक: छात्रेभ्य: मौनपठनार्थ निर्देशं दास्यति तथा स्वयं कक्षायां निरीक्षणं करिष्यति। छात्राध्यापक: विषयवस्तुनो: अंगीकृतान् कतिपय विचार विश्लेषणात्मक प्रश्नान् प्रक्ष्यति। 1. शिवप्रिय: वृक्ष: क: आसीत्? 2. शिव: प्रकटितो भूत्वा आखेटकं किम् अकथयत्? 3. आखेटक: धनुष बाणान् अवतार्य कस्मै प्रणामम्	शिवप्रियम् आसीत्। आखेटक: शिवभक्त: आसीत्। वृक्षस्य अध: शिवलिंडम् आसीत्। छात्राद्यापकस्य निर्देशानुसारेण छात्रा: शान्तिपूर्वकं मौन पठनं करिष्यन्ति। छात्रा: तेषां समुचित उत्तरान् दास्यन्ति। शिवप्रिय: वृक्ष: बिल्व वृक्ष: आसीत्। शिव: प्रकिटितो भूत्वा आखेटकम् अकथयत् यत् 'वर याच्'। आखेटक: धनुष बाणान् अवतार्य शिवाय प्रणाम् अकरोत्।	

अध्यापक कथनम्	अकरोत्? 4. शिवस्य पूजक: क: अभवत्? 5. सुखं प्राप्य आखेटक: कुत्र अगच्छत्? छात्राध्यापक: विषयवस्तुनो: सारांशं छात्राणां सम्मुखं प्रस्तुतं करिष्यति। शिव: स्वभक्तेषु शीघ्रतया प्रसन्न: भवति।य: शिवाय बिल्व पत्राणि अर्पयन्ति, तस्य सर्वाणां मनोकामनानां पूर्ति: भवति। स: अस्मिन् लोके सुखं प्राप्य वैकुण्ठं गच्छति।	शिवस्य पूजक: आखेटक: अभवत्। सुखं प्राप्य आखेटक: वैकुण्ठम् अगच्छत् छात्रा: ध्यानपूर्वकं श्रोष्यन्ति।	

5) मूल्यांकन।

मूल्यांकन प्रश्न:

निर्देश:उचित विकल्पं कोष्ठके लिखत-

1. अत्यधिक: अस्य शब्दस्य विश्लेषणं कुरूत-
   (अ)अत्य+ धिक (आ) अति + अधिक:
   (इ) अत्यधि + क (ई) अती + धिक् ( )
2. आखेटक: कान् अवतार्य शिवस्य चरणौ प्रणमति?
   (अ) शिरस्कान् (आ) अनुषबाणान्
   (इ) बन्दूकम् (ई) दण्डम् ( )

निर्देश:रिक्त स्थानयो: पूर्ति कुरूत-

3. शिव: शीघ्रतया_____ भवति। (प्रसन्न:/ क्रुद्ध)
4. बिल्व पत्राणां_____पतनेन शिव: प्रसन्न: भवति(शिवलिंडे/भूमौ)

निर्देश:एकस्यां पंक्त्यां उत्तरं ददातु-

5. आखेटक: धनुषबाणान् अवतार्य कस्य चरणौ प्रणस्याद

गृहकार्यम्- ''बिल्व पत्रस्य महत्त्वं'' पाठस्य सारांशं लिखित्वानयत।

3.6 सारांश

अधिगम योजना व्यक्ति अपने जीवन के प्रारंभ में ही योजना बनाता है और सीखना आरंभ कर देता है एवं जीवनपर्यन्त सीखता ही रहता है। बालक शैशवावस्था के आरंभ से बिल्कुल असहाय होता है। उसका जीवन दूसरों पर निर्भर रहता है, किंतु वह धीरे-धीरे अपने को वातावरण के अनुकल व्यवस्थापित करने का प्रयत्न करता है। उसके सीखने की प्रक्रिया में दो मुख्य तत्त्व निहित होते है जो उसे वातावरण के अनुकूल व्यवस्थित करने में सहायता पहुँचाते है। (3) परिपक्वता (2) अनुभूति से लाभ उठाने की योग्यता, बालक की परिपक्वता, उसकी अभिवृद्धि और विकास के, जो उसकी उम्र के बढने के साथ-साथ होता जाता है।

सीखने से तात्पर्य 'संचयी उन्नति' (Cumulative Improvement)। उन्नति के स्वरूप का आकलन उन परिवर्तनों द्वारा किया जा सकता है जो उस समय होते है जबकि सीखने की क्रिया हो रही होती है।

प्रत्येक व्यक्ति नित्यप्रति अपने जीवन में नये अनुभव एकत्र करता रहता है। ये नवीन अनुभव, व्यक्ति के व्यवहार में वृद्धि तथा संशोधन करते हैं। इसलिये ये अनुभव तथा इनका उपयोग ही सीखना या अधिगम करना कहलाता है।

3.7 शब्दावली

1. **अधिगम-** ''अधिगम'' किसी स्थिति के प्रति सक्रिय प्रतिक्रिया है। अधिगम (सीखना) मूलत: अभ्यास या प्रयास पर निर्भर करता है। किसी भी कार्य में कौशल या दक्षता प्राप्त करने के लिए हमें उसे पहले सीखने का प्रयास करना पड़ता है।
2. **अधिगम योजना-** अधिगम योजना व्यक्ति अपने जीवन के प्रारंभ में ही योजना बनाता है और सीखना आरंभ कर देता है एवं जीवनपर्यन्त सीखता ही रहता है।
3. **E मॉडल-** 5E मॉडल रचनात्मक विधि पर आधारित होता है। इस विधि द्वारा छात्र अपने पुराने विचारों के आधार पर नए विचार विकसित करता है। इसमें 5 तत्त्व है-संलग्न, विस्तृत, व्याख्या, विस्तार और मूल्यांकन।

3.8 अभ्यास प्रश्न

1. अधिगम योजना की अवधारणा स्पष्ट कीजिए।
2. अधिगम योजनाके विविध घटकों का वर्णन कीजिए।
3. 5 E मॉडल क्या अर्थ है ? उसके महत्व को स्पष्ट कीजिए।
4. 5 E मॉडल के कौन-कौन से गुण है ?
5. 5 E मॉडल के घटकों का उल्लेख करें ?

3.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. पाण्डेय, डा. रामशकल; संस्कृत शिक्षण, विनोदपुस्तकमन्दिर, आगरा (2005)
2. मित्तल, डॉ. संतोष, संस्कृत शिक्षण, आर. लाल. बुक डिपो, 2030
3. पाठक, पी. डी., शिक्षा मनोविज्ञान, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा-2, 2030
4. सिंह, अरुण कुमार, शिक्षा मनोविज्ञान, विनोदपुस्तकमन्दिर, आगरा

3.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. अधिगमका अर्थ स्पष्ट करते हुए अधिगम योजना की अवधारणा स्पष्ट करें।
2. अधिगम योजना को प्रभावित करने वाले घटकों का वर्णन करें एवं उसके विविध विधियों का विस्तृत रूप से वर्णन करें।
3. भाषा शिक्षण के लिए अधिगम योजना क्यों आवश्यक है? अधिगम के विविध पद्धतियों का उल्लेख कर पांच इ मॉडल का विस्तारपूर्वक वर्णन करें।
4. 5Eमॉडल क्या है? इसके पांच तत्वों का वर्णन करें।संस्कृत पाठ का उदाहरण देकर 5Eमॉडल के तत्वों को स्पष्ट करें।

इकाई 4 - भाषाई कौशलों का विकास एवं उनका मूल्यांकन संस्कृत भाषा के विशेष सन्दर्भ में

4.1 प्रस्तावना
4.2. उद्देश्य
4.3. भाषायी कौशल
4.3.3 भाषायी कौशल का आशय
4.3.2 भाषा शिक्षण में भाषायी कौशल का स्थान व महत्त्व
4.4. पठन कौशल का आशय एवं महत्त्व
4.5 श्रवण कौशल का आशय
4.6. लेखन कौशल का आशय एवं महत्त्व
4.7 मौखिक अभिव्यक्ति का आशय
4.7.3 मौखिक अभिव्यक्ति का विकास
4.7.2 मौखिक अभिव्यक्ति कौशल की विशेषताएँ
4.8 उच्चस्तरीय भाषिक कौशल का आशय
4.9 सारांश
4.10 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर
4.11 सन्दर्भ ग्रन्थ
4.12 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में हम प्रमुख भाषायी कौशलों के सम्बन्ध में अध्ययन करेंगे। हम जानते हैं कि अपने दैनिक जीवन में प्रत्येक व्यापार में अवसरानुकूल बोलचाल ही सफलता दिलाती है। अपनी मीठी वाणी, शिष्टभाषा व वाक् चातुर्य से दुश्मन को भी मित्र बना सकते हैं।

भाषा सीखने के प्रायः यह क्रम निर्धारित किया गया है- सुनना(श्रवण), बोलना(वाचन), पढ़ना (पठन) एवं लिखना (लेखन)। यह क्रम सभी भाषाओं के लिए समान है। मातृभाषा व द्वितीय भाषा सीखने में अन्तर सिर्फ इतना है कि मातृभाषा जन्म के साथ सीखना प्रारम्भ कर देते हैं। वहीं द्वितीय भाषा को

विद्यालय के पाँचवीं व छठी कक्षा से। संस्कृत हमारे यहाँ द्वितीय या तृतीय भाषा के रुप में पढ़ायी जाती है। अतः छठी कक्षा से संस्कृत को पढ़ने-लिखने व स्वतंत्र रुप से बोलने का क्रम निर्धारित है। जबकि स्वतंत्र लेखन व अभिव्यक्ति का क्रम अन्तिम है।

अतः इस इकाई में आप संस्कृत भाषा शिक्षक के रूप में विविध भाषाकौशल पठन, श्रवण, लेखन एवं मौखिक अभिव्यक्ति का समग्र रुप से अध्ययन करेंगे। जिससे भाषा कौशलों के बारीकियों का अध्ययन कर अपने शैक्षिक जीवन का तथा शिक्षार्थियों को विविध भाषायी कौशलों में दक्ष बनाने में सफल होंगे।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययनोपरान्त आप पठन के आशय को बता सकेंगे।

1. पठन की प्रक्रिया एवं प्रकार के सोपानों का विवेचन कर सकेंगे।
2. श्रवण का आशय बता सकेंगे।
3. श्रवण के प्रकार एवं क्रिया-कलापों का विवेचन कर सकेंगे।
4. लेखन कौशल से परिचित हो सकेंगे।
5. लेखन प्रक्रिया एवं प्रकारों का विवेचन कर सकेंगे।
6. मौखिक अभिव्यक्ति की विशेषताओं का उल्लेख कर सकेंगे।
7. उच्चस्तरीय भाषिक कौशलों को बता सकेंगे।
8. उच्चस्तरीय भाषिक कौशल के विकास के साधनों का वर्णन कर सकेंगे।

4.3 भाषायी कौशल

भाषा एक व्यवहार कौशल है। व्यवहार को सरल व सरस भाषा ही बनाती है। भाषा के मुख्यतः दो व्यापार हैं- 3. भाव व विचारों की अभिव्यक्ति एवं 2. भावों व विचारों का अभिग्रहण। भाषा के प्रमुख दो रुप हैं – 3. मौखिक भाषा व 2. लिखित भाषा। अतः इस प्रकार भाषा के चार प्रमुख कौशल हुए- 3.श्रवण (सुनना), 2.वाचन (बोलना), 3.पठन (पढ़ना) तथा 4.लेखन (लिखना)। इस प्रकार भाषा सीखने के क्रम का भाषा वैज्ञानिकों तथा मनोवैज्ञानिको ने जो क्रम निर्धारित किया है, वे हैं-श्रवण-वाचन-पठन व लेखन। यही क्रम सभी भाषाओं को सीखने का हैं, चाहे वह मातृभाषा हो अथवा राष्ट्रभाषा या अन्तर्राष्ट्रीय भाषा/प्रथम भाषा, द्वितीय भाषा तथा तृतीय भाषा। भारतीय शिक्षा व्यवस्था में तीन भाषा सीखने का प्रावधान है। अतः किसी भी भाषा को सीखने का यही क्रम है; जिसे भाषायी कौशल के नाम से जाना जाता है।

4.3.1 भाषायी कौशल का आशय

कौशल का अभिप्राय है वह छोटी-छोटी क्रियाएँ जिसके द्वारा निश्चित उद्देश्य की प्राप्ति हो सके। भाषायी कौशल से तात्पर्य है वे क्रियाएँ जो भाषा सीखने में मदद करे। भाषायी कौशल भाषा की बारीकियों को बताते हुए भाषा के दोनों ही व्यापार अभिग्रहण एवं अभिव्यक्ति को सुगम व सरल बनाती है; भाषा कौशल या भाषायी कौशल कहलाती है।

एक व्यक्ति अपने ही समूह के अन्य व्यक्ति या व्यक्तियों से अपने भाव व विचार को प्रकट करने तथा दूसरे व्यक्ति व व्यक्ति समूह के भाव व विचार को ग्रहण करने के लिए जिन साधन का उपयोग करते हैं। वह संकेत विशेष भाषा है। यह संकेत सरल व सटीक हों इसके लिए विविध कौशलों का प्रयोग किया जाता है। इसे भाषायी कौशल कहते है।

4.3.2 भाषा-शिक्षण में भाषायी कौशल का स्थान व महत्त्व

भाषाशिक्षण प्रायः लिखित भाषा से सम्बद्ध है। जो साहित्यिक व मानक भाषा को सीखने-सीखाने में अपना योगदान देता है। जो भाषा के दोनों या तीनों प्रकार के अभिव्यक्ति यथा- पठन-लेखन व मौखिक को परिष्कृत करती है।

शिक्षणविज्ञान में विशेष रुप से भाषा के ध्वनियों व वर्णो के श्रवण-अभिज्ञान व अभिव्यक्ति के बाद शब्दों व वाक्यों का श्रवण, अर्थबोध व अभिव्यक्ति के लिए सर्वप्रथम भाषायी कौशलों का ज्ञान एक भाषा शिक्षक के लिए अनिवार्य है। इसलिए भाषा शिक्षण में भाषायी कौशल एवं भाषा-कौशल-शिक्षण का महत्वपूर्ण स्थान है। अतः शिक्षणशास्त्रीयों ने भाषा शिक्षण के विविध-विधाओं के शिक्षण से पहले भाषाकौशल शिक्षण को स्थान प्रदान किया है। जहाँ सम्बद्ध भाषा के ध्वनिविज्ञान, रुपविज्ञान,वाक्यविज्ञान तथा अर्थविज्ञान पर भी बल दिया है।

भाषा के विविध कौशल श्रवण-वाचन-पठन व लेखन के विविध तरीकों, उनके प्रकारों व उन से सम्बद्ध क्रिया कलापों का भाषाशिक्षण में महत्वपूर्ण स्थान है।

- **श्रवण-** श्रवण के प्रकार, श्रवण के क्रम, श्रवण के साथ अर्थबोध प्रमुख हैं।
- **वाचन-** वाचन के प्रकार, वाचन के क्रम , वाचन के द्वारा भाव व विचारों की अभिव्यक्ति ।
- **पठन-** पठन के प्रकार, पठन के क्रम, पढ़कर अर्थ ग्रहण व पढ़कर लेखक व कवियों के भावों व विचारों से श्रोताओं का अर्थबोध आना ।
- **लेखन-** लेखन का प्रारम्भ, लेखन के प्रकार तथा स्वतंत्र लेखन अर्थात् रचना करना।

उक्त चारों कौशलों का महत्व भाषाशिक्षण में स्वतः सिद्ध है।

आप के कक्षा-कक्ष में विभिन्न प्रकार के शिक्षार्थी होते है; सभी समान योग्यता के नहीं होते; समान योग्यता रहने पर भी चारों कौशल को समान रुप से नहीं जानता। अतः आप प्रयत्न करेंगे कि अधिकांश

शिक्षार्थियों को उक्त चारों कौशलों को सीखने में आने वाली बाधाओं को दूर करने तथा कौशल को सीखने में सम्यक् सहायता पहुँचाना।

अभ्यास प्रश्न

1. भाषा के प्रमुख रुप कौन-कौन से हैं?
2. भाषा सीखने के क्रम हैं ?

4.4. पठन कौशल का आशय एवं महत्त्व

आप पढ़ चुके हैं कि भाषा सीखने के चार कौशल हैं। इन चारों ही कौशलों में पठन का स्थान महत्त्वपूर्ण है। पठन शब्द संस्कृत के पठ् धातु से निष्पन्न है। मौखिक भाषा में इसके लिए वाचन या बोलना प्रयुक्त होता है जो प्रायः वच् धातु से निष्पन्न है। पठन दो अर्थों में प्रयुक्त होता है-3. पढ़ कर अर्थबोध करना तथा 2. पढ़ने के साथ-साथ दूसरों को अर्थबोध कराना।

विश्व में ज्ञान राशि मुद्रित तथा इलेक्ट्रौनिक रुप में विद्यमान हैं जिसे पढ़कर अपनी दैनिक जीवन को सरल बनाने तथा ज्ञान पिपासा की तृप्ति में उपयोग तभी कर सकते हैं जब आप सम्बद्ध भाषा को पढ़ने में समर्थ होते हैं।

मातृभाषा बालक अपनी माँ व परिवार से स्वतः ही अनुकरण से बोलना सीखना है, किन्तु मानक भाषा के तत्वों को जानकर ही शुद्धोच्चारण व शुद्ध पठन के लिए शिक्षक व शिक्षण प्रक्रिया की आवश्यकता पड़ती है। संस्कृत एक संश्लेषणात्मक भाषा है तथा इसका शिक्षण विद्यालयों में प्रायः कक्षा छः से प्रारम्भ होता है। जहाँ छात्र 33-32 वर्ष की आयु के होते हैं तथा अब तक मातृभाषा में बहुत कुछ पढ़ चुके होते हैं। इस अवस्था में उनके समस्त वर्णोच्चारण स्थलों का विकास लगभग हो जाता है। अतः इस अवस्था में छात्र मानसिक और शारीरिक रूप से पठन के लिए तैयार हो जाता है।

भारतीय परंपरा में पठन को शिक्षा का पर्याय माना जाता है लोग प्रायः सामाजिक स्तर का मापन पढ़े-लिखे होने से करते हैं। आज का शिक्षार्थी कल का नागरिक (शिक्षक) है अतः इस दृष्टि से भी शिक्षक के नाते हमें चाहिए कि हम शिक्षार्थी की पठन-दक्षता का समुचित विकास करें।

अभ्यास प्रश्न

3. पठन का हमारे जीवन में क्या महत्व है?
4. सामाजिक ज्ञान को प्राप्त करने का प्रमुख साधन क्या है?

4.4.3. पठन प्रक्रिया

पठन एक सोद्देश्य, सार्थक तथा चिंतन प्रधान क्रिया है। जहाँ न सिर्फ वर्णों व शब्दों के उच्चारण मात्र पर ध्यान न देकर अर्थ ग्रहण व चिंतन पर विशेष बल दिया जाता है। पाठक लिखित या मुद्रित शब्दाबली का उच्चारण के साथ-साथ अर्थ ग्रहण व मूल्यांकन भी करता है।

पठन प्रकिया के अंतर्गत पाठक शब्दों व वाक्यों के माध्यम से लेखक के विचार भाव व अभिप्राय (अभिधेयार्थ- लक्ष्यार्थ एवं व्यंग्यार्थ) को समझकर उसका मूल्यांकन भी करता है।

पठन के विषय में स्ट्रैंग कहते हैं- 'पढ़ते समय व्यक्ति की अनूभुतियाँ जागृत होती हैं और उसमें भावोद्रक होता है। वह पाठ्यवस्तु को पसंद करता है या नापसंद;उसे सहमत होता है या असहमत; उसके प्रति संतोष व्यक्त करता है या असंतोष। पाठक केवल विचार ग्रहण नहीं करता सृष्टि भी करता है। इस प्रकार पठन द्वारा अर्जित ज्ञान और अनुभव पाठक के जीवन का अंग बन जात है। वह उनका अपने दैनिक क्रिया कलापों में उपयोग करने लगता है। इस प्रकार पठन प्रक्रिया के चार सोपान हो जाते हैं।- प्रत्यभिज्ञान, अर्थग्रहण, मूल्यांकन तथा अनुप्रयोग।

4.4.2. प्रत्यभिज्ञान

इसके अंतर्गत शब्द के दृश्य (रचना) तथा श्रव्य (उच्चारण) रूपों को समझकर उसके मानसिक बिंब की रचना / शब्द के रूप, ध्वनि और अर्थ तीनों के संयोग से हमारे मस्तिष्क में शब्द का बिंब बनता है। इस बिंब या संप्रत्यय की सृष्टि हमारे पूर्व अनुभवों पर आधारित होती है। पठन क्रिया दक्ष पाठक शब्द के प्रत्येक अक्षर को अलग-अलग न देखकर सम्पर्ण रूप में देखता है। कभी-कभी तो एक साथ अनेक शब्दों को एक साथ देखकर उसका अर्थ ग्रहण करता है। अतः तीव्र गति से पढ़ने के लिए यह कौशल अत्यन्त आवश्यक है।

4.4.3. अर्थग्रहण

पठन के साथ-साथ अर्थग्रहण करना पाठक का महत्वपूर्ण गुण है । अर्थग्रहण की दक्षता पाठक से चिन्तन और मनन की अपेक्षा रखती है। अर्थग्रहण की दृष्टि से पाठन के अनेक पक्ष हो जाते हैं; पढ़ते समय विचारों और घटनाओं के क्रम को समझना, विशिष्ट तथ्यों का चयन, विस्तृत विवरण, लेखक के विचार भाव व काव्यशास्त्रीय तथ्यों की पहचान।

इस प्रकार अर्थग्रहण की दृष्टि से पठन के तीन स्तर हो जाते हैं- अभिधात्मक, विवेचनात्मक तथा सृजनात्मक। अभिधात्मक पठन में पाठ्य वस्तु के अर्थ का तथ्यात्मक निरुपण होता है। विवेचनात्मक पठन द्वारा लक्ष्यार्थ व व्यङ्ग्यार्थ का बोध तथा सृजनात्मक पठन में पाठक स्वानुभव के आधार पर लेखक के विचारों का मूल्यांकन करता हुआ नये दृष्टिकोण और निष्कर्ष की स्थापना करता है।

4.4.4 मूल्यांकन एवं प्रतिक्रिया

अर्थग्रहण के साथ ही पाठक गृहीत विचारों की उपयोगिता, औचित्य और विश्वसनीयता का निर्धारण भी करता चलता है। अच्छा पाठक वही कहलाता है जो लेखक द्वारा व्यक्त विचार व मंतव्य को समझते हुए उसका मूल्यांकन करता चले। साथ ही उसके प्रति अपनी वैचारिक और भावात्मक प्रतिक्रिया भी करें। उच्च कोटि का अर्थग्रहण वही है जिसमें पाठक के मूल्यांकन दृष्टि तथा प्रतिक्रिया का संयोग होता है। यथा- कविता पढ़कर रसानुभूति, नाटक पढ़कर साधारणीकरण तथा गद्य पढ़कर विचारसाम्य के मूल में हमारी भावात्मक अथवा मानसिक प्रतिक्रिया ही होती है।

4.4.5 अनुप्रयोग

पठन का उद्देश्य तभी पूरा होता हैं जब किसी पुस्तक अथवा रचना को पढ़कर हमारे विचार, व्यवहार, कौशल, अभिरुचि तथा जीवन मूल्यों में विकास तथा परिष्कार दिखाई दे। पठन की सार्थकता इसी बात में है कि पाठ्य सामग्री में निहित जिस भाव, आदर्श अथवा मूल्य से हम सहमत हो उसे आत्मसात् कर अपने जीवन में उतार लें।

अभ्यास प्रश्न

5. पठन व वाचन में अन्तर स्पष्ट करें?
6. पठन का अनुप्रयोग क्या है ?

4.4.6. पठन के प्रकार

पठन क्रिया प्रायः दो तरह से सम्पन्न की जाती है- सस्वर (बोलकर) तथा मौन (मन ही मन)। प्रारंभिक स्तर पर अर्थात् संस्कृत छठी कक्षा से पढ़ाई जाती है। अतः इस स्तर पर सस्वर पठन का विशिष्ट स्थान है। जिससे छात्रों को उच्चारण का ज्ञान हो सके तथा लिखित भाषा को विराम चिन्हों व उचित गति से पढ़कर अर्थग्रहण कर सके। सस्वर पठन में प्रवीण हो जाने के बाद धीरे-धीरे मौन पठन का अभ्यास करें। इसके अतिरिक्त शिक्षण क्रम व रचना के विधा के आधार पर अन्य भेद इस प्रकार हैं- गद्य में- आदर्श पाठ, अनुकरण / अनुपाठ एवं मौनपाठ, पद्य में आदर्शपाठ, अनुपाठ व समवेत पाठ। जिस में आदर्श, अनुकरण /अनुपाठ तथा समवेत पाठ मुखर/सस्वर किया जाता है, जबकि मौन पाठ स्वररहित अथवा मन ही मन किया जाता है। अतः सस्वर पाठ/पठन के गुण-दोषों का ज्ञान शिक्षक के लिए अनिवार्य है।

सस्वर पठन- स्वर सहित किया जानेवाले पठन सस्वर पठन कहलाता है. संस्कृत भाषा के परिप्रेक्ष्य में इसका महत्व और बढ़ जाता है क्योंकि इसके माध्यम से शिक्षार्थी मौखिक अभिव्यक्ति कौशल का अभ्यास करते हैं. परिणामतः वह संस्कृत बोलने में अभ्यस्त और निर्भीक होकर अपने भावों को व्यक्त करने में समर्थ हो जाते हैं. आचार्य पाणिनि सस्वर पठन के गुणों को इस प्रकार व्यक्त किया है-

माधुर्यमक्षरव्यक्तिः पदच्छेदस्तु सुस्वरः।
धैर्यं लय समर्थं च षडेते पाठकाः गुणाः।।

अर्थात सस्वर पाठ करने के लिए- मधुरता, अक्षर स्पष्टता, अभिव्यक्ति, पदच्छेद, धैर्य, उचितलय अर्थात गति तथा अर्थ की अभिव्यक्ति जैसे गुणों का होना अनिवार्य बताया है। गुणों के साथ-साथ अच्छे पाठक के दोषों का भी उल्लेख किया है.-

गीतीशीघ्री शिरः कम्पी तथा लिखित पाठकः।
अनर्थज्ञोऽल्पकण्ठश्च षडेते पाठकाधमाः।।

गा-गा कर, शीघ्रता से, सिर हिलाकर, चुपचाप, बिना समझे तथा दबे स्वर में पठन ये छः पठन के दोष हैं।

मौनपठन- मौनवाचन/पठन के विषय में जुड (Jude) ने कहा है- 'अध्यापकों को यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि उच्च कक्षाओं में पठन की सबसे अच्छी विधि मौन पठन ही है। जब कोई बालक चलना सीखता है तब खिसकना छोड़ देता है. इसी प्रकार जब मौन पठन में निपुणता प्राप्त कर लेता है तब सस्वर पठन की आदत छोड़ देता है.' अर्थात सस्वर पठन के बाद मौन पठन का क्रम आता है. स्तरानुकूल/विषयवस्तु को एकाग्रतापूर्वक मन ही मन पढ़कर अर्थग्रहण करना मौन पठन कहलाता है।

पाठ्यपुस्तक को पढ़ाते समय अध्यापक सर्वप्रथम स्वयं गद्यांश का सस्वर(आर्दश) पाठ करें, पुनः विद्यार्थियों से उसका अनुपाठ कराएँ। उच्चारण संशोधन व काठिन्यनिवारण के बाद मौन पाठ कराएँ। शान्तिपूर्ण वातावरण में कराए गए मौनपाठ अधिक अर्थग्राही होता है। पठन की गति को द्रुत बनाने तथा शीघ्रतापूर्वक अर्थबोध के लिए भी मौन पाठ लाभदायी है। इसे निर्देशित पठन भी कहा जाता है।

अभ्यास प्रश्न

7. सस्वर पठन व मौन पठन में अन्तर स्पष्ट करें

4.5 श्रवण कौशल का आश

भाषायी कौशलों में श्रवण कौशल का स्थान सबसे महत्वपूर्ण है। श्रवण शब्द 'श्रु' धातु से निष्पन्न है, जिसका आशय सीखने की प्रक्रिया में विशिष्ट प्रकार के सुनने से है अर्थात् लक्ष्य के अनुसार ध्यानपूर्वक सुनना, सीखना तथा मौखिक संवाद करने से है। श्रवण कौशल का अर्थ बालक में ऐसी क्षमता का विकास करने से है जिससे कि वह किसी कथन को ध्यान से सुन सके, सुनी हुई बात पर चिन्तन व मनन कर सके एवं उचित निर्णय ले सके।

भारतीय शिक्षा व्यवस्था में श्रवण का विशेष महत्व है आदिकाल से श्रुति परम्परा से श्रुति अर्थात् वेद हमें प्राप्त है। प्राचीन शिक्षण व्यवस्था की प्रमुख विधियो में श्रवण-मनन-निधिध्यासन का स्थान अन्यतम रहा है। बालक जन्म से श्रवण प्रारम्भ कर देता है वह सार्थक व निरर्थक दोनों प्रकार की ध्वनियाँ सुनता है कुछ महीनों में ही वह सार्थक व निरर्थक, अपने व पराए की ध्वनियों में भेद करना भी प्रारम्भ कर देता है। बालक की अधिकांश भाषा शिक्षा उसकी श्रवण द्वारा गृहित ध्वनियों पर ही आधारित होती है।

4.5.3 श्रवण कौशल का विकास

श्रवण या सुनना एक स्वाभाविक क्रिया है जो सभी जीव करते है। जीव कोई भी प्रतिक्रिया सामान्यतः सुनकर या देखकर ही व्यक्त करता है। कई शोधों का परिणाम यह बताता है कि मनुष्य अपनी दिनचर्या सम्प्रेषण व्यापार में लाये जाने वाले समय का 45 प्रतिशत सुनने में, 30 प्रतिशत बोलने में और शेष 25 प्रतिशत संयुक्त रुप से पठन और लेखन में लगाता है। जबकि विद्यालय में विद्यार्थी अपना 50 प्रतिशत समय सुनने में लगाता है। अतःश्रवण कौशल के इस महत्व को देखते हुए संस्कृत भाषा शिक्षक को इसके विकास के लिए सुनियोजित प्रयत्न करना चाहिए। अतः हमें शिक्षार्थियों को विशेष क्रिया में संलग्न कराना चाहिए। जिससे उनमें धैर्य एवं ध्यानपूर्वक सुनने की कुशलता विकसित हो सके, शुद्ध व अशुद्ध उच्चारण में अन्तर कर सके, वक्ता बोलने के अभिप्राय को समझना प्रारम्भ कर दे, सुनी हुई विषयवस्तु पर प्रतिक्रिया कर सके अर्थात् शिष्टता पूर्वक प्रश्न पूछे तथा शंका का समाधान कर सके। रेडियो, दूरर्दशन एवं ध्वनिमुद्रिका पर प्रस्तुत संवादों, समाचारों एवं वार्त्ताओं को सुनकर समझ सके। इस प्रकार हम श्रवण कौशल का विकास करा सकते हैं।

4.5.2 श्रवण के प्रकार

जब हम बालक में श्रवणकौशल के विकास की बात करते हैं तो हमारा अभिप्राय यह होता हैं कि बालक किसी तथ्य को सुनने के बाद उसे समझे, अर्थग्रहण करे, स्मरण रखे, उस पर अपनी सहमति-असहमति प्रकट करें। श्रवण की इन अपेक्षाओं के अनुसार तीन भेद हैं- (क) अवधानात्मक श्रवण (ख) रसात्मक श्रवण (ग) विश्लेषणात्मक श्रवण।

क) अवधानात्म श्रवण अन्य दोनों श्रवण का आधार हैं। इसमें तथ्यों का ध्यानपूर्वक सुनकर उसके मुख्य बिन्दुओं, विचारों, आदेशों-निर्देशों तथा वार्त्तालाप के सूत्रों को ग्रहण करना। इस के लिए आप छात्रों से सुनने के बाद प्रश्न पूछना, मुख्य बिन्दुओं को लिखने, दैनन्दिनी में लिखने व श्यामपट्ट पर लिखने का कहकर उनमें रुचि जाग्रत कर सकते हैं।

ख) गद्य, संवाद एवं पद्य का श्रवण रसात्म (सौन्दर्यबोधात्मक) श्रवण के अन्तर्गत आता है। गद्य अथवा नाटक के संवादों को जब पाठक उचित गति व भाव के अनुसार पढ़ता है तभी श्रोता को रसानुसार होती है। वही पद्य के छन्द, लय व स्वरानुकूल पाठ द्वारा श्रोता को रसानुभूति होती है।

ग) इस में श्रोता श्रुत सामग्री में व्यक्त विचारों भावों पर तुलनात्मक दृष्टि से विचार करता हुआ अपने पूर्व अनुभवों के आधार पर उनका मूल्यांकन करता है तथा निष्कर्ष निकालता है।

4.5.3 श्रवण कौशल सम्बद्ध क्रियाकलाप

संस्कृत भाषा शिक्षक होने के नाते हमें यह निश्चित करना होगा कि हम पाठ्य पुस्तक पढ़ाने के अतिरिक्त और कौन-कौन से गतिविधियों के द्वारा शिक्षार्थियों के श्रवण कौशल को बढ़ा सकते हैं । आप प्रायः विद्यालयों में देखते हैं कि-आज के सुविचार, सूक्तियाँ व मुख्य समाचार सुनाने की परम्परा है। पाठ को रोचक बनाने में अन्तर्कथा कहना, कहानी सुनाना, वार्तालाप सुनाना, महापुरुषों की संकलित प्रेरणा-प्रद

भाषण सुनाना, चित्रकथा सुनाना, सूक्तियों, सुभाषितों व अनुप्रास युक्त श्लोक सुनाना आदि प्रमुख क्रियाकलापों को सम्मिलित कर सकते हैं।

अभ्यास प्रश्न

8. श्रवण के प्रकार लिखें।
9. श्रवण कौशल विकास के किन्हीं तीन क्रियाकलापों का उल्लेख करें।

4.6 लेखन कौशल का आशय

भाषा के विविध कौशलों में लेखन कौशल का स्थान महत्वपूर्ण है। भाषा के दो मुख्य रूपों मौखिक एवं लिखित में लिखित भाषा में अभिव्यक्ति का मुख्यसाधन लेखन है। लेखन के द्वारा भावों व विचारों को अभिव्यक्त किया जाता है। लेखन ही एक साधन हैं जिसके माध्यम से वर्तमान विचारों, संस्कृतियों को सुरक्षित रखा जाता है तथा दूरस्थ अथवा आने वाले समय तक पहुँचाया जाता है।

प्रथम भाषा में जहाँ मौखिक भाषा अभिव्यक्ति का मुख्य साधन है। वही द्वितीय भाषा को सीखने तथा अभिव्यक्ति का मुख्य साधन लेखन है। हम जानते हैं कि संस्कृत भाषा द्वितीय या तृतीय भाषा के रुप में पढ़ाने का प्रावधान है। अतः संस्कृत को सीखने एवं सिखाने में संस्कृत के ध्वनियों को लिपिबद्ध् देवनागरी में किया जाता है।

बेकन ने कहा है- "सम्भाषण की कला तत्पर बुद्धि प्रदान करती है, लिखने की कला मनुष्य की विचार-अभिव्यक्ति को निश्चितता प्रदान करती है।" संस्कृत एक समृद्ध व शास्त्रीय भाषा है। जहाँ लेखन का प्रारम्भ अनुलेखन-श्रुतलेखन निर्देशित लेखन तथा स्वतंत्र लेखन का क्रम निश्चित है। अतः उक्त क्रम का अनुपालन करते हुए हम शिक्षक शिक्षार्थियों को लेखन कौशल में दक्ष बनाने का प्रयत्न करें।

4.6.1 लेखन प्रक्रिया

लेखन के लिए सर्वप्रथम मानसिक रुप से तैयार होने की आवश्यकता पड़ती है। संस्कृत छठी कक्षा से सिखायी-पढ़ायी जाती है अतः शिक्षार्थी इस अवस्था तक नागरी लिपि का ज्ञान प्राप्त कर चुका होता है उनकी अंगुलियों की मांसपेशियाँ निश्चित व गठित आकार बनाने हेतु तत्पर हो चुका होता है। अब वह किसी भी लिपि चिन्हों को शीघ्र ही सीख सकता है।

लेखन शिक्षण के विषय में मैस्की एवं मैनरों का विचार है कि - सर्वप्रथम जमीन पर अंगुली से, श्यामपट्ट पर खड़िया से, स्लेट पर चौक पेंसिल से, तख्तीपर कलम से और अन्त में कागज पर होल्डर,स्याही व पैन से । यह सिद्धान्त प्रथम भाषा के शिक्षार्थियों पर लागू होता है। वर्तमान में इस में भी

परिवर्तन हुआ है-स्लेट/कागज पेंसिल से प्रारम्भ कर की-बोर्ड तथा माउस व स्क्रीन बोर्ड के उपयोग को स्वीकारना चाहिए। जहाँ हम अपने भावों व विचारों को लिखित रुप में व्यक्त करते हैं।

संस्कृत लेखन पुनः शब्दों को संयोजित कर वाक्यरचना का शिक्षण करना चाहिए। जब शिक्षार्थी सार्थक संस्कृत शब्दों को सीख लेता है पुनः संस्कृत के लघु वाक्यों (जो दैनिक जीवन से सम्बद्ध हो) को सीखानी चाहिए। पुनः अनुच्छेद लेखन व चित्र वर्णन (भाव) लेखन, निर्देशित (पत्र/निबंध) लेखन तथा अन्त में स्वतंत्र लेखन की ओर प्रवृत करनी चाहिए।

4.6.2 लेखन के प्रकार

लेखन रचना का पर्याय भी है अर्थात् लिखित रचना का प्रथम सोपान है- अनुलेख । अनुलेख में लिखित सामग्री को देखकर नकल करता है । पुनः श्रुतलेख के माध्यम से शिक्षार्थी के लेखन की गति, भावग्रहण तथा स्मृति व ध्वनियों के अभिज्ञान क्षमता को विकसित किया जाता है। अन्त में स्वतंत्र लेखन का क्रम आता है। वाक्य रचना शिक्षण के लिए दो विधियों का अनुपालन करें-3.रिक्त स्थान पूर्ति एवं 2. चित्र वर्णन/ दैनिक जीवन से सम्बद्ध घटनाओं का वर्णन कराएँ।

i. **वाक्य रचना-** संस्कृत एक श्लिष्टात्मिका भाषा है। कर्त्ता-कर्म व क्रिया के विपर्यय का वाक्यार्थ पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता, फिर भी वाक्य की सुन्दरता तथा शिक्षार्थी का उचित दिशा में उत्प्रेरण हेतु सही वाक्य गठन की शिक्षा देनी चाहिए। सर्वप्रथम दो शब्दों (कर्त्ता व क्रिया) वाले शब्द । यथा- रामः गच्छति, मोहनः गच्छति। पुनः दो शब्द (सर्वनाम व क्रिया)- सः गच्छति, सा गच्छति इसी क्रम से तीनों वचनों (एक. व., द्वि.व. व बहु.व.) तीनों पुरूषों (प्र.पु., म.पु. व उ.पु.) के अनुरुप, दो-दो शब्द वाले पुनः कर्म को जोड़कर वाक्य शिक्षण करना चाहिए। जहाँ मूल्यांकन के लिए चित्र व रिक्त स्थान की पूर्ति का अनुप्रयोग किया जा सकता है।
ii. भाव/विचार लेखन- संस्कृत में वाक्य निर्माण सीखने के बाद शिक्षार्थियों में लेखन के प्रति रुचि बढ़ती है। अब उनके समक्ष छोटी-छोटी घटनाएँ, पशु पक्षी से सम्बद्ध कहानियों के चित्रों को प्रस्तुत कर लिखने को कहा जाए। जिससे उस चित्र में छिपे भावों व विचारों को लिखकर अभिव्यक्त कर सके।
iii. **अनुवाद-** द्वितीय/अन्य भाषा लेखन शिक्षण में अनुवाद का विशिष्ट महत्व है। इस के माध्यम से शिक्षार्थी मातृभाषा में सोचे हुए अथवा लिखे हुए सामग्री का उत्सुकता पूर्वक अनुवाद करता है। मातृभाषा से संस्कृत में तथा संस्कृत से मातृभाषा में अनुवाद के द्वारा वह संस्कृत लेखन की ओर प्रवृत्त होता है।
iv. **स्वतंत्र लेखन-** रचना व सर्जन भी कहा जाता है। इसका प्रारम्भ दैन्दिनी से, अनुच्छेद, पत्र, निबन्ध, सारांश व काव्य लेखन के उच्चतम स्थान को प्राप्त करता है।

उक्त सभी प्रकार के लेखन में वाक्य गठन, चित्रवर्णन, अनुवाद, प्रश्नोत्तर, उद्बोधन, प्रवचन, स्वाध्याय, विचार-विमर्श तथा आर्दश अनुकरण विधि का उपयोग कर लेखन कौशल में शिक्षार्थी को दक्ष बनाने का प्रयत्न हम शिक्षक करेंगे।

अभ्यास प्रश्न

10. विचार व भाव अभिव्यक्ति के प्रमुख साधन हैं –
11. किन्ही तीन लेखन कौशल विकास के साधनों का उल्लेख करें।

4.7 मौखिक अभिव्यक्ति का आशय

भाषा, विशेष रुप से मौखिक भाषा, समूह की सम्पत्ति है यह भाषाशास्त्रीय सिद्धान्त है। समूह में व्यक्ति जब अपने मन के भावों व विचारों को, सम्मुख व्यक्ति के समक्ष बोलकर ही व्यक्त करता है। इसे मौखिक अभिव्यक्ति कहते हैं।

सम्प्रति भारतीय विद्यलयों में अन्य भाषाओं का मातृभाषा के माध्यम से सिखाने की पराम्परा चल पड़ी हैं जबकि भाषा शिक्षण के सिद्धान्त इसके विपरीत है। 'भाषा भाषया पाठयेत' अर्थात् भाषा, भाषा के द्वारा पढ़ावें । इस के कारण तथा बोलचाल की भाषा नहीं होने से संस्कृत में मौखिक अभिव्यक्ति कठिन प्रतीत होती है। अतः हम शिक्षकों का कर्त्तव्य है कि शिक्षार्थी के मौखिक अभिव्यक्ति को सुदृढ़ करने के लिए अधिकांशतः संस्कृत बोलने, बोलने का अवसर प्रदान करने के लिए तत्पर रहना चाहिए।

व्यक्तित्व के विकास में मौखिक अभिव्यक्ति का महत्वपूर्ण स्थान है। मौखिक अभिव्यक्ति से भाषा विकास के साथ-साथ व्यक्ति में आत्मविश्वास, आत्म अभिव्यक्ति, वाणी में प्रवाह, भावानुकूलता, उद्देश्यपरकता जैसें गुणों का विकास होता है। अर्थात् मौखिक अभिव्यक्ति का मुख्य आशय है कि शिक्षार्थी अपनी भावों व विचारो को मौखिक रुप से विभिन्न परिस्थितियों में किस प्रकार व्यक्त करता है।

4.7.1 मौखिक अभिव्यक्ति के विकास के साधन

इस जगत् के सभी प्राणियों में मनुष्य ही है जिनके पास अपने विचारों व भाषों को व्यक्त करने के लिए ईश्वर ने वाणी प्रदान किया है। जिस प्रकार माँ बच्चे को जन्म देकर उसके पालन-पोषण के साथ-साथ उसके मौखिक अभिव्यक्ति को मुखर बनाने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहती है। ठीक उसी प्रकार एक शिक्षक/संस्कृत शिक्षक को शिक्षार्थी के मौखिक अभिव्यक्ति के विकास के लिए कई प्रकार के संसाधनों को प्रयोग में लाना चाहिए। यथा-

i. **वार्त्तालाप-** औपचारिक शिक्षा में शिक्षक ही निकटस्थ सहयोगी होता है जो शिक्षार्थी के झिझक को दूर कर बोलने के लिए प्रेरित करता है। संस्कृत शिक्षक कक्षा में अथवा कक्षा से बाहर भी छोटे-छोटे वाक्यों के द्वारा शिक्षार्थी को बोलने के लिए अभिप्रेरेति करना चाहिए । जो आगे चलकर संवाद, कथोपकथन, समूह चर्चा में भाग लेने के लिए उत्प्रेरित करेगी।

ii. **अनुवाद(कहानी कथन)-** मौखिक अभिव्यक्ति को विकसित करने के लिए संस्कृत शिक्षक छोटी-छोटी व सरल कहानियों को सरल संस्कृत में अनुवाद कर सुनावें व शिक्षार्थियों से भी सुनाने को प्रेरित किया जा सकता है। चुटकुले, सूक्तियों का प्रयोग अपने दैनिक जीवन में उनके समक्ष अनुदित कर प्रस्तुत करें व उन्हें भी इस क्रिया को पूर्ण करने को कहें।

iii. **घटना/चित्र वर्णन-** प्रारम्भ में जब बच्चे किसी नई बातों को सीखते हैं तो उसका उपयोग करने में उसे गर्व का अनुभव होता है। भाषा शिक्षक को इसका लाभ उठाते हुए उनके दैनिक जीवन चर्या/घटनाओं/घटना चित्रों के माध्यम से मौखिक अभिव्यक्ति में उपयोग करें। अर्थात् उन्हें संस्कृत में बोलने के लिए प्रेरित विभिन्न प्रश्नों के माध्यम से प्रारम्भ कर सकते हैं। यथा- कदा, कथम्,कुत्र, किमर्थम्, आदयः।

iv. **संभाषण शिविर-** मौखिक अभिव्यक्ति के विकास के लिए संस्कृत संभाषण शिविर जहाँ शिक्षार्थी के भय तथा झिझक को आसानी से दूर कर आत्मविश्वास को बढ़ाने के लिए उपयोग किया जाता है।

इस के अतिरिक्त क्रमशः भाषण, वाद-विवाद, बालगोष्ठी, काव्यपाठ, अभिनय तथा माइक्रोफोन के समक्ष बोलने का अवसर प्रदान कर शिक्षार्थी के मौखिक अभिव्यक्ति को सुदृढ़ करने का प्रयत्न संस्कृत शिक्षक करें।

4.7.2 मौखिक अभिव्यक्ति की विशेषताएँ

शिक्षार्थियों में संस्कृत भाषा को प्रभावी तरीके से बोलने के लिए, हम शिक्षकों को अभिव्यक्ति कौशल की विशेषताओं का ज्ञान अनिवार्य है। जो इस प्रकार है-

i. **शुद्धोच्चारण-** भाषा की लघुतम इकाई ध्वनि होती है। ध्वनि-शब्द तथा वाक्य का शुद्ध उच्चारण ही सही अर्थ को अभिव्यक्त करता है। जिससे बोद्धा को अर्थ बोध होता है। शुद्धोच्चारण की महत्ता आचार्य पाणनी ने लिखा है-

"मन्त्रोहीनः स्वरतो वर्णतोवा, मिथ्या प्रयुक्तो न तमर्थमाह।
सवाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति, यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोपराधात्।।"

अर्थात् उच्चारण दोष अर्थ परिवर्तित कर देता है। जिससे अभिष्ट सिद्धि ये बाधाएँ आती है।

ii. **स्वाभाविकता-** प्रायः देखा जाता है कि बच्चों को अभिप्रेरित करने के लिए शुरुआत में कुछ याद करवाकर बोलने को कहा जा सकता है। लेकिन इस तरह की आदत न डालें। इस में स्वाभाविकता, सहजता, सार्थकता व अस्पष्टता की कमी होती है। इस लिए शिक्षार्थियों में स्वाभाविकता का विकास करना चाहिए। याद की हुई भाषण आदि थोड़ी सी बाधा आने पर भुल जाते हैं। जबकि स्वभाविक स्वयं सोचकर बोलने में इस तरह की किसी प्रकार की बाधा का भय नहीं रहता।

iii. **क्रमबद्धता-** क्रमबद्ध विचार वक्ता के अभिव्यक्ति कौशल का प्रमाण होता है जो श्रोता को प्रभावित करता है। इस के लिए प**र्याय** अभ्यास की आवश्यकता पड़ती है। शिक्षक को सदैव इसके लिए तत्पर रहना चाहिए।

iv. **विराम चिन्ह-** मौखिक अभिव्यक्ति हेतु लिखित भाषा का ज्ञान विशेष कर विभिन्न विराम चिन्हों का ज्ञान तथा तदनुरुप वाचन के अभ्यास द्वारा स्वतंत्र वाचन भावानुरूप कराया जा सकता है।

v. **सशक्तता-** सशक्त अभिव्यक्ति ही श्रोता पर अपेक्षित प्रभाव डाल पाता है। इस के अभाव में सम्प्रेषण प्रभावी नहीं होता अर्थात् भाषा सशक्त हो।

vi. **प्रवाह-** भाषा प्रवाह भाव व विचार को श्रोता तक पहुँचाने में अहम होता है। जब प्रवाह में रुकावट या झिझक आती है तो संदेश संवाद विहिन हो जाता है।

प्रकरण, प्रभाव आदि का ज्ञान भी मौखिक अभिव्यक्ति कौशल के लिए प्रमुख गुणों में से एक है। इस प्रकार शिक्षक मौखिक अभिव्यक्ति कौशल के विशेषताओं का ज्ञान रखते हुए शिक्षार्थियों को मौखिक अभिव्यक्ति में कुशल बना सकता है।

अभ्यास प्रश्न

12. मौखिक अभिव्यक्ति के तीन महत्व लिखें?
13. मौखिक अभिव्यक्ति के किन्हीं दो साधनों का उल्लेख करें?

4.8 उच्चस्तरीय भाषिक कौशल का आशय

आप ने संस्कृत भाषा कौशल के प्राथमिक व माध्यमिक स्तर पर किये जाने वाले विकास के सम्बन्ध में अध्ययन किया है। जहाँ शिक्षार्थी में चार भाषा कौशलों श्रवण-वाचन-पठन एवं लेखन के प्रारम्भिक रुप की चर्चा की गयी है। वही उच्चस्तर पर शिक्षार्थियों में भाषा के उन्नत रुप व साहित्यिक भाषा को सुनकर व पढ़कर समझने की क्षमता विकसित किया जाना है। साथ ही उच्चस्तरीय वक्तृत्व कला व उच्चस्तरीय लेखन के साथ-साथ स्वतन्त्र लेखन/रचना की ओर प्रवृत्त किया जाता है।

इस स्तर पर संधि-समास तथा प्रत्यय-उपसर्ग युक्त शब्दों व पदों का ज्ञान कराना चाहिए। मानक/ परिनिष्ठित भाषा का अर्थबोध कराना मुख्य उद्देश्य होता है। इस स्तर पर अपेक्षा की जाती है कि वह शब्द के तीनों ही अर्थ-मुख्यार्थ, लक्ष्यार्थ तथा व्यङ्ग्यार्थ को समझ कर उसका अपने भाषण व लेखन में प्रयोग करें।

लिखित सामग्री के विभिन्न विधाओं को पढ़े व समझें तथा अनुकरण कर आत्मसात करें । गद्य-पद्य-चम्पू तथा नाटक के विविध रुपों से अवगत हो। गद्य की विभिन्न शैलियों, पद्य के विविध तत्व-छन्द, अलंकार, रस, ध्वनि को पहचाने। विचार-भाव-सौन्दर्यानुभूति करने व कराने के तत्वों का ज्ञान प्राप्त करें।

विविध रचनाओं रचनाकारों टीका-टीकाकारों भाष्य-भाष्यकारों की व्याख्या व व्याख्या शैली से परिचय प्राप्त करें। इसमें शिक्षक की भूमिकी अहम होती है।

4.8.1 उच्चस्तरीय भाषायी कौशल के साधन

संस्कृत भाषा के उच्चस्तरीय भाषायी कौशलों पठन-श्रवण-भाषण व लेखन के विकास के लिए निम्नलिखित साधनों का उपयोग करना चाहिए।

i. **व्याकरण-** प्रारम्भिक स्तर पर जहाँ व्यावहारिक व्याकरण का उपयोग किया जाता है। वहीं उच्चस्तर पर व्याकरण का सम्पूर्ण ज्ञान अपेक्षित होता है जिससे भाषा परिष्कृत व परिमार्जिता सम्भव हो सके।
ii. **अनुवाद-** मातृभाषा में लिखित पुस्तकों के संस्कृत अनुवाद तथा संस्कृत काव्यों-महाकाव्यों ते मातृभाषा में किये गये अनुवाद का अध्ययन कर भाषिक कौशल को समृद्ध किया जाए।
iii. **काव्यपाठ**- काव्यपाठ करने की क्षमता विकसित कर शिक्षार्थियों में काव्य मे रुचि तथा विविध छन्दों में निबद्ध काव्यों का तदनुरूप सस्वर पाठ कराया जाए।
iv. **अन्त्याक्षरी-** अन्त्याक्षरी कक्षा-कक्ष तथा प्रतिस्पर्धाओं द्वारा शिक्षार्थियों में आत्मविश्वास तथा स्मरण शक्ति की वृद्धि होती है।
v. **भाषणप्रतियोगिता-** महाविद्यालय तथा विश्वविद्यालय स्तरीय संस्कृत भाषण प्रतियोगिताओं द्वारा भाषायी कौशलों का विकास किया जाता है।
vi. **समस्यापूर्ति-** कक्षा-कक्ष तथा महाविद्यालयस्तरीय व राष्ट्रस्तरीय समस्यापूर्ति प्रतिस्पर्द्धाओं के आयोजन तथा शिक्षार्थियों की सहभागिता निश्चित करें।
vii. **शलाका परीक्षा-** शलाका परीक्षा शिक्षार्थी पुस्तक पर पूर्ण अधिकार **का** परीक्षा करती है । इस प्रकार के आयोजन से शिक्षार्थियों को अभिप्रेरणा मिलती है।

इसके अतिरिक्त संवाद, परिचर्चा, समूह चर्चा, श्लोकगायन, संवादवाचन, अभिनय जैसे साधनों का उपयोग कर शिक्षक-शिक्षार्थियों के भाषायी कौशल को समृद्ध कर सकते है।

4.8.2 काव्य एवं महाकाव्य

कालिदास, माघ एवं भारवि के काव्यों को पढ़कर समझने तथा निश्चित छन्द के अनुरुप पाठ करने की क्षमता विकसित करना। खण्डकाव्यों, गद्यकाव्यों, नाटकों तथा महाकाव्य से सर्ग का चयन कर, अभ्यास कराना।

छन्दों का ज्ञान क्रमशः करना चाहिए सर्वप्रथम श्लोक(अनुष्टुप), इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, वंशस्थ, स्रग्धरा, शिखरिणी आदि। इसी क्रम से काव्या का चयन कर उनका पाठ अभ्यास कराया जाए। ऐसे ही अलंकार-शब्दालंकार(अनुप्रास-यमक-श्लेष) अर्थालंकार (उपमा, रुपक, दीपक आदि) का सभेद युक्त काव्य का पाठ कराने से शिक्षार्थियों में अभिवृत्ति विकसित होती है।

गद्य, पद्य व नाटक जो विविध रचनाकारों द्वारा लिखें गये हैं उसी अनुरुप एकल व सामूहिक पाठ कर सामाजिकों को अर्थबोध कराने वाली क्षमता विकसित कर रसानुभूति तथा सौन्दर्याबोध कराया जाना चाहिए।

4.8.3 भाषण व व्याख्यान

ऐसा विश्वास किया जाता है कि प्रारम्भिक स्तर पर सामान्य बोल-चाल (संभाषण) की क्षमता शिक्षार्थियों में विकसित हो चुकी हैं। अब उन्हे प्रभावी भाषण व निश्चित प्रकरण पर व्याख्यान देने की कला में निपुण बनाना शिक्षक का दायित्व होता है। इसके लिए शिक्षक कक्षा-कक्ष में विद्यालयस्तरीय व महाविद्यालय तथा विश्वविद्यालय स्तरीय कार्यक्रमों का आयोजन तथा आयोजित कार्यक्रमों में प्रतिभाग करने कराने का प्रयत्न कर सकतें है। जिससे शिक्षार्थी में आत्मप्रेरणा, उत्साह तथा प्रतिस्पर्धा की भावना का विकास हो। इस कार्यक्रम हेतु विशिष्ट अवसरों जैसे संस्कृत दिवस, विद्यालय स्थापना दिवस, गणतंत्र दिवस आदि का चयन कर सकते है। इन क्रियाकलापों के द्वारा शिक्षार्थियों में उच्चस्तरीय भाषाकौशलों का विकास किया जा सकता है।

4.8.4 काव्यों की व्याख्या तथा स्वतंत्र लेखन

भाषिक विकास का यह अन्तिम सोपान कहा जाता है। महाकवियों के काव्यों की व्याख्या करना अपने आप में महान कार्य होता है। भाष्यकार पतञ्जलि तथा टीकाकार मल्लिनाथ का नाम व्याख्या के लिए प्रसिद्ध है। काव्य का पाठ तथा इसकी व्याख्या के बाद काव्य की समीक्षा तथा स्वतंत्र लेखन अथवा काव्यनिर्माण भाषाकौशल का उच्चतम परिणति है। स्वतंत्र लेखन से अभिप्राय उच्च कोटि का निबन्ध, संवाद, कथा, कहानी, उपन्यास तथा पद्यबद्ध काव्य है।

अभ्यास प्रश्न

14. उच्चस्तरीय भाषिक कौशल विकास के किन्ही दो साधनों का उल्लेख करें।

4.9 सारांश

इस इकाई में आप ने भाषीय कौशल का आशय व प्रकार के सम्बन्ध में अध्ययन किया है।

पठन कौशल का आशय, पठन प्रक्रिया, पठन के विभिन्न प्रकार व्यक्तिगत पठन, सामूहिक पठन. सस्वर पठन, मौन पठन, आदर्श पाठ, अनुकरण पाठ तथा समवेत पाठ के माध्यम से पठन कौशल को समृद्ध बनाने के विषय में अध्ययन किया है।

श्रवण कौशल का आशय, श्रवणकौशल का विकास, श्रवण के प्रकार, श्रवण करते हुए भावग्रहण तथा अर्थबोध के विषय में अध्ययन किया है। लेखन कौशल का आशय,लेखन के सोपान, लेखन के प्रकार-शब्द, वाक्य तथा अनुच्छेद लेखन से परिचय प्राप्त किया है। भाव (चित्रवर्णन) लेखन, अनुवाद तथा स्वतंत्र लेखन के माध्यम से लेखन कौशल को समृद्ध बनाने वाले साधनों का ज्ञान प्राप्त किया है।

- मौखिक अभिव्यक्ति का अभिप्राय, मौखिक अभिव्यक्ति का विकास, मौखिक अभिव्यक्ति को समृद्ध बनाने वाले साधनों वार्तालाप, अनुवाद (कहानी कथन), घटना/चित्रवर्णन, संभाषणशिविर तथा अन्यसाधनों की जानकारियाँ तथा विशेष गुणों का अध्ययन किया है।
- उच्चस्तरीय भाषिक कौशल का आशय विशेष रुप से संस्कृतभाषा शिक्षण के सन्दर्भ में विविध प्रकार के साधनों व्याकरण, अनुवाद, काव्यपाठ, अन्त्याक्षरी, भाषण, प्रतियोगिता, शलाका परीक्षा, काव्यपाठ, छन्द तथा अंलकारों का ज्ञान साहित्य के विविध विधाओं के माध्यम से विकसित करने का अध्ययन किया है।

4.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. दो, मौखिक व लिखित भाषा।
2. सुनकर समझना, बोलकर अभिव्यक्त करना, पढ़कर समझना तथा लिखकर अभिव्यक्त करना।
3. पठन के द्वारा हम विश्व के ज्ञान राशि को प्राप्त कर अच्छे वैश्विक जीवन जीना सीखते है, तथा हमारा सामाजिक स्तर ऊपर उठता है।
4. पारम्परिक अथवा इलेक्ट्रॉनिक पठन(मुद्रित/ई-बुक)।
5. पठन व्यक्तिगत उद्देश्य की पूर्ति करता है, यह मौन व सस्वर दोनों रुपों में पूर्ण किया जाता है। जबकि वाचन बोलकर अर्थात् सस्वर किया जाता है। वाचन सामने वाले को लक्ष्य करके किया जाता है। पठन की गति पाठक के समझ पर निर्भर है जबकि वाचन की गति समझने वाले पर।
6. पढ़े हुए पाठ का अपने जीवन में उपयोग करना।
7. सस्वर पठन बोलकर उचित विरामचिन्हों, भावों, गति, यति, लय व बोध के अनुरुप किया जाता है। जबकि मौन पठन बिना बोलकर तीव्रगति से विचार व भाव बोध के लिए किया जाता है।
8. अवधानात्मक, रसात्मक एवं विश्लेषणात्मक श्रवण।
9. प्रार्थना सभा में मुख्य समाचार, अनुप्रास युक्त श्लोक तथा सुभाषित(पद्य)।
10. वाक्य पूर्ति तथा चित्र /घटना वर्णन।
11. विचार लेखन, अनुवाद तथा स्वतंत्र लेखन।
12. आत्मविश्वास में वृद्धि, भावानुकूलता तथा वाणी में प्रवाह।
13. वार्तालाप तथा संभाषण शिविर।
14. शलाका परीक्षा तथा समस्यापूर्ति।

4.11 उपयोगी सहायक समाग्री

1. संस्कृत शिक्षणः डा. रघुनाथ सफाया, हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़ ।
2. संस्कृत शिक्षणः डा. रामशकल पाण्डेय, विनोद मन्दिर आगरा।
3. संस्कृत शिक्षण के नये आयामः दुबे द्विवेदी एवं मिश्र, राधा प्रकाशन मन्दिर, आगरा।

4. संस्कृत शिक्षणः डा. सन्तोष मित्तलः आर. लालबुक डिपो, मेरठ।
5. संस्कृत शिक्षणः डा. उदयशंकर झा, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
6. हिन्दी शिक्षणः प्रो. रमन बिहारी लालः रस्तोगी पब्लिकेशन, मेरठ।
7. माध्यमिक विद्यालयों में हिन्दी का शिक्षणः निरंजन कुमार सिहं, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर।

4.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. भाषा को परिभाषित कर इसकी विविध रुपों का वर्णन करें।
2. संस्कृत भाषा शिक्षण में विविध भाषा कौशलों का उदाहरण सहित व्याख्या करें।
3. भारतीय विद्यालयों में कितनी भाषाऐं पढ़ाने का प्रवाधन है और क्यों ?
4. संस्कृत भाषा शिक्षण कौशलों के सवंर्धन के उपायों का वर्णन करें ।
5. उच्चस्तरीय भाषा कौशल का क्या अभिप्राय हैं इसको विसकित करने वाले साधनो का वर्णन करें।
6. पठन कौशल से विविध रूपों का उदाहरण सहित वर्णन करें।

इकाई 5 - संस्कृत भाषा शिक्षणार्थ शिक्षण अधिगम सामाग्री एवं पाठ्य सहगामी क्रियाएं

5.1. प्रस्तावना
5.2. उद्देश्य
5.3. मुद्रित सामग्री का आशय
5.4. मुद्रित सामग्री का महत्त्व
5.5. मुद्रित सामग्री के प्रकार
5.6. श्रव्य-दृश्य सामग्री का आशय
5.7. श्रव्य-दृश्य सामग्री का महत्व
5.8. श्रव्य-दृश्य सामग्री के प्रकार
5.9. पाठ्य-सहगामी क्रियाओं का आशय
5.10. पाठ्य-सहगामी क्रियाओं के उद्देश्य
5.13. पाठ्य-सहगामी क्रियाओं का महत्व
5.12. पाठ्य-सहगामी क्रियाओं के प्रकार
5.13. सारांश
5.14 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.15 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
5.16 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में आप जान सकेंगे कि संस्कृत भाषा शिक्षण को प्रभावी बनाने हतु शिक्षण अधिगम सामाग्री एवं पाठ्यसहगामी क्रियाओं का क्या महत्त्व है तथा यह सामाग्री संस्कृत शिक्षक के लिए कितनी उपयोगी है ? वास्तव में शिक्षण का अर्थ तभी पूर्ण होता है जब कि शिक्षक द्वारा दिया गया ज्ञान छात्रों ने सीख लिया हो अन्यथा शिक्षण निरर्थक है । अतः अपने शिक्षण को सार्थक एवं सफल बनाने के लिए शिक्षक अनेक प्रकार के उपाय करता है, अनेक शिक्षण युक्तियों का प्रयोग करता है,अनेक शिक्षण सहायक सामाग्रियों का उपयोग करता है संस्कृत शिक्षण में भी इन शिक्षण सहायक सामाग्रियों का प्रयोग शिक्षण को प्रभावशाली बना देता है । इन साधनों को मुद्रित-सामाग्री, दृष्य-श्रव्य सामाग्री, एवं

पाठ्यसहगामी क्रियाओं की संज्ञा दी जाती है। ये सामाग्रियाँ जहाँ छात्रों को सरलता से संस्कृत सीखने में सहायक हैं वहीं शिक्षक के कार्य को भी रोचक बना देती है।

वर्तमान समय में सूचना एवं संचार क्षेत्र अत्यधिक विकसित हुआ है साथ ही हम डिजिटल युग की ओर भी अग्रसर हैं इस स्थिति में हमें अपने संस्कृत शिक्षण के तरीकों को परिवर्तित करना होगा तथा नवीनतम शिक्षण अधिगम सम्बन्धित सहायक सामाग्री का अत्यधिक प्रयोग कर शिक्षण को रोचक ,आकर्षक एवं सुग्राह्य बनाना होगा। अनेक अनुसन्धान निष्कर्षों से यह सिद्ध हो चुका है कि किसी भी कार्य को सीखने में व्यक्ति की जितनी अधिक ज्ञानेन्द्रियाँ सक्रिय होंगी उतना ही अधिगम स्थायी होता है।

मुद्रित-सामाग्री, दृष्य-श्रव्य उपकरण , एवं पाठ्यसहगामी क्रियाएँ ऐसी सहायक सामाग्री है जिनके प्रयोग से स्थूलता से सूक्ष्मता की ओर बढते हुए छात्रों के ज्ञान को पुष्ट करने में बल मिलता है किसी भी भाषा के शुद्ध एवं परिमार्जित ज्ञान हेतु अभ्यास करना परमावश्क है लेकिन संस्कृत भाषा क्योंकि व्यावहारिक नहीं है, अतः प्रायः लोग इसे नीरस मानते हैं। परन्तु वे इसकी महत्ता को नहीं जानते हैं प्रस्तुत इकाई में संस्कृत शिक्षण कैसे प्रभावी, रोचक एवं सरल हो तथा छात्र संस्कृत भाषा सीखने में कितने अधिक तत्पर हों इस विषय की व्याख्या की गयी है।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् अध्येता इस योग्य हो जाऐंगे कि –

1. मुद्रित सामाग्री के महत्त्व को समझ सकेंगे।
2. दृष्य- श्रव्य सामाग्री के महत्त्व को समझ सकेंगे।
3. पाठ्य सहगामी क्रियाओं के महत्त्व को समझ सकेंगे।
4. संस्कृत शिक्षण में मुद्रित सामाग्री की उपयोगिता जान सकेंगे।
5. संस्कृत शिक्षण में दृश्य-श्रव्य साधनों की उपयोगिता स्पष्ट कर सकेंगे।
6. संस्कृत शिक्षण में पाठ्य सहगामी क्रियाओं की भूमिका के विषय में जान सकेंगे।
7. संस्कृत शिक्षक इन साधनों के प्रयोग से कक्षा शिक्षण कैसे प्रभावी बना सकता है? इस विषय में जान सकेंगे।
8. विभिन्न दृश्य-श्रव्य साधनों के विषय में जान सकेंगे।
9. विभिन्न पाठ्य सहगामी क्रियाओं का परिचयात्मक रूप जान सकेंगे।

5.3. मुद्रित सामाग्री का आशय

जनसंचार माध्यमों के विकास के पूर्व संचार मौखिक रूप में हुआ करता था परन्तु विकास के फलस्वरूप ज्ञान का क्षेत्र विस्तृत हुआ तथा जन संचार की अधिकता के कारण मात्र मौखिक ज्ञान देना सम्भव नहीं

था। ऐसी स्थिति में औद्योगिक कान्ति के फलस्वरूप हुए प्रिंटिंग मशीन के आविष्कार ने इस समस्या के समाधान हेतु नया विकल्प प्रदान किया। वर्तमान में प्रिंटिंग सुविधा के कारण ही ज्ञान का संचय, विकास तथा प्रचार संभव हो रहा है।

मुद्रित सामाग्री जैसा कि नाम से ज्ञात होता है कि यह संचार का ऐसा माध्यम है जिसमें सन्देशों का आदान प्रदान लिखित रूप में होता है। मुद्रित सामाग्री सम्प्रेषण का ऐसा माध्यम है जिसमें विचारों, अभिवृत्तियों का आदान-प्रदान लिखित रूप में किया जाता है। मशीनों के अविष्कार के फलस्वरूप कई जनसंचार माध्यमों का विकास हुआ था, जिनका उद्देश्य बडे जनसमूहों तक संदेशों को प्रसारित करना था। इन्ही जनसंचार माध्यमों में से एक है मुद्रित सामाग्री। संस्कृत शिक्षण सम्बन्धी ज्ञान के प्रचार-प्रसार में भी मुद्रित सामाग्री का उच्च स्थान है।

5.4. मुद्रित सामाग्री का महत्त्व

मुद्रित सामाग्री की कुछ अपनी विशेषताएँ हैं जो जन संचार माध्यम के रूप में उन्हें महत्त्वपूर्ण बनाती हैं। जो कि निम्नलिखित है.—

i. **स्थान व सीमा से परे** – मुद्रित सामाग्री का मुख्य महत्त्व यह है कि छात्र इसे अपने सुविधा के अनुसार किसी भी स्थान पर पढ सकता है।

ii. **संग्रहीत सूचनाएँ** – मुद्रित सामाग्री में छात्र को एक संकल्पना से सम्बन्धित सूचनाएँ एक ही स्थान पर उपलब्ध हो जाती है।

iii. **ज्ञान संचय का साधन** – मुद्रित सामाग्रियों के कारण ही प्राचीन ज्ञान का संचय संभव हो पाया है।

iv. **स्वगति** – मुद्रित सामाग्रियों की यह महत्ता है कि इन्हें छात्र अपनी गति, रुचि व मानसिक स्तर के अनुसार पढता है।

v. **मितव्ययता-**अन्य संचार माध्यमों से यदि तुलना की जाए तो मुद्रित सामाग्री कम खर्चीला साधन है।

vi. **अध्ययन की आदतों का विकास-** मुद्रित सामाग्री में छात्र स्वयं पढता है जिससे उसमें स्वयं पढकर पाठ्यवस्तु को समझने के कौशल का विकास होता है।

- स्पष्ट एवं शुद्ध मुद्रित सामाग्री विद्यालय के संचालन में सहायक होती है।
- एक सत्र के अन्तर्गत पढाये जाने वाले पाठ्यक्रम की एक सुनिश्चित मुद्रित सामग्री के पूर्व में तैयार की जाती है, जिसका लाभ शिक्षक एवं छात्र दोनों को होता है।
- मुद्रित सामाग्री कक्षा शिक्षण की पूरक होती है।
- सस्वर वाचन, मौन वाचन का आभ्यास मुद्रित सामाग्री से ही होता है।

- निर्धारित विषय का मुद्रण रुप यदि शिक्षार्थी के पास है तो वह विषय को दुहराने, तथा गहराई से समझने में समर्थ हो सकता है।
- भाषा सम्बन्धी लेखन कौशल के विकास में मुद्रित सामाग्री को छात्र पहले पढकर शब्द विन्यास , वाक्य विन्याल, विराम चिह्न प्रयोग आदि को देखते हैं फिर स्वयं लिखने का अभ्यास करते हैं।
- मुद्रित सामाग्री का स्वरूप पाठ्य पुस्तक के अवकाश के समय का सदुपयोग कराती है।
- साहित्यिक रुचि, सांस्कतिक क्रियाओं तथा एतिहासिक परिप्रेक्ष्य को जानने के लिए मुद्रित सामाग्री विद्यार्थी का अत्यधिक सहयोग करती है।

5.5. मुद्रित सामाग्री के प्रकार

मुद्रित सामाग्रियों के अन्तर्गत निम्नलिखित सामग्री को रख सकते हैं-

1. पत्र (Letter) 2. पेम्लेट्स (Pamphlet) 3. बुकलेट्स(Booklets) 4. मैन्युअल(Manual) 5. मैग्जीन(Magazine) 6. समाचार पत्र(News Paper) 7. पोस्टर(Poster) 8. बुलेटिन(Bulletin) 9. जर्नल्स (Journals) 30. एनसाइक्लोपीडिया (Encyclopedia) 33. पाठ्य पुस्तक (Textbook)32. अभिक्रमित अनुदेश सामाग्री (Program instruction) 33. हैण्डबुक(Hand Book) 34. मॉड्यूल (Module) 35. कैटालॉग(Catalogue)

अभ्यास प्रश्न

1. मुद्रित सामाग्री का क्या आशय है ?
2. मुद्रित सामाग्री का क्या महत्त्व है ?

5.6. श्रव्य-दृश्य सामग्री का आशय

श्रव्य-दृश्य सामग्री से आशय शिक्षण के उन साधनों से है जिनके प्रयोग से स्थूलता की ओर बढ़ते हुए छात्रों के ज्ञान को पुष्ट करने में बल मिलता है। श्रव्य-दृश्य सामग्री के प्रयोग से छात्रों की श्रव्य तथा दृश्य ज्ञानेन्द्रियां सम्मिलित हो जाती हैं और वे पाठ के सूक्ष्म से सूक्ष्म तथा कठिन से कठिन भावों को सरलतापूर्वक समझ जाते हैं।

ई. सी.डेन्ट के अनुसार -" श्रव्य-दृश्य सामग्री का तात्पर्य उस समस्त सामग्री से है जो कक्षा में अथवा शिक्षण परिस्थितियों में लिखित अथवा बोली हुई पाठ्य-सामग्री को समझाने में सहायता देती है।"

शिक्षक द्वारा प्रदान किये जाने तथा छात्र द्वारा ज्ञान ग्रहण किए जाने में सफलता तभी मिल सकती है, जब कि दोनों एक- दूसरे को सहयोग करें। शिक्षक को यह जानना चाहिए कि प्रत्यय निर्माण का मनोवैज्ञानिक क्रम है- 3. प्रत्यक्षीकरण 2. प्रत्यय निर्माण। अतः जिस वस्तु के विषय में प्रत्यय निर्माण करना है यदि उसको प्रत्यक्ष रुप से देखने, सुनने अथवा अनुभव करने का अवसर छात्रों को मिल जाये तो सरलता से उसके विषय में सीख लेते हैं, जैसे छात्रों का गाय पर निबन्ध लिखना है, शिक्षक उसका मौखिक वर्णन करता जाये फिर भी यह सम्भावना है कि गाय का रुप,रंग आदि के विषय में छात्रों के मस्तिष्क में स्पष्ट और सही धारणा निर्मित न हो सके। इस कमी की पूर्ति शिक्षक कई प्रकार से कर सकता है, वह प्रत्यक्ष रुप से गाय को दिखा दे अथवा उसका मॉडल दिखा दे, यह भी न हो सके तो उसका चित्र प्रस्तुत कर दे, गाय की आवाज सुना सकता है।

अभ्यास प्रश्न

3. श्रव्य-दृश्य सामग्री का आशय बताइये।

5.7. श्रव्य-दृश्य सामग्री का महत्व

श्रव्य-दृश्य सामग्री की महत्ता प्राचीनकाल में भी थी इनका प्रयोग शिक्षण को रुचिकर बनाने में होता है। छात्रों को वेदियों के निर्माण करने के नियम सीखने के लिए ताड़पत्रों पर खीचें गये रेखाचित्रों का प्रयोग वैदिक शिक्षा पद्धति में किया जाता था। वर्तमान में भी शैक्षिक संस्थाओं में श्रव्य-दृश्य सामग्री के उपयोग से शिक्षण को शिक्षार्थी हेतु सुगम एवं रोचक बनाया जाता है।

विभिन्न शिक्षाशास्त्री भी इस बात पर बल देते हैं कि सीखने के लिए छात्रों की जितनी अधिक ज्ञानेन्द्रियों को शिक्षक सक्रिय कर सकेगा उतना ही छात्र मानसिक रुप से सक्रिय होकर सरलता, शीघ्रता एवं स्पष्ट ज्ञान अर्जित कर सकेंगे। सीखने में ज्ञानेन्द्रियों के उपयोग पर किए गए अनुसन्धानों से प्राप्त निष्कर्ष-यदि एक इन्द्रिय का उपयोग किया जाता है तो छात्र मात्र 30% ही सीख पाते हैं। तीन इन्द्रियों के उपयोग तक यह बढ़कर 70% हो जाता है और यदि पांचों इन्द्रियों का उपयोग हो जाये तो सीखने के प्रतिशत में 90% तक बढ़ोतरी होती है। शिक्षाविद् लॉक, कॉमानियस, रुसों, पेस्टालॉजी, फ्रोबेल, मैडम माण्टेसरी आदि ने इस दिशा में अपना बहुमूल्य योगदान दिया है।

- श्रव्य-दृश्य सामग्री के उपयोग द्वारा शिक्षक एक से अधिक इन्द्रियों को प्रयोग में लाकर पाठ्यवस्तु को सरल, रुचिकर, स्पष्ट, प्रभावशाली तथा स्थायी बनाता है।
- छात्रों को सम्प्रत्यय दृढ़ीकरण करने में सहायक.
- जो विषय , विचार तथा अनुभव तथा मौलिक विवेचन द्वारा स्पष्ट नहीं किए जा सकते है, उसके लिए ये साधन अत्यन्त सहायक है।

- श्रव्य-दृश्य सामग्री शिक्षकों के कार्य को सरल कर देते हैं। चित्र, चार्ट, प्रतिमूर्ति, मौखिक उदाहरणों द्वारा शिक्षक कठिन से कठिन तथ्यों को सरलता से स्पष्ट कर सकता है और छात्र समझ सकते हैं।
- श्रव्य-दृश्य सामग्री छात्रों की सीखने की गति तीव्र कर देते हैं। साथ ही साथ छात्र उन्हें समझ कर आत्मसात कर लेते हैं और इस प्रकार उनका यह अर्जित ज्ञान स्थायी हो जाता है।
- श्रव्य-दृश्य सामग्री के उपयोग द्वारा कम समय में अधिक ज्ञान रोचक ढ़ग से दिया जा सकता है।
- श्रव्य-दृश्य सामग्री के उपयोग से छात्रों का ध्यान विषयवस्तु की ओर केन्द्रित रखने में तथा सीखने की क्रिया में छात्रों के संलग्न रखने में सहायता मिलती है।
- श्रव्य-दृश्य सामग्री के उपयोग से छात्र स्वयं सीख लेते हैं जैसे कोई चित्र अथवा चलचित्र देखकर छात्र स्वयं भी बहुत कुछ सीख लेते हैं, इसका पता शिक्षक प्रश्न पूछकर उत्तर प्राप्त करके लगा लेता है, यदि कोई अंश अस्पष्ट रह गया है तो शिक्षक स्वयं अथवा अन्य साधनों की सहायता से उन्हें स्पष्ट कर देता है । परन्तु छात्रों की स्वयं की सक्रियता उनका प्रयास, उनकी सम्बद्धता उनके आत्म शिक्षण के कार्य को सरल कर देती है।
- श्रव्य-दृश्य सामग्री के प्रयोग से छात्रों को सकारात्मक प्रेरणा प्राप्त होती है।
- क्रिया के सिद्धान्त पर आधारित है।
- विषयवस्तु स्पष्टीकरण में सहायक।
- सामग्री के प्रत्यक्ष प्रस्तुतीकरण से सार्थक अनुभव प्राप्त होता है।
- रटन क्रिया को कम कर समझकर ज्ञान स्थायीकरण में सहायक है।
- शिक्षण कुशलता में वृद्धि होती है।

अभ्यास प्रश्न

4. श्रव्य-दृश्य सामग्री का महत्व संक्षिप्त रुप से स्पष्ट करें।

5.8. श्रव्य-दृश्य सामग्री के प्रकार

श्रव्य-दृश्य सामग्री के मुख्यतः तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है-

1. श्रव्य सामग्री 2. दृश्य सामग्री 3. दृश्य सामग्री

1. **श्रव्य सामग्री-** श्रव्य सामग्री वह सामग्री है जिसमें श्रवणेन्द्रिय का विशेष उपयोग करके छात्र सीखते है। इसके प्रयोग से छात्रों में श्रवण कौशल का विकास कर विषय के प्रति एकाग्र होने की योग्यता का विकास किया जाता है।
    a. **ग्रामोफोम-** भाषा से सम्बन्धित रिकॉर्ड संकलित करके रखे जाते है। इन रिकॉर्ड को ग्रामोफोन पर लगाकर बार-बार शिक्षक एक ही बात छात्रों को सुना सकता है । ये रिकार्ड शुद्ध भाषा के सुनने और अभ्यास करने के लिए बहुत उपयोगी है। कहानी, सस्वर श्लोक वाचन, नाटक, गीत आदि भी छात्रों को सुनवाएँ जा सकते हैं। जिनसे वे छात्र भी स्वयं अच्छे स्वर में इनको प्रस्तुत करने का अभ्यास कर सकें।
    b. **आकाशवाणी (रेडियो)-** यह दूरस्थ शिक्षा का सस्ता, सुगम व बहुमुखी साधन है। आकाशवाणी के माध्यम से भाषा शिक्षक भाषण वार्ता, साहित्य चर्चा , नाटक आदि को सुनवाकर छात्रों को लाभान्वित करा सकता है ।
    c. **ध्वनि अभिलेख (टेपरिकॉर्डर)-** इसमें व्यक्ति अपनी ध्वनि को रिकॉर्ड कर किसी भी समय उसे पुनःपुनः सुन सकता है । इस उपकरण की सहायता से छात्रों को उच्चारण अभ्यास, बोलने की
    d. गति, स्तर, प्रवाह आदि ठीक करवाया जा सकता है। वाक्यों की रचना तथा व्याकरण के पाठों को सरलता से पढ़ाया जा सकता है।
    e. **लिंग्वाफोन (सीतावाद्य)-** लिंग्वाफोन का प्रयोग भाषा शिक्षण में होता है। इसकी सहायता से अन्य भाषा सरलता से सीखी जा सकती है। संस्कृत शिक्षण के लिए भी यह लाभदायक है। लिंग्वाफोन के अभिलेख आदर्श वक्ता द्वारा तैयार करवाये जाते हैं।
    f. **टेली टीचिंग एवं टेली कान्फ्रेन्सिंग-** दूरस्थ शिक्षा के अन्तर्गत अत्यधिक प्रयोग किया जाता है । IGNOU में इसका प्रयोग बहुतात होता है।
2. **दृश्य सामग्री** – दृश्य सामग्री वह हैं जिसको प्रत्यक्ष देखकर छात्र किसी विषय को सुगमता से समझते हैं। ये शिक्षण में प्रयुक्त किये जाने वाले अन्य साधनों की तुलना में सस्ते व सुलभ भी होते हैं। इनको दो भागों में बाँटा जा सकता है- सामान्य तथा यान्त्रिक ।

    सामान्य दृश्य सामग्री – ये वे साधन हैं जिनके लिए किसी प्रकार की विद्युत अथवा मशीन की आवश्यकता नहीं होती ।

    i. **श्यामपट्ट-** किसी कक्षा-कक्ष में श्यामपट्ट का होना पहली अनिवार्य शर्त है। यह सबसे सस्ता व सुलभ दृश्य सामग्री है। इसके कई रुप आजकल प्रचलित हैं जैसे- चल श्यामपट्ट तथा अचल श्यामपट्ट । रंग की दृष्टि से श्याम , हरित, पीत, श्वेत आदि। सामग्री की दृष्टि से- लकड़ी, सीमेंट, **ऐजीन,** फलानेन, शीशे आदि। संस्कृत भाषा शिक्षण का कोई भी पाठ बिना श्यामपट्ट की सहायता से पढ़ाना सम्भव नहीं है।

    ii. **चित्र-** संस्कृत भाषा शिक्षण को रोचक व सुग्राह्य बनाने में शिक्षक रंगीन और आकर्षक चित्रों का प्रयोग कर सकता है । चित्र के माध्यम से अमूर्त वस्तु अथवा उसकी संकल्पना

मूर्तिमान हो उठती है। अक्षर ज्ञान के लिए चित्र प्राथमिक स्तर से ही बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

iii. **मूक चित्र-** इन चित्रों का भी भाषाशिक्षण में विशिष्ट उपयोग है। शिक्षक रचना शिक्षण में इनका उपयोग करके छात्रों को रचना करने में सहायता कर सकता है। कोई प्राकृतिक दृश्य, किसी ऐतिहासिक दृश्य, घटना अथवा पात्रों पर आधारित ये चित्र देख कर छात्र सम्बन्धित जानकारी से युक्त मौखिक एवं लिखित रचना करते हैं। किसी कहानी का विकास भी बड़ी सरलता से क्रमबद्ध रुप से चित्रों के प्रदर्शन द्वारा किया जा सकता है।

iv. **मानचित्र-**संस्कृत भाषा शिक्षण करते समय छात्रों को किसी नगर की ऐतिहासिक तथा भौगोलिक स्थिति समझने के लिए मानचित्रों का प्रयोग किया जा सकता है । जैसे- नालन्दा, तक्षशिला, कश्मीर आदि की स्थिति दर्शाने हेतु ।

v. **रेखाचित्र-** रेखाओं द्वारा आकृति प्रदान करके भी विषय-वस्तु को स्पष्ट किया जा सकता है। चित्र, प्रतिकृति आदि के अभाव में अध्यापक इनका प्रयोग भाषा शिक्षण में भी कर सकता है।

vi. **चार्ट-** संस्कृत भाषा शिक्षण करते समय तुलनात्मक अध्ययन करवाने के लिए शब्दरुप तथा धातु रुपों का विभिन्न विभिक्तयों में स्वरुप बताने की दृष्टि से समास, सन्धि, प्रत्यय, उपसर्ग तथा कारकों का ज्ञान प्रदान करने के लिए चार्ट का प्रयोग किया जा सकता है।

vii. **प्रतिकृति-** ये वास्तविक पदार्थों अथवा मूल वस्तुओं के छोटे रुप में होती है। बड़े वास्तविक पदार्थों की छोटी प्रतिकृति दिखायी जा सकती है। जैसे- हाथी, घोड़े, रेल का इंजन आदि इतने बड़े होते हैंकि उन्हें कक्षा में नहीं लाया जा सकता है। इसलिए इनका ज्ञान देने के लिए उनकी प्रतिकृतियां दिखाई जाती हैं। ये चित्रों की अपेक्षा अधिक लाभदायक है।

viii. **भितिपत्रिका-**छात्रों में सृजनात्मक शक्ति व मौलिक चिन्तन का विकास करने हेतु विद्यालयों में पत्रिका लेखन व प्रकाशन पर बल दिया जाता है। जब छात्रों की स्वरचित रचनाओं को कक्षा की दिवारों पर तथा कक्षा के बाहर बरामदे तथा गैलरी में दीवारों पर प्रदर्शित किया जाता है तो वह भित्ति पत्रिका कहलाती है।

ix. **पत्र-पत्रिकाएं-** सम्बन्धित विषय में अतिरिक्त ज्ञान में वृद्धि हेतु पत्र-पत्रिकाओं का अध्ययन आवश्यक है। संस्कृत भाषा शिक्षण संबंधी ज्ञान विस्तार हेतु संस्कृत सम्बन्धित पत्र-पत्रिकाओं का ज्ञान होना चाहिए तथा कहां से प्रकाशित होती है तथा उन पत्रिकाओं के सदस्य बनने का प्रयास करना चाहिए।

x. **पाठ्यपुस्तक-** पाठ्यपुस्तक शिक्षक के शिक्षण का आधार होती हैं । इनको लेकर ही शिक्षक अपना अध्यापन कार्य करता है, किन्तु पाठ्यक्रम में निर्धारित पुस्तकों के अतिरिक्त पुस्तक पढ़ने हेतु शिक्षक छात्रों को प्रेरित कर सकता है।

xi. **संग्रहालय-** संग्रहालय ऐसा स्थान है जहाँ विविध वस्तुओं को एकत्रित कर रखा गया हो। ये वस्तुएं दुर्लभ तथा प्राचीन हो सकती हैं। संस्कृत भाषा शिक्षण के समय प्राचीन दुर्लभ ग्रन्थों

की पाण्डुलिपियों के संग्रहालय में साक्षात् दर्शन करवाकर लाभ उठाया जा सकता है। छात्रों को प्रायोजना रुप में कार्य देकर इसकी महत्ता से परिचित कराया जा सकता है।

यांत्रिक दृश्य सामग्री- वर्तमान युग तकनीकी युग होने के कारण शिक्षा क्षेत्र में भी इसका प्रभाव पड़ा है। अतः शिक्षा जगत में शिक्षक भी अपने शिक्षण को प्रभावी बनाने हेतु यान्त्रिक दृश्य सामग्री का प्रयोग कर रहे हैं।

i. **चित्र विस्तारक यन्त्र (एपिडाइस्कोप)**- छोटे चित्रों को बड़ा आकार प्रदान करने का कार्य चित्रविस्तारक यन्त्र करते हैं। ये चित्र ध्वनिरहित होते हैं। पुस्तक में आये चित्रों को शिक्षक इसकी सहायता से प्रस्तुत करते हैं जिससे शिक्षण सुग्राह्य हो जाता है। संस्कृत भाषा शिक्षण में इस यन्त्र का प्रयोग वर्तनी की अशुद्धियों को समझाने, काव्य के मुख्य अंशों की व्याख्या करने, रचना शिक्षण तथा व्याकरण शिक्षण में किया जाता है।

ii. **ओवर हेड प्रोजेक्टर (OHP)-** इसमे पारदर्शी शीट पर विषयवस्तु को मार्कर द्वारा शिक्षक निर्मित कर इस यन्त्र की सहायता से कक्षा में प्रस्तुत करता है। इसके द्वारा शिक्षक को किसी भी पाठ की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि समझाने में सुविधा रहती है। इसके प्रयोग से चित्रों का प्रर्दशन करके भी संस्कृत शिक्षण रुचिकर बनाया जा सकता है।

iii. **फिल्म स्ट्रिप प्रोजेक्टर-** इस प्रक्षेपण यन्त्र द्वारा किसी भी घटना से सम्बन्धित अनेक चित्रों का प्रर्दशन करके उसका पूरा विम्ब छात्रों के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। इससे छात्रों में निरीक्षण तथा कल्पना शक्ति का विकास होता है।

iv. **स्टिरियोस्कोप-** किसी प्राकृतिक दृश्य तथा ऐतिहासिक स्थल को मूर्त रुप देने में यह यन्त्र उपयोगी होता है। कथा शिक्षण में और रचना शिक्षण में यह अधिक उपयुक्त है।

3. **श्रव्य-दृश्य सामग्री-** यह वह सामग्री है जिनके द्वारा एक साथ देख व सुनकर छात्र ज्ञान ग्रहण करते हैं-

i. **दूरदर्शन-** दूरदर्शन आज शिक्षा प्रदान करने का महत्वपूर्ण साधन बन गया है। संस्कृत भाषा शिक्षण में भी दूरदर्शन की महत्वपूर्ण भूमिका है। संस्कृत समाचार, संस्कृत कार्यक्रम 'अक्षरा'/'वार्तावली' इत्यादि के प्रस्तुतीकरण का अवलोकन कर छात्र भाषा सम्बन्धी सुधार करने हेतु प्रेरित होते हैं।

ii. **ऑडियो-वीडियो कैसेट(श्रव्य-दृश्य अभिलेख)-** इन अभिलेखों द्वारा अधिगमकर्ता को यह सुविधा हो जाती है कि वह अपनी इच्छा से सब चाहे कार्यक्रम देख व सुन सकता है। संस्कृत शिक्षक संस्कृत भाषा से सम्बन्धित प्रसारित कार्यक्रम का अभिलेख(रिकार्ड) करके उनको अपने कालांश में दिखा सकते हैं।

iii. **अभिनय(नाटक)-** किसी भी अवस्था के अनुकरण को नाटक अथवा अभिनय कहते है। संस्कृत शिक्षक पाठ्यक्रम में निर्धारित नाटकों का वार्षिकोत्सव या किसी राष्ट्रीय पर्व पर मंचन कराकर छात्रों में मनोरंजन के साथ-साथ संस्कृत में वार्तालाप करने की योग्यता,

संस्कृत समझने की योग्यता व सरल संस्कृत के प्रति रुचि उत्पन्न कर सकता है। ये नाटक छात्रों में सृजनात्मक क्षमता का विकास भी करते हैं क्योंकि नाटक देख सुनकर उसका गहरा प्रभाव उनके हृदय तथा मस्तिष्क पर पड़ता है।

iv. **चलचित्र-** चलचित्र मनोरंजन के सशक्त माध्यम हैं किन्तु इना शैक्षिक महत्व भी कम नहीं है। संस्कृत शिक्षक संस्कृत में बने चलचित्रों को दिखाकर उसके विषय में चर्चा कर सकता है।

v. **कंप्यूटर-** कम्प्यूटर आज हमारी अपरिहार्य आवश्यकता बन गया है। अतः संस्कृत शिक्षक अपने शिक्षण को प्रभावी बनाने हेतु कम्प्यूटर का प्रयोग कर सकता हैं। संस्कृत व्याकरण संबंधी नियमों को प्रायोगिक स्तर पर संस्कृत शिक्षक इसको बहुत सार्थक एवं सरल रुप एवं विभिन्न उदाहरणों के साथ प्रस्तुत करने में सक्षम हो सकता है।

भाषा प्रयोगशाला- भाषा प्रयोगशाला विद्युत की सहायता से नियन्त्रित एक कक्ष होता है जिसमें छात्र एक साथ बैठकर भाषा सीखते है और व्यक्तिगत निर्देशन प्राप्त करते है। भाषा प्रयोगशाला एक ओर श्रव्य और श्रव्य-दृश्य प्रकार की हो सकती है तथा दूसरी ओर श्रव्य निष्क्रिय और श्रव्य सक्रिय हो सकती है। श्रव्य भाषा प्रयोगशाला में टेपरिकॉर्डर, ग्रामोफोन, भाषा टेप, डिस्क आदि यन्त्र होते हैं जबकि श्रव्य-दृश्य भाषा प्रयोगशाला में सभी श्रव्य उपकरणों के साथ-साथ प्रोजेक्टर, फिल्म स्लाइड, फिल्मस्ट्रिप आदि उपकरण भी होते हैं । श्रव्य भाषा प्रयोगशाला "श्रवण कौशल" पर तथा श्रव्य-दृश्य प्रयोगशाला मौखिक अभ्यास पर बल देती है।

अभ्यास प्रश्न

4. श्रव्य सामग्री के प्रकार कौन-कौन से हैं? नाम लिखिए।
5. दृश्य सामग्री के पांच प्रकारों के नाम लिखिए ।
6. श्रव्य-दृश्य सामग्री के कितने प्रकार है। नाम लिखिए ।

5.9 पाठ्य-सहगामी क्रियाओं का आशय

संस्कृत शिक्षण को रुचिकर एवं सरल बनाने हेतु पाठ्य-सहगामी क्रियाओं का महत्वपूर्ण स्थान है। शिक्षा की समस्त क्रियाओं द्वारा बालक के शारीरिक, मानसिक तथा भावात्मक पक्षों का सम्पूर्ण विकास किया जाता है । शिक्षा की प्रक्रिया में पाठ्यवस्तु का विशेष महत्व होता है। पाठ्यक्रम का व्यापक तथा संकुचित अर्थ होता है। विद्यालय में पढ़ाये जाने वाले विषय सम्बन्धी रुपरेखा को पाठ्यक्रम के संकुचित रुप में लिया जाता है। जिससे मात्र ज्ञानात्मक पक्ष का विकास होता है जबकि क्रियात्मक एवं भावात्मक पक्ष का विकास नहीं हो पाता है। इन्हीं पक्षों के विकास हेतु पाठ्यचर्या के अन्तर्गत पाठ्य-सहगामी क्रियाओं का समायोजन किया जाता है जिससे छात्र का सर्वांगीण विकास हो पाता है। माध्यमिक शिक्षा आयोग का

विचार है कि ये क्रियाएं बालकों को अपने वैयक्तिक गुणों, क्षमताओं तथा आत्मविश्वास को विकसित करने के लिए अवसर प्रदान करती है।

अभ्यास प्रश्न

7. पाठ्य-सहगामी क्रियाओं का आशय दो पंक्तियों में लिखिए।

5.10 पाठ्य-सहगामी क्रियाओं के उद्देश्य

पाठ्य-सहगामी क्रियाओं का प्रमुख उद्देश्य उन्नत शिक्षा के निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त करने में सहायता करना होता है। समाज में इसका विशेष महत्व है, जिन गुणों का विकास पाठ्यक्रम की क्रियाओं द्वारा सम्भव नहीं होता उनका विकास पाठ्यसहगामी क्रियाओं के माध्यम से किया जाता है। इसके उद्देश्य इस प्रकार हैं-

- विद्यालय में सम्पूर्ण शैक्षिक कार्यक्रम एवं विद्यालय की चारित्रिक भावना को उन्नत बनाना।
- छात्रों के शब्द भण्डार का विकास करना।
- छात्रों में कल्पना, तर्क व निरीक्षण शक्ति का विकास करना।
- छात्रों में संस्कृत साहित्य के प्रति रुचि उत्पन्न करना।
- छात्रों में अभिव्यक्ति कौशल का विकास करना।
- काव्य प्रेम की भावना जागृत करना।
- छात्रों में आत्मविश्वास उत्पन्न करना।
- अवकाश के समय का सदुपयोग करने की क्षमता में वृद्धि करना।
- सैद्धान्तिक ज्ञान को व्यावहारिक ज्ञान में परिवर्तित करने का अवसर देना।
- आत्ममूल्यांकन का अवसर प्रदान कर स्वयं में सुधार करने के लिए प्रेरित करना।
- छात्रों में संग्रह करने की प्रवृत्ति को रचनात्मक दिशा प्रदान करना।
- सभा संचालन का अवसर प्रदान कर नेतृत्व क्षमता का विकास करना।
- स्वस्थ मनोंरजन की ओर निर्देशित करना।
- छात्रों का सर्वांगीण विकास करना।

5.11 पाठ्य-सहगामी क्रियाओं का महत्व

पाठ्य-सहगामी क्रियाओं का छात्रों के सर्वांड्गीण विकास में महत्वपूर्ण स्थान है । इससे शिक्षा के निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्त में सहायता मिलती है। इसकी महत्ता इस प्रकार है-

- पाठ्य-सहगामी क्रियायें छात्रों में नवीन अभिरुचियों के लिए अवसर प्रदान करती है।
- छात्रों शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य के लिए प्रदान करती है तथा उनके विकास में सहायक होती है।
- इन क्रियाओं में छात्रों की मौलिकता तथा सृजनात्मक क्षमताओं का उचित विकास होता है।
- इन क्रियाओं की सहायता से नवीन अधिगमों के अनुभव को प्रदान किया जाता है। वे छात्रों के लिए अधिक प्रभावी होती हैं- जैसे शैक्षिक भ्रमण से कक्षा शिक्षण का ज्ञान अधिक सार्थक एवं सजीव हो जाता है।
- वैयक्ति आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक।
- सामाजिक आवश्कताओं की पूर्ति में सहायक।
- नैतिक गुणों का विकास।
- नागरिकता का प्रशिक्षण।
- अवकाश के क्षणों का सदुपयोग।
- अनुशासन स्थापित करने में सहायक।
- पाठ्य-सहगामी क्रियाओं से कक्षा शिक्षण में अनुदेशन को प्रशिक्षण मिलता है और छात्र कक्षा-शिक्षण में अधिक रुचि लेने लगते है।

अभ्यास प्रश्न

8. पाठ्य-सहगामी क्रियाओं का क्या महत्व है। तीन पंक्तियों में लिखें।

5.12 पाठ्यसहगामी क्रियाओं के प्रकार

विद्यालय में आयोजित की जाने वाली पाठ्यसहगामी क्रियाओं को मुख्यतः निम्नलिखित प्रकार से विभाजित किया जा सकता है-

i. शारीरिक सम्बन्धी पाठ्यसहगामी क्रियायें
ii. समाजिक सम्बन्धी पाठ्यसहगामी क्रियायें

iii. साहित्यिक सम्बन्धी पाठ्यसहगामी क्रियायें
iv. सांस्कृतिक सम्बन्धी पाठ्यसहगामी क्रियायें

उपर्युक्त सभी पाठ्यसहगामी क्रियाओं में से संस्कृत शिक्षक अपने विषय को रोचक बनाने तथा संस्कृत साहित्य के प्रति छात्रों में रुचि उत्पन्न करने के लिए दो गतिविधियों को प्रयोग में ला सकता है।-

संस्कृत शिक्षण से सम्बन्धित पाठ्यसहगामी क्रियाएँ

i. **साहित्यिक गतिविधियाँ-** i. वाद विवाद ii.भाषण- विद्वानों एवं छात्रों द्वारा iii. कवि सम्मेलन iv. श्लोक पाठ v. कथा-कथन व कथा लेखन vi. निबन्ध लेखन vii. विद्यालय पत्रिका viii. विचारगोष्ठी ix. संस्कृत साहित्य सम्बन्धी खेल – संस्कृत प्रश्नोत्तरी, अन्त्याक्षरी, सुभाषित प्रतियोगिता, समस्यापूर्ति, प्रहेलिका, विनोदकणिका, शब्दखेल आदि।
ii. **सांस्कृति गतिविधियाँ-** i. नाटक अभिनय ii. एकांकी नाटक iii. संस्कृत गीत iv. संस्कृत दिवस का आयोजन v. कवियों की जयन्तियों का आयोजन vi. संस्कृत के दुर्लभ ग्रन्थों व पाण्डुलिपियों की प्रदर्शनी।

साहित्यिक गतिविधियाँ

i. **वाद विवाद-** इस क्रिया के माध्यम से छात्रों के अन्तर्गत अभिव्यक्ति कौशल का विकास किया जाता है तथा वे सम्प्रत्यय सम्बन्धी पक्ष व विपक्ष को भलीभाँति समझने तथा उसको दूसरों के समक्ष उचित प्रकार से अभिव्यक्त करने में सक्षम हो पाते है।
ii. **भाषण-** भाषण के अन्तर्गत शिक्षक अथवा छात्र विषय को सशक्त तरीके से अभिव्यक्त करने में सक्षम हो पाते हैं। इसमें वक्ता क्रमबद्धता के साथ विचारों को प्रभावी ढ़ंग से प्रस्तुत करता हुआ विषय का प्रतिपादन करता है।
iii. **कविसम्मेलन-**छात्रों में काव्य प्रेम जागृत करने हेतु कवि सम्मेलन आवश्यक है। कवि सम्मेलन में कवियों द्वारा श्लोकों के सस्वर पाठ से उनके अन्तर्गत भी सस्वर अभिव्यक्ति की रुचि उत्पन्न होती है तथा सस्वर अभिव्यक्ति के कौशलों की बारीकियों से परिचित होते हैं। इसमें छात्रों को भी अवसर दिया जाना उनके लिए लाभदायक होता है।
iv. **श्लोक पाठ-** प्रारम्भिक स्तर में ही छात्रों को सुन्दर सुभाषित, मन्त्र, गीत इत्यादि कण्ठस्थ कराकर उन्हें विभिन्न कार्यक्रमों में उनका सस्वर वाचन कराया जाना चाहिये. इससे विद्यालय में संस्कृतमय वातावरण का निर्माण होता है।
v. **कथा कथन व कथा लेखन-** संस्कृत साहित्य में अनेक कथायें है,उनको छात्रों के समक्ष चित्र, हाव-भाव के साथ प्रस्तुत किया जाना चाहिए ताकि छात्र उनको ध्यान से सुने और उनमें निहित शिक्षा को ग्रहणकर अपने भावी जीवन में उसका उपयोग कर सकें।

vi. **निबन्ध लेखन-** निबन्ध लेखन के माध्यम से छात्र विषय की गहराई को समझने में समर्थ हो जाता है तथा उसमें लिखित अभिव्यक्ति का भी विकास होता है। निबन्ध लेखन का शीर्षक स्तरानुसार निर्धारित किया जाना चाहिए। इसको प्रतियोगिता रुप में भी आयोजित किया जा सकता है।

vii. **विद्यालय पत्रिका-** विद्यालय के प्रत्येक शैक्षणिक सत्र में विद्यालय पत्रिका का प्रकाशन किया जाता है। जिससे छात्रों में सृजनात्मक का विकास होता है। इसमें सभी छात्रों को अपने संस्कृत, हिन्दी व अंग्रेजी में स्वलिखित लेख, कवितायें आदि को लिखकर देना होता है, शिक्षक भी इसमें अपने शैक्षिक स्वलेख इत्यादि देते है। सम्पादक मण्डल के अन्तर्गत छात्रों को भी सम्मिलित कर इसको संशोधित कराकर मुद्रित कराया जाता है। विद्यालय पत्रिका विद्यालय की प्रगति सूचक भी होती है।

viii. **विचार गोष्ठी-** इसके अन्तर्गत किसी पूर्व निधारित विषय पर या किसी समस्या पर मत अभिव्यक्त करते है तथा उस विषय सम्बन्धी विषय विशेषज्ञ भी अपना मत रखते है। विष सम्बन्धी प्रश्नों को भी उपस्थित किया जाता है जिसका निवारण गोष्ठी में सम्मिलित सदस्य देते हैं। इससे सभी को अन्य विद्वानों के विचारों सारगर्भित विचारों का लाभ मिलता है।

संस्कृत साहित्यिक सम्बन्धी खेल-

i. **संस्कृत प्रश्नोत्तरी-** विषय सम्बन्धी किसी एक पक्ष से अध्यापक प्रश्न पूछेगा तथा छात्र उत्तर देंगे। इसे रुचिकर बनाने हेतु कक्षा के दो समूहों में बाँट दिया जाता है प्रश्न का सही उत्तर देने वाले को अंक प्रदान किया जाता है। छात्रों को इसके लिए पूर्व में बता दिया जाता है कि आप इस विषय की तैयारी करके आएँ।

ii. **अन्त्याक्षरी-** इसमें विद्यालय अथवा कक्षा के छात्रों को दो समूह में बाँट दिया जाता है तथा संस्कृत व्याकरण के सूत्र, संस्कृत श्लोक, सुभाषित, मन्त्र इत्यादि को अभिव्यक्त करना होता है। प्रथम समूह द्वारा जो प्रस्तुति की गयी है उसके अन्तिम अक्षर से दूसरा समूह अपनी प्रस्तुति करता है। छात्रों को इनके अभिव्यक्त करने हेतु पूर्व में कण्ठस्थ करना आवश्यक है।

iii. **सुभाषित प्रतियोगिता-** इसमें छात्रों को किसी वर्ण विशेष से श्लोक बोलने का बन्धन नहीं होता, अपितु जो छात्र कण्ठस्थ सुभाषितों को जितना लय, यति, गति व छन्द का ध्यान रखते हुए वाचन करता है, वही विजयी होता है।

iv. **समस्यापूर्ति-** इसके अन्तर्गत छात्रों को किसी समस्या को देकर उत्तम से उत्तम श्लोक बनाने की प्रेरणा दी जाती है अथवा श्लोक के दो चरण देकर आगे के दो चरण पूरे करने के लिए कहा जाता है।

v. **प्रहेलिका-**संस्कृत में छोटी-छोटी प्रहेलिका पूछकर छात्रों से उनका उत्तर प्राप्त किया जाता है। इससे छात्रों में संस्कृत में समझने की क्षमता का विकास होता है।

vi. **विनोद कणिका (चुटकुले)-**छात्रों को सरल संस्कृत में चुटकुले सुनायें जाये, उन्हें स्वयं संस्कृत में चुटकुले पढ़ने व सुनाने के लिए प्रेरित किया जाए। इसके द्वारा छात्रों में संस्कृत के प्रति रुचि उत्पन्न की जा सकती है।

vii. **शब्दखेल-** छात्रों के समक्ष कोई चित्र प्रस्तुत करने को कहा जाये । पूरे शब्द के किसी अंश छिपाकर उसकी पूर्ण करने को कहा जाये। विलोम शब्दों को पूछा जाये इत्यादि।

सांस्कृतिक गतिविधियाँ

i. **नाटक-** नाटक हमारी प्राचीनतम कला है जिसका उपयोग करके साक्षर एवं निरक्षर दोनों को ही सांस्कृतिक, धार्मिक, ऐतिहासिक आदि विषयों का ज्ञान दिया जाता रहा है । भाषाशिक्षण में भावों के अनुरुप भाषा स्वर एवं अभिनय देख सुनकर निश्चित ही छात्र अपनी भावाभिव्यक्ति, अभिनय कुशलता अर्जित कर सकते हैं। ये नाटक छात्रों में सृजनात्मक क्षमता का विकास भी करते हैं। छात्र स्वयं भी नाटक में भाग लेकर पात्रानुकूल भाव, भाषा अभिव्यक्ति तथा अभिनय का अनुभव प्राप्त कर सकते हैं।

ii. **एकांकी नाटक-** किसी नाटक के किसी एक अंक का मंचन करना एकांकी नाटक कहलाता है। सम्पूर्ण नाटक मंचन करवाने में समय, शक्ति तथा धन तीनों की अधिक मात्रा में आवश्यकता होती है जबकि एकांकी नाटक में एक अंश का मंचन करवाना सरल व प्रेरणादायक कार्य है।

iii. **संस्कृत गीत-** इसके अन्तर्गत छोटे-छोटे संस्कृत गीतों का समवेत स्वर में गायन करने का अभ्यास छात्रों को करवाने जाये। तथा इनको कण्ठस्थ करने को कहा जाये । कण्ठस्थ श्लोक, गीतों विद्यालय में सांस्कृतिक कार्यक्रमों में प्रस्तुत भी किया जाये।

iv. **संस्कृत दिवस का आयोजन-** प्रति वर्ष 'श्रावणी पूर्णिमा' के दिन संस्कृत दिवस का आयोजन किया जाना चाहिए। संस्कृत दिवस के उपलक्ष्य में अनेक साहित्यिक कार्यक्रम कराये जा सकते है तथा छात्रों को संस्कृत भाषा की महत्ता से परिचित कराया जाये।

v. **कवियों की जयन्तियों का आयोजन-** विद्यालय में विभिन्न प्रसिद्ध संस्कृत कवियों का आयोजन किया जाये तथा उस कवि का काव्य सौष्ठव से छात्रों को परिचित कराया जाना चाहिए।

vi. **संस्कृत के दुर्लभ ग्रन्थों तथा पाण्डुलिपियों की प्रदर्शनी-** इनकी प्रदर्शनी से प्राचीनकालीन ज्ञान को छात्र प्रत्यक्ष रुप में देखकर अपना ज्ञानात्मक विकास करते हैं।

अभ्यास प्रश्न

9. पाठ्यसहगामी क्रियाओं के पांच प्रमुख प्रकार बताइये ।

5.13 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान चुके हैं कि संस्कृत भाषा शिक्षण को प्रभावी एवं रुचिकर बनाने हेतु मुद्रित सामग्री, श्रव्यदृश्य सामग्री तथा पाठ्य सहगामी क्रियाएँ संस्कृत शिक्षक हेतु उपयोगी शिक्षण में इनका उपयोग करते हुए संस्कृत शिक्षक संस्कृत छात्रों को विषय संबंधी ज्ञान का दृढ़ीकरण करता है, उनमें रुचि एवं स्तरानुसार विषय को प्रस्तुत करता है। जिससे छात्र का सर्वांगीण विकास सम्भव हो पाता है।

संस्कृत भाषा शिक्षण को सुगम,बोधगम्य तथा ज्ञान को स्थायी बनाने के उद्देश्य से यह आवश्यक है कि शिक्षक मुद्रितसामग्री, श्रव्य-दृश्य सामग्री तथा पाठ्यसामग्री का महत्व को समझे, साथ ही यह जाने कि छात्रों में लाभ के लिए उनका प्रयोग कब, कहाँ और कैसे किया जा सकता है। प्रस्तुत इकाई में अध्ययन से मुद्रित सामग्री, श्रव्य-दृश्य सामग्री एवं पाठ्यसहगामी क्रियाओं के आशय, महत्व एवं प्रकार से परिचित हो सकेंगे तथा इनका संस्कृत भाषा शिक्षण में उपयोग करने में सक्षम हो सकेंगे।

5.14 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. मुद्रित सामग्री का आशय मुख्यतः शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में निर्धारित विषयवस्तु का मुद्रित रुप होना ही मुद्रित सामग्री कहलाता है।
2. भाषा सम्बन्धी कौशलों को विकसित करने में मुद्रित सामग्री का अत्यधिक महत्व है। भाषा सम्बन्धी कौशल यथा- पढ़ना, लिखना, बोलने में मुद्रित समाग्री छात्रों को अत्यधिक सहायता प्रदान करती है। यथा- अक्षरज्ञान, मौनवाचन, सस्वरवाचन इत्यादि।
3. श्रव्य दृश्य सामग्री से आशय शिक्षण में उन साधनों से है जिनके प्रयोग से स्थूलता से सूक्ष्मता की ओर बढ़ते हुए छात्रों के ज्ञान को पुष्ट करने में बल मिलता है।
4. सीखने के लिए छात्रों को जितनी अधिक ज्ञानेन्द्रियों का प्रयोग शिक्षक कर सकेगा उतना ही छात्र मानसिक रुप ले सक्रिय होकर सम्प्रत्यय को आत्मसात कर सकेगा। श्रव्य दृश्य सामग्री इस कार्य को सरल बनाता है।
5. ग्रामोफोन, आकाशवाणी, ध्वनि अभिलेख (टेपरिकॉर्डर), लिंग्वाफोन (सीतवाद्य), टेली टीचिंग एवं कान्फ्रेन्सिंग।
6. श्यामपट्ट, चित्र , प्रतिकृति , ओवरहेड प्रोजेक्टर(OHP) , चित्रविस्तार यन्त्र (एपिडाइस्कोप)।
7. दूरदर्शन , ऑडियो-वीडियों कैसेट (श्रव्य-दृश्य अभिलेख) , नाटक ,चलचित्र , कंप्यूटर ,भाषा प्रयोगशाला।
8. पाठ्यसहगामी क्रियायें वे क्रियायें है जिनके माध्यम से छात्रों के ज्ञानात्मक विकास के साथ भावात्मक तथा क्रियात्मक पक्ष का भी विकास किया जाता है। ये क्रियायें विद्यालय के शैक्षिक रुप में पाठ में निर्धारित कर ली जाती है तथा इनका उपयोग छात्रों के सर्वांगीण विकास में किया जाता है।
9. पाठ्यसहगामी क्रियाओं के माध्यम से छात्रों में नवीन अभिरुचियाँ उत्पन्न की जा सकती है। वैयक्तित तथा समाज पूर्ति में सहायक होती है। इन क्रियाओं से अनुदेशन को पुनर्बलन मिलता है और छात्र कक्षा शिक्षण में अधिक रुचि लेते हैं।
10. वाद-विवाद , कविसम्मेलन , विद्यालय , संस्कृत प्रश्नोत्तरी एवं अत्याक्षरी ,नाटक।

5.15 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मित्तल, डॉ(श्रीमती) सन्तोष (2034) संस्कृत शिक्षण, आर.लाल बुक डिपो, मेरठ
2. शर्मा, डॉ. आर. ए. (2008) शिक्षा के तकनीकी आधार, आर. लाल. बुक डिपो, मेरठ, पृ. 523-563
3. डॉ(श्रीमती) सुदेशसिंह एवं डॉ(श्रीमती) वंदना सक्सेना(2005) शैक्षिक तकनीकी के मूलधार, साहित्य प्रकाशन, आगरा, पृ. 309-324

5.16 निबन्धात्मक प्रश्न

1. मुद्रित सामग्री का आशय स्पष्ट करते हुए इसके उद्देश्य, महत्व एवं प्रकार का विस्तारपूर्वक वर्णन करें।
2. सामग्री का महत्व एवं इसके प्रकारों का उल्लेख कीजिये।
3. दृश्य सामग्री का महत्व स्पष्ट करते हुए इनके प्रकारों का संक्षिप्त वर्णन करें।
4. श्रव्य-दृश्य सामग्री का क्या महत्व है? तथा इसका भाषा शिक्षण प्रयोग उचित है या अनुचित अपने विचार लिखे।
5. संस्कृत शिक्षक के लिए श्रव्य एवं श्रव्य-दृश्य सामग्री का महत्व स्पष्ट कीजिए।

खण्ड 2

Block 2

इकाई 1- पाठ्यक्रम एवं पाठ्यसामग्री का निर्माण

1.1प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 पाठ्यक्रम, पाठ्यचर्या एवं पाठ्यसामग्री के मध्य संबंध की समझ
1.3.1 पाठ्यक्रम और पाठ्यचर्या के मध्य समझ
1.3.2 पाठ्यक्रम और पाठ्यसामग्री के मध्य समझ
1.3.3 पाठ्यचर्या और पाठ्यसामग्री के मध्य समझ
1.4 पाठ्यक्रम निर्माण की प्रक्रिया की समझ
1.4.1 पाठ्यक्रम निर्माण
1.4.2 पाठ्यक्रम निर्माण की प्रक्रिया
1.4.3 पाठ्यक्रम निर्माण की प्रक्रिया के सिद्धांत
1.4.4 पाठ्यक्रम निर्माण के सूत्र
1.5 सामग्री का चयन
1.5.1 पाठ्यसामग्री का अर्थ एवं सिद्धांत
1.5.2 सामग्री चयन की विधि एवं उसकी व्यवस्था
1.5.3 शिक्षण विधियों का चयन तथा व्यवस्था
1.6 गतिविधियों या क्रिया-कलापों का विकास
1.6.1 पाठ्यक्रम विकास
1.6.2 पाठ्यक्रम सम्पादन
1.6.3 पाठ्यक्रम सम्पादन एवं पाठ्यक्रम विकास में अंतर
1.6.4 पाठ्यक्रम विकास में अनुसंधान की आवश्यकता
1.6.5 पाठ्यक्रम विकास में अनुसंधान के क्षेत्र
1.7 पाठ्यपुस्तकों का निर्माण
1.7.1 पाठ्यपुस्तक की अवधारणा
1.7.2 पाठ्यपुस्तकों की आवश्यकता एवं महत्व
1.7.3 पाठ्यपुस्तक की विशेषताएँ
1.7.4 पाठ्यपुस्तकों का निर्माण एवं मूल्याङ्कन
1.8 पाठ्यपुस्तक का निर्माण के सिद्धांत

1.8.1 पाठ्यपुस्तक निर्माण
1.8.2 पाठ्यपुस्तक निर्माण के सिद्धांत
1.9 सारांश
1.10 शब्दावली
1.11 अभ्यास प्रश्न
1.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.13 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

"The course of study is the mimeographed or printed outline or syllablus which is furnished to teachers to help them to guide the learning experiences of their pupils. The sum total of the learning experiences is the curriculum"- Logsdon

शिक्षा 'एक त्रिमुखी प्रक्रिया है' जिसके तीन मुख्य अंग होते हैं - '**शिक्षक**' (Educator), '**शिक्षार्थी**' (Educant), एवं '**पाठ्यक्रम**'(Curriculam)। इन तीनों अभिन्न अंगों का वही महत्व है, जो त्रिभुज के लिए तीनों कोणों का है। जिस प्रकार इन कोणों के बिना त्रिभुज की कल्पना नहीं की जा सकती, ठीक उसी प्रकार इन तीनों अंगों के अभाव में शिक्षण प्रक्रिया सम्भव नहीं है। शिक्षक एवं शिक्षार्थियों का कार्य पाठ्यक्रम के उचित संगठन पर आधारित रहता है। बालक की रचना एवं उसका भावी विकास बहुत कुछ पाठ्यक्रम पर निर्भर करता है। विद्यालय के समस्त कार्यों का आधार पाठ्यक्रम ही है। परम्परागत पाठ्यक्रम विभिन्न विषयों की शिक्षा देने का ही लक्ष्य रखता था - यह एक सीमित विचारधारा है। **'माध्यमिक शिक्षा आयोग'** ने **'पाठ्यक्रम'** शब्द के प्रयोजन को इस प्रकार स्पष्ट किया है - *''पाठ्यक्रम केवल पाठ्य-विषयों, पाठ्य-पुस्तकों तथा अध्ययन सामग्री तक ही सीमित नहीं है। उसका क्षेत्र इनसे कहीं अधिक व्यापक है। विद्यालय का सम्पूर्ण जीवन ही पाठ्यक्रम है। पाठ्यक्रम में बालक के समस्त अनुभव जिन्हें वह कक्षा में अथवा बाहर विभिन्न विषयों के शिक्षण द्वारा प्राप्त करता है, अन्य पाठ्येतर क्रियाओं द्वारा प्राप्त करता है, पुस्तकालय एवं वाचनालय से प्राप्त करता है, गोष्ठियों तथा सभाओं से प्राप्त करता है, खेलकूद से प्राप्त करता है, सम्मिलित है।''* इससे यह स्पष्ट है कि विद्यालय का सारा जीवन ही पाठ्यक्रम हो जाता है, और यह बालक के हर क्षेत्र को स्पर्श कर उसके व्यक्तित्व के सन्तुलित विकास में मदद करता है।

The concept of curriculum has changed from time to time. If you go through the traditional books on curriculum and the modern books on curriculum you will

realise a great difference in the concept of curriculum. **Arthur J. Lewis and Mid Alice (1972)** defined curriculum in their book **"Supervision for improved instructions"** as "a set of intentions about opportunities for engagement of persons-to be-educated with other persons and with things (all bearers of information process, techniques and values) in certain arrangements of time and space."

शिक्षण की क्रियाओं का सम्पादन का आधार पाठ्यवस्तु अथवा विषयवस्तु होती है। पाठ्यवस्तु विकास के लिए एक प्रमुख साधन है परन्तु अतीत में इसे साध्य भी माना जाता रहा है। शिक्षक अपनी शिक्षण क्रियाओं द्वारा ऐसी परिस्थितयाँ उत्पन्न करता है जिसमें छात्रों को नए अनुभव होते हैं तथा उन्हें कुछ सम्बन्धित कार्य भी करना भी पड़ता है। परिणाम यह होता है कि उनमें अपेक्षित व्यवहार परिवर्तन होता है अर्थात् वे सीखते हैं। इस प्रकार शिक्षण क्रियाओं का आधार पाठ्यवस्तु या विषयवस्तु होती है। विषयवस्तु के प्रारूप को साधारणतः पाठ्यक्रम कहते हैं। पाठ्यक्रम एक मार्ग के समान है जिसका अनुसरण शिक्षा के लक्ष्य तक पहुँचने के लिए किया जाता है। यह एक ऐसा मार्ग है जो लक्ष्य की ओर अग्रसर होने वाले शिक्षक एवं शिक्षार्थी का पथ-प्रदर्शन करता रहता है, अतः पाठ्क्रम शिक्षा का महत्वपूर्ण अंग है।

पाठ्यक्रम का अर्थ

शाब्दिक अर्थ - अंग्रेजी भाषा में 'पाठ्यक्रम' के लिए करीक्यूलम (Curriculum) शब्द का प्रयोग किया जाता है। करीक्यूलम (Curriculum) शब्द की उत्पत्ति लैटिन (Latin) शब्द 'क्यूरे' (Currere) से बना है। जिसका अर्थ है - 'दौड़ का मैदान' (Race Course) यह एक दौड़ का मैदान है जिस पर व्यक्ति ध्येय को प्राप्त करने के लिए दौड़ता है। शिक्षा के अन्तर्गत इसका अर्थ है - 'छात्रों का कार्य क्षेत्र।' 'मैदान' का अर्थ पाठ्यक्रम से है और 'दौड़' का अर्थ छात्रों द्वारा अनुभव एवं उनकी क्रियाओं से है। शिक्षक पाठ्यक्रम की सहायता से अपनी शिक्षण क्रियाओं का सम्पादन करता है, जिसमें छात्र अनुभव तथा क्रियाएँ करके अपना विकास करता है और अपने गन्तव्य स्थान तक पहुँच जाता है।

संकुचित अर्थ - संकुचित अर्थ के अनुसार पाठ्यक्रम को केवल 'पुस्तकीय ज्ञान' (Bookish Knowledge) तक सीमित कर दिया गया है। उसमें बालकों की आवश्यकताओं, रूचियों, प्रवृत्तियों, अभिवृत्तियों, क्षमताओं तथा व्यवहारिक जीवन में काम आने वाली क्रियाओं का कोई स्थान नहीं होता। संक्षेप में संकुचित अर्थ के अनुसार पाठ्यक्रम का तात्पर्य अध्ययन के उस कोर्स से होता है, जिसमें बालकों को पुस्तकीय ज्ञान प्रदान करने की व्याख्या मात्र होती है।

व्यापक अर्थ - आधुनिक काल में पाठ्यक्रम का स्वरूप बड़ा व्यापक है। अब यह 'अध्ययन के कोर्स' या 'पाठ्यक्रम' तक सीमित नहीं है। सिलेबस (Syllabus) तो इसका अंग-मात्र है। अब पाठ्यक्रम के अन्तर्गत उन सभी अनुभवों का समावेश होता है जो बोलक अपने व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास के लिए

अन्दर तथा बाहर, विषयों तथा खेलों, क्रियाओं, यात्राओं आदि से प्राप्त करते हैं। अतः विस्तृत अर्थ में पाठ्यक्रम के अन्तर्गत वह सभी अनुभव आ जाते हैं जिसे एक नई पीढ़ी अपनी पुरानी पीढ़ियों से प्राप्त करती है। साथ ही विद्यालय में रहते हुए शिक्षक के संरक्षण में विद्यार्थी जो भी क्रियाएँ करता है, वह सभी पाठ्यक्रम के अन्तर्गत है तथा इसके अतिरिक्त विभिन्न पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाएँ भी पाठ्यक्रम का अंग होती है।

The term **Curriculum** is new in the educational vocabulary used in India, and has variously defined by educationists and teachers in schools and colleges. A satisfactory definition of curriculum is, therefore, needed which should guide the learners, as well as the teachers, in their learning and teaching. One such definition could be that curriculum is the organized whole of learning experience provided by an educational institution to bring about the desired changes in the learners.

Over the years definitions of curriculum have included the following –

1) the cumulative tradition of organised knowledge;
2) modes of thought;
3) race experience;
4) guided experience;
5) a planned learning environment;
6) cognitive/affective content and process;
7) instructional plan;
8) instructional ends or outcomes; and
9) a technological system of education.

पाठ्यक्रम की परिभाषा

विद्यालयों का प्रमुख कार्य बालकों को शिक्षा प्रदान करना होता है और इसको पूर्ण करने के लिए वहाँ पर जो कुछ किया जाता है उसे **'पाठ्यक्रम'** का नाम दिया गया है। विद्यालयों में पाठ्य-विषयों के साथ-साथ ऐसी प्रवृत्तियों का समावेश भी किया जाने लगा, जिनसे बालकों में बौद्धिक ज्ञान के साथ-साथ स्वास्थ्य, सौन्दर्यबोध, सृजनात्मकता तथा अन्य मानवीय एवं सामाजिक गुणों का समुचित विकास हो सके। इस प्रकार वर्तमान शताब्दी के पाठ्यक्रम की व्यापकता की दृष्टि से अनेक विद्वानों ने इसको परिभाषित किया है -

कनिंघम के अनुसार, ''पाठ्यक्रम कलाकार (शिक्षक) के हाथ में एक साधन है जिससे वह अपनी सामग्री (शिक्षार्थी) को अपने आदर्श (उद्देश्य) के अनुसार अपनी चित्रशाला विद्यालय में ढाल सके।''

हार्न के अनुसार, ''पाठ्यक्रम वह है जो बालकों को पढ़ाया जाता है। यह शान्तिपूर्ण पढ़ने या सीखने से अधिक है। इसमें उद्योग, व्यवसाय, ज्ञानोपार्जन, अभ्यास और क्रियाएँ सम्मिलित हैं।''

F. Bobbit (1911) in his book **"The Curriculum",** defined curriculum "that series of things which children and youth must do and experience by way of developing abilities to do the things well that make up the affairs of adult life; and to be in all respects of what adults should be."

Masritsz Johnson in the paper "**Appropriate Research Directions in Curriculum and Instruction"** published in Curriculum Theory Network, 6 (Winter 1970-71): 25 presented his view of the curriculum in the following words:

"Curriculum is concerned not with what students will do in the learning situation but with what they will learn (or be able to do) as a consequence of what they do. Curriculum is concerned with what results, not with what happens. And it stands in anticipatory relationship to the learning process, not in a reportorial relationship, after the fact. It deals with the expectations or intentions and more specifically with the learning outcomes intended to be achieve through instruction, that is, through the experiences provided through what happens and what learners do"

माध्यमिक शिक्षा आयोग -''पाठ्यक्रम का अर्थ रूढ़िवादी ढंग से पढ़ाए जाने वाले बौद्धिक विषयों से नहीं है, परंतु उसके अन्दर वे सभी क्रिया-कलाप आ जाते हैं जो बालकों को कक्षा के बाहर तथा भीतर प्राप्त होते हैं।''

National Curriculum Framework, 2005

"In spite of the recommendations of NPE, 1916 to identify competencies and values to the nurtured at different stages, school, education came to be driven more and more by high-state examinations based on information-loaded textbooks... The term National Curriculum Framework is often wrongly construed to mean that an instrument of uniformity is being proposed. The intention as articulated in the NPE, 1916 and the Programme of Action (PoA) 1992 was quite the contrary. NPE proposed a national framework for curriculum as a means of evolving a national system of education capable of responding to India's diversity of geographical and cultural milieus while ensuring a common core of values along with academic components..."

इन परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि पाठ्यक्रम केवल विद्यालय शिक्षण विषयों तक ही सीमित नहीं होता है अपितु विद्यालय में नियोजित एवं सम्पादित सभी क्रियाओं को सम्मिलित किया जाता है जो बालक के विकास में सहायक होते हैं। पाठ्यक्रम से सम्पूर्ण क्रियाओं एवं अनुभवों को सम्मिलित किया जाता है जो बालक में अपेक्षित व्यवहार परिवर्तन में सहायक होता है। विद्यालय का सम्पूर्ण जीवन ही पाठ्यक्रम है। इसमें वे सभी सम्मिलित हैं जिनको छात्र विद्यालय, कक्षा, पस्तकालय, प्रयोगशाला, कार्यशाला और खेल के मैदान तथा शिक्षकों और छात्रों के अनगिनत अनौपचारिक सम्पर्कों से प्राप्त करता है।

1.2 उद्देश्य

शिक्षा प्रक्रिया के तीन प्रमुख घटक होते हैं।

अ. शिक्षक

ब. शिक्षार्थी

द. पाठ्यक्रम

शिक्षण में शिक्षक तथा छात्र के मध्य अन्तःक्रिया पाठ्यक्रम के माध्यम से होती है। इस प्रकार पाठ्यक्रम शिक्षण की क्रियाओं को दिशा प्रदान करते हैं। इन तीनों घटकों के पारस्परिक अन्तःक्रिया द्वारा बालक का विकास किया जाता है। शिक्षण में तीन घटकों का विशेष महत्व होता है। इस प्रकार पाठ्यक्रम के प्रमुख उद्देश्य इस प्रकार हैं-

i. पाठ्यक्रम बालक के सम्पूर्ण विकास हेतु साधन प्रदान करता है, जिसकी सहायता से शिक्षण की क्रिया को सम्पादित किया जाता है।
ii. पाठ्यक्रम को बालक में मित्रता, ईमानदारी, निष्कपटता, सहयोग, सहनशीलता, सहानुभूति एवं अनुशासन आदि गुणों को विकसित करके नैतिक चरित्र का निर्माण करना।
iii. पाठ्यक्रम को बालक की चिन्तन, मनन, तर्क तथा विवेक एवं निर्णय आदि सभी मानसिक शक्तियों का विकास करना।
iv. पाठ्यक्रम को बालक के विकास की विभिन्न अवस्थाओं से सम्बन्धित सभी आवश्यकताओं, मनोवृत्तियों तथा क्षमताओं एवं योग्यताओं के अनुसार नाना प्रकार की सृजनात्मक एवं रचनात्मक शक्तियों का विकास करना।
v. पाठ्यक्रम को ज्ञान तथा खोज की सीमाओं को बढ़ाने के लिए अन्वेषकों का सृजन करना।
vi. पाठ्यक्रम को बालक में जनतन्त्रीय भावना का विकास करना।
vii. पाठ्यक्रम शिक्षण क्रियाओं तथा शिक्षक तथा छात्र के मध्य अन्तःप्रक्रिया के स्वरूप निर्धारित करना।

पाठ्यक्रम के मूल 'तत्व'

शिक्षा की प्रक्रिया का सम्पादन शिक्षक द्वारा किया जाता है। शिक्षक अपनी क्रियाओं का नियोजन कक्षा शिक्षण के लिए करता है उसके प्रमुख तीन तत्व होते हैं - **उद्देश्य, पाठ्यवस्तु एवं शिक्षण विधियाँ।**

पाठ्यक्रम विकास में पाठ्यवस्तु तथा शिक्षण विधियों को महत्व दिया जाता है। पाठ्यवस्तु तथा शिक्षण विधियों का नियोजन उद्देश्यों की दृष्टि से किया जाता है। एक पाठ्यवस्तु से कई उद्देश्य प्राप्त किए जा सकते हैं। परन्तु अधिगम-अवसरों एवं परिस्थितियों उद्देश्यों के स्वरूप को सुनिश्चित करते हैं। विशिष्ट उद्देश्यों हेतु विशिष्ट अधिगम-परिस्थितियों का नियोजन किया जाता है। शिक्षण तथा अधिगम क्रियाएँ पाठ्यक्रम के ही प्रमुख तत्व माने जाते हैं। इस प्रकार पाठ्यक्रम के चार मूल तत्व माने जाते हैं -

i. **उद्देश्य**- पाठ्यवस्तु, शिक्षण विधियों तथा परीक्षणों का नियोजन उद्देश्यों की दृष्टि से किया जाता है। अधिगम परिस्थितियों के स्वरूप से उन्हें प्राप्त करते हैं।
ii. **पाठ्यवस्तु**- पाठ्यवस्तु का स्वरूप अधिक व्यापक होता है। अधिगम-परिस्थतियाँ उसके स्वरूप को सुनिश्चित करती हैं।
iii. **शिक्षण विधियाँ**- उपयुक्त शब्द शिक्षण आव्यूह का चयन उद्देश्यों की प्राप्ति से की जा सकती है। शिक्षण विधियों का सम्बन्ध पाठ्यवस्तु से होता है। शिक्षण आव्यूह अधिगम-परिस्थितियों को उत्पन्न करती है जिससे छात्रों में अपेक्षित व्यवहार परिवर्तन किए जाते हैं।
iv. **मूल्यांकन**- परीक्षा द्वारा पाठ्यवस्तु तथा शिक्षण-विधियों की उपादेयता के सम्बन्ध में जानकारी होती है और जो पाठ्यवस्तु के स्वयप को सुनिश्चित करते हैं।

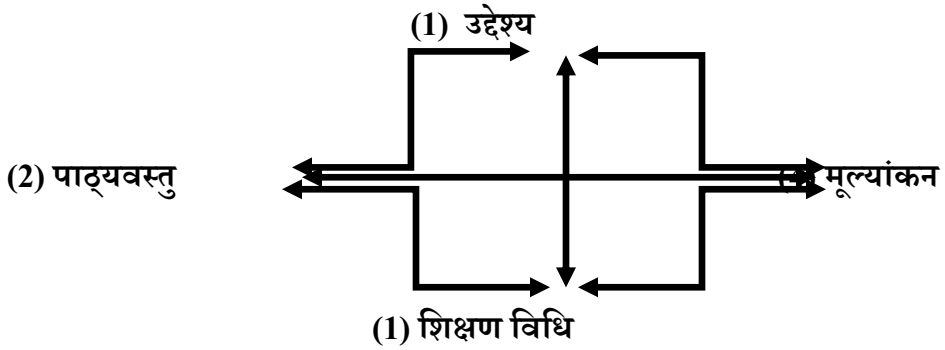

पाठक्रम के मूल तत्वों में सम्बन्ध

पाठ्यक्रम का क्षेत्र

पाठ्यक्रम के द्वारा ही शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति की जाती है। अतः शिक्षा नियोजन के लिए पाठ्यक्रम आवश्यक है। इसकी उपयोगिता अधोलिखित है -

1) **शिक्षा के उद्देश्य की प्राप्ति-** शिक्षा की व्यवस्था पाठ्यक्रम पर आधारित होती है। जब तक पाठ्यक्रम का सही नियोजन नहीं किया जाता तब तक शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति नहीं हो सकती क्योंकि पाठ्यक्रम का स्वरूप शिक्षा के उद्देश्यों के अनुसार निर्मित होता है।
2) **शिक्षा प्रक्रिया का व्यवस्थीकरण-** पाठ्यक्रम एक ऐसा लेखा जोखा है जिससे यह स्पष्ट होता है कि शिक्षा के किस जीवन स्तर पर विद्यालयों में कौन-सी क्रियाओं की तथा कौन से विषयों की

शिखा दी जाएगी। इस प्रकार पाठ्यक्रम विद्यालयी कार्यक्रम की रूप रेखा बनाता है अथवा शिक्षा की प्रक्रिया को व्यवस्थित करता है।

3) **समय एवं शक्ति का प्रयोग-** पाठ्यक्रम से अध्यापकों को यह ज्ञात रहता है कि उन्हें क्या सिखाना है और कितने समय में सिखाना है? इसी प्रकार छात्रों को भी यह ज्ञान रहता है कि उन्हें क्या सीखना है और कितने समय तक सीखना है। इस प्रकार शिक्षक और छात्र दोनों एक समय के अन्दर कार्य पूरा करते हैं। अतः इसके द्वारा समय एवं शक्ति का सदुपयोग होता है।
4) **ज्ञानोपार्जन-** ज्ञानोपार्जन करने में पाठ्यक्रम बालकों की सहायता करता है। यह सही है कि ज्ञान एक है, परन्तु मनुष्य ने अपनी सुविधा के लिए उसके कई भाग कर लिए हैं। जैसे - साहित्य, गणित, विज्ञान इत्यादि। ज्ञान के इन विभिन्न भागों के ज्ञानार्थ पाठ्यक्रम की रचना की जाती है।
5) **चारित्रिक विकास-** चारित्रिक विकास की दृष्टि से शिक्षा इस बात पर बल देती है कि बालकों के अन्दर मानवीय गुण जैसे - सत्य, सेवा, त्याग, परोपकार, सद्भावना इत्यादि उत्पन्न किए जाएँ। यह कार्य पाठ्यक्रम के द्वारा ही पूर्ण होता है। इन गुणों को विकसित करके इन्हीं के अनुसार बालकों से आचरण करवाना पाठ्यक्रम का उद्देश्य है।
6) **पाठ्यपुस्तकों का निर्माण-** पाठ्यक्रम के आधार पर ही पाठ्यपुस्तकों की रचना की जाती है। पाठ्यपुस्तकों में वही सामग्री रखी जाती है जो किसी स्तर के पाठ्यक्रम के अनुकूल हो।
7) **मूल्यांकन में सरलता-** किसी कक्षा स्तर के पाठ्यक्रम के आधार पर ही उस कक्षा के छात्रों की योज्ञता का मूल्यांकन संभव होता है।

1.3 पाठ्यक्रम, पाठ्यचर्या एवं पाठ्यसामग्री के मध्य संबंध की समझ

पूर्वकाल में पाठ्यक्रम के विधिवत् निर्माण पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया जाता था। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में पाठ्यक्रम की नवीन संकल्पना का विकास हुआ। पाठ्यक्रम, पाठ्यचर्या एवं पाठ्यवस्तु का संबंध शिक्षा के औपचारिक माध्यम से है।

1.3.1 पाठ्यक्रम और पाठ्यचर्या के मध्य समझ

पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम के लिए प्रचलित शब्दों में अपेक्षाकृत नया शब्द है। इसका प्रयोग पाठ्यक्रम के क्रमबद्ध, स्पष्ट, विषयवार एवं विस्तृत स्वरूप के लिए किया जाता है।

पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम के उस पक्ष को कहा जाता है जिसे कक्षा में प्रयोग हेतु व्यवस्थित किया जाता है। इसमें अन्तर्वस्तु के अतिरिक्त शिक्षकों, छात्रों तथा प्रकाशकों के उपयोगार्थ सहायक सामग्री एवं कार्य-विधि आदि के निर्देश भी सम्मिलित होते हैं।

गुड के शिक्षा-शब्द-कोष के अनुसार पाठ्यचर्या एक कार्यालयी संदर्शिका होती है, जो किसी कक्षा को किसी विषय के शिक्षण में सहायता के लिए किसी विद्यालय विशेष अथवा व्यवस्था के लिए तैयार की

जाती है। इसके अन्तर्गत पाठ्यक्रम के लक्ष्य, अपेक्षित परिणाम, अध्ययन सामग्री की प्रकृति एवं विस्तार तथा उपयुक्त सहायक सामग्री तथा पाठ्य-पुस्तकों के साथ-साथ अनुपूरक पुस्तकों, शिक्षण विधियों, सहगामी क्रियाओं तथा उपलब्धि मापन के सुझाव भी सम्मिलित किए जाते हैं।

हालाँकि पाठ्यचर्या विशेषज्ञों ने पाठ्यचर्या की संकल्पना को स्पष्ट करने के लिए इसके सीमांकन के प्रयास किए, किन्तु अभी तक इसकी एक सर्वसम्मत परिभाषा नहीं बन सकी। प्रायः पाठ्यचर्या विशेषज्ञ पाठ्यचर्या शब्द का उपयोग दो प्रकार से करते हैं -

1) शिक्षार्थियों की शिक्षा को दर्शाने के लिए एक योजना, एवं
2) अध्ययन क्षेत्र की पहचान के लिए।

1.3.2 पाठ्यक्रम और पाठ्यसामग्री के मध्य समझ

पाठ्यक्रम के लिए क्यूरिकूलम (Curriculum) के साथ-साथ 'सिलेबस' तथा 'कोर्स आफ स्टडी'(Course of Study) शब्दों को भी प्रयुक्त किया जाता है, किन्तु इन तीनों में अन्तर है। पाठ्यक्रम के अन्दर पाठ्यवस्तु को सम्मिलित किया जाता है। पाठ्यवस्तु से तात्पर्य होता है शिक्षण विधि की रूपरेखा जो किसी स्वयं के लिए निर्धारित की गई है। इसके अंतर्गत किसी विषयवस्तु का विवरण शिक्षण के लिए तैयार किया जाता है, जिसे शिक्षक छात्रों को पढ़ाता है।

पाठ्यक्रम और पाठ्यवस्तु के अन्तर को एक विद्वान ने भिन्न दृष्टि से प्रस्तुत किया है । उनके अनुसार पाठ्यवस्तु पुरे शैक्षिक सत्र में विभिन्न विषयों में शिक्षक द्वारा छात्रों को दिये जाने वाले ज्ञान की मात्रा के विषय में निश्चित जानकारी प्रस्तुत करता है जबकि पाठ्यक्रम यह प्रस्तुत करता है कि शिक्षक किस प्रकार की शैक्षिक क्रियाओं द्वारा पाठ्य-वस्तु की आवश्यकताओं की पूर्ति करेगा। दूसरे शब्दों में पाठ्यवस्तु शिक्षण की विषयवस्तु का निर्धारण करता है। तथा पाठ्यक्रम उसे देने के लिए प्रयुक्त विधि का।''

Henry Harrap के अनुसार ''पाठ्यवस्तु केवल मुद्रित संदर्शिका है जो यह बताती है कि छात्र को क्या सीखना है? पाठ्यवस्तु की तैयारी पाठ्यक्रम विकास के कार्य का एक तर्क-सम्मत सोपान है।''

UNESCO के एक प्रकाशन ''Preparing Textbook Manuscripts'' में पाठ्यक्रम एवं पाठ्यपुस्तक एवं पाठ्यवस्तु के अन्तर को इस प्रकार प्रस्तुत किया है -

''पाठ्यक्रम अध्ययन हेतु विषयों, उनकी व्यवस्था एवं क्रम का निर्धारण करता है और इस प्रकार एक सीमा तक मानविकी एवं विज्ञान में संतुलन तथा अध्ययन विषयों में एकरूपता सुनिश्चित करता है, जिससे विषयों में अन्तर्सम्बन्ध स्थापित करने में सुविधा होती है। पाठ्यवस्तु किसी पाठ्य-विषय के अधिगम के एक स्तर विशेष पर पाठ्यक्रम का एक परिष्कृत एवं विस्तृत रूप होता है।''

इस प्रकार पाठ्य-वस्तु का सम्बन्ध ज्ञानात्मक पक्ष के विकास से होता है परन्तु पाठ्यक्रम का सम्बन्ध बालक के सम्पूर्ण विकास से होता है। जिसके अन्तर्गत ज्ञानात्मक, भावात्मक, क्रियात्मक,

शारीरिक एवं सामाजिक विकास को सम्मिलित किया जाता है। विद्यालय के अंतर्गत शिक्षण क्रियाओं का सम्बन्ध ज्ञानात्मक पक्ष से होता है। खेल-कूद तथा शारीरिक प्रशिक्षण का सम्बन्ध शारीरिक विकास से होता है। सांस्कृतिक कार्यक्रम तथा राष्ट्रीय पर्वों पर जिन कार्यक्रमों का आयोजन होता है उनसे सांस्कृतिक एवं सामाजिक गुणों का विकास होता है। इसके अतिरिक्त स्काउटिंग तथा एनसीसी के आयोजन से नेतृत्व के गुणों का विकास होता है। इस प्रकार पाठ्यक्रम का स्वरूप अधिक व्यापक होता है जबकि पाठ्यवस्तु का स्वरूप सुनिश्चित होता है।

1.3.3 पाठ्यचर्या और पाठ्यसामग्री के मध्य समझ

प्रायः 'पाठ्यचर्या' विशेषज्ञ पाठ्यचर्या शब्द का उपयोग दो प्रकार से करते हैं -

(i) शिक्षार्थियों की शिक्षा को दर्शाने के लिए एक योजना।
(ii) शिक्षार्थियों की शिक्षा को दर्शाने के लिए एक योजना।

पाठ्यचर्या को परिभाषित करते हुए विद्वानों ने इसकी संकल्पना को विभिन्न दृष्टिकोणों से देखा है। इसी आधार पर उन्होंने पाठ्यचर्या की विभिन्न परिभाषाएँ भी दी हैं।

a) **अध्ययन कार्यक्रम के रूप में पाठ्यचर्या-** यदि किसी व्यक्ति से किसी विद्यालय की पाठ्यचर्या का वर्णन करने को कहा जाये, तो वह विद्यालय में पढाये जाने वाले विषयो को बताएगा । उसका उत्तर हो सकता है अंग्रेजी, गणित, इतिहास, अर्थशास्त्र। इससे अधिक विशिष्ट उत्तर के रूप में वह अध्ययन के पाठ्यक्रमों के शीर्षक जैसे- यूरोपीय, इतिहास, बीजगणित, त्रिकोणमिति इत्यादि बता सकता है । इन शीर्षकों के द्वारा हमें अधिगम परिणामों से सम्बन्धित अल्प सूचना ही प्राप्त होती है। इन्हीं कारणों से पाठ्यचर्या क्षेत्र के विशेषज्ञ विद्यालयीन विषयों और पाठ्यक्रमों के लिए पाठ्यचर्या के स्थान पर अध्ययन कार्यक्रम का उपयोग करते है ।
b) **पाठ्यक्रम की विषयवस्तु के रूप में पाठ्यचर्या-** किसी विषय के पाठ्यक्रम को भी पाठ्यचर्या कहा जाता है। उदाहरण के लिए यदि किसी से हिन्दी की पाठ्यचर्या बताने को कहा जाता है, तब उसका पाठ्यक्रम ही बताता है। इसके अनुसार पाठ्यचर्या निर्देशिका अथवा पाठ्य-पुस्तक में अंकित प्रदत्त एवं सूचनाएं हैं।

औपचारिक शिक्षा में पाठ्य सामग्रियों का उपयोग अध्यापन के उपकरण के रूप में किया जाता है। पाठ्य सामग्री के वाहन है, जिनके द्वारा इच्छित अधिगम का संगठन एवं संरचना अध्यापक से अध्यापक को एवं अध्यापक से छात्र को सम्प्रेषित की जाती है। कार्य संरचना के रूप में अनुरोध के क्षेत्र में संगठन दस्तावेज है। पाठ्यसामग्री के अनेक रूप एवं आकार हो सकते हैं। यह एक पृष्ठ का पाठ्यक्रम विवरण हो सकता है, जो निश्चित समय में जैसे एक वर्ष अथवा सेमेस्टर में चलने वाले पाठ्यक्रम का वर्णन कर सकता है। यह दीर्घ दस्तावेज भी हो सकता है, जिसमें विषय सामग्री का पूर्ण विस्तार एवं संगठन हो तथा इसके कक्षा में क्रियान्वयन का तरीका भी दिया जा सकता है। पाठ्यसामग्री एक पृष्ठ से तीन सौ पृष्ठ तक का हो सकता है,

किन्तु इसका मुख्य सम्बन्ध ज्ञान के प्रसारण से ही होता है। यह पाठ्यचर्या विकास का एक महत्वपूर्ण अंग होता है।

अध्यापकों को पाठ्य-सामग्री के कार्य सम्पादन में उन्मुख किया जाता है। पाठ्य-सामग्री अध्यापकों को विद्यार्थी अधिगम में ज्यादा प्रभाविता प्राप्त करने के लिए सहायता करता है। पाठ्यसामग्री में आवश्यक सामग्रियों की सूची होनी चाहिए, जिन्हें प्राप्त कर पाठ्यचर्या में क्रियान्वित किया जाना चाहिए। कुछ पाठ्यसामग्री कार्य-सम्पादन का तरीका अनुदेशन योजना के रूप में प्रदान करते हैं, जो निम्न क्रम में होता है -

(अ) प्रत्येक इकाई किसके बारे में है;

(ब) प्रत्येक इकाई का वांछित अभिप्राय अथवा अधिगम परिणाम क्या है;

(स) इच्छित अधिगम परिणामों को प्राप्त करने के लिए सामान्य प्रस्तावित और अध्यापन व्यूह रचना।

1.14 पाठ्यक्रम निर्माण की प्रक्रिया की समझ

पाठ्यक्रम के प्रत्यय का अध्ययन करने से विदित होता है कि पाठ्यक्रम के अनेक आधार, अनेक प्रतिमान, अनेक आयाम, अनेक सिद्धान्त तथा अनेक नियम हैं। क्योंकि शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है इसलिए सामाजिक भिन्नता को ध्यान में रखकर पाठ्यक्रम का स्वरूप विकसित किया जाता है। पाठ्यक्रम का प्रकरण तथा प्रत्यय अधिक जटिल प्रतीत होता है। पाठ्यक्रम के मूल तत्वों के आपसी सम्बन्ध के स्वरूप में विविधता होती है। परन्तु इन मूल तत्वों-उद्देश्यों, पाठ्यवस्तु, शिक्षण विधियाँ तथा मूल्यांकन के सम्बन्ध के विशिष्ट स्वरूप के आधार पर पाठ्यक्रम का निर्माण किया जा सकता है। इन तत्वों को चक्रीय क्रियाओं के रूप में निरन्तर प्रयोग किया जाता है जिससे पाठ्यक्रम द्वारा समाज व राष्ट्र की भावी आवश्यकताओं के लिए नागरिकों को शिक्षा द्वारा तैयार कर सके।

1.14.1पाठ्यक्रम निर्माण

श्री के.जी. सैयदन के शब्दों में पाठ्यक्रम सुनिश्चित जीवन का दर्पण है। ड्यूवी के अनुसार पाठ्यक्रम केवल अध्ययन की योजना या विषयवस्तु ही नहीं बल्कि कार्य और अनुभव की सम्पूर्ण श्रृंखला है।

किसी समाज के लिए शिक्षा के पाठ्यक्रम का निर्धारण करने के लिए दार्शनिक विचार-धारा, सामाजिक मूल्यों, विश्वासों एवं परम्पराओं, मनोवैज्ञानिक एवं वैज्ञानिक प्रवृत्तियों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। पाठ्यक्रम के निर्माण में इनके प्रभावों को सिद्धान्तों के रूप में बाँध दिया गया है। इस प्रकार पाठ्यक्रम निर्माण में दार्शनिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक एवं वैज्ञानिक प्रवृत्तियों के महत्व के आधार पर सिद्धान्तों का अनुसरण किया जाना चाहिए।

1.14.2 पाठ्यक्रम निर्माण की प्रक्रिया

पाठ्यक्रम निर्माण में निम्नलिखित पाँच सोपानों का अनुसरण किया जाता है-

1. प्रथम सोपान - परिस्थितियों का विश्लेषण करना।
2. द्वितीय सोपान - उद्देश्यों की पहचान तथा उनका चयन करना।
3. तृतीय सोपान - पाठ्यवस्तु का चयन एवं व्यवस्था करना।
4. चतुथ सोपान - शिक्षण विधियों का चयन एवं उनकी व्यवस्था करना।
5. पंचम सोपान - परीक्षण एवं मूल्यांकन विधि का निर्धारण करना।

A. **प्रथम सोपान- परिस्थितियों का विश्लेषण करना।**(Analysis of the Situation)पाठ्यक्रम निर्माण करना ऐसी प्रक्रिया नहीं है जिसको एक बार सम्पन्न करने के बाद समाप्त हो जाती है अपितु इसमें निरन्तर परिवर्तन करना आवश्यक होता है। इस प्रकार पाठ्यक्रम निर्माण एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया का स्वरूप चक्रिय है अर्थात् इसका अन्त नहीं होता है। पाठ्यक्रम के निर्माण के बाद जब से लागू किया जाता है तब छात्रों के मूल्यांकन तथा परीक्षण से ज्ञात होता है कि अभी किसी प्रकार के सुधार की आवश्यकता है। पाठ्यक्रम निर्माण की प्रक्रिया सर्जनात्मक होती है जिसमें तार्किक एवं अनुभवजन्य दोनों प्रकार के चिन्तन की आवश्यकता होती है।

इस सोपान की क्रियाओं को प्रमुख रूप से दो परिस्थितियों में विभाजित करते हैं - (1) आन्तरिक परिस्थितियाँ तथा (2) बाह्य परिस्थितियाँ।

1. **आन्तरिक परिस्थितियाँ-** आन्तरिक परिस्थितियाँ का सम्बन्ध उन सभी घटकों तथा क्रियाओं से होता है जिनका प्रयोग पाठ्यक्रम निर्माण में किया जाता है। आन्तरिक परिस्थितियों के विश्लेषण में शिक्षक, छात्र, विद्यालय का वातावरण तथा विद्यालय भवन एवं पाठ्यवस्तु सहगामी क्रियाओं के लिए साधन उपलब्धता को भी ध्यान में रखना होता है। आन्तरिक परिस्थितियों के लिए प्रधानाचार्य की भूमिका अधिक महत्वपूर्ण होती है। प्राचार्य के व्यक्तित्व और उसकी कार्य शैली का विद्यालय वातावरण पर सीधा प्रभाव पड़ता है जबकि शिक्षक के व्यक्तित्व एवं कार्य-शैली का प्रभाव उसके कक्षा के छात्रों एवं कक्षा वातावरण तक सीमित रहता है। परिस्थिति विश्लेषण में इन बातों का ध्यान रखना होता है।

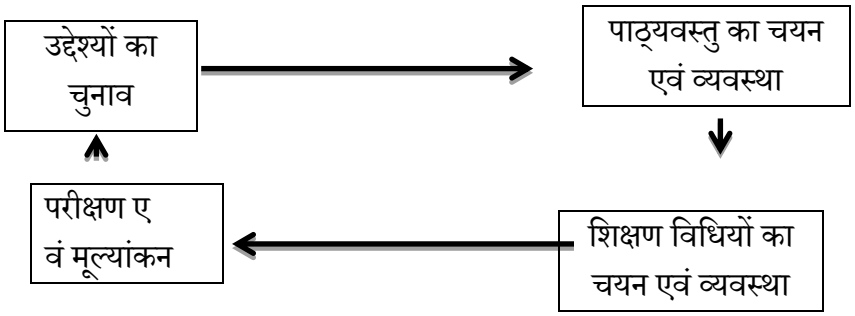

आन्तरिक परिस्थितियों का विश्लेषण

2. **बाह्य परिस्थितियों के अन्तर्गत** – सामाजिक परिवर्तन, राजनैतिक परिवर्तन, आर्थिक परिवर्तन तथा सत्ता परिवर्तन को सम्मिलित किया जाता है। पाठ्यक्रम के निर्माण के समय सामाजिक परिवर्तन को ध्यान में रखकर उद्देश्यों को बदला जाता है क्योंकि परिवर्तन के साथ सामाजिक आवश्यकतायें भी बदल जाती हैं। राजनैतिक परिवर्तन या सत्ता परिवर्तन से देश की नीतियों में परिवर्तन आना स्वाभाविक होता है। जब प्रदेश या राष्ट्रीय स्तर पर सत्ता परिवर्तन हो जाता है तब सभी नीतियाँ भी बदलती हैं परिणामस्वरूप शिक्षा का रूप भी बदलता है।

A. द्वितीय सोपान - उद्देश्यों को पहचानना तथा उनका चयन करना (Identification and Selection of Objectives)

पाठ्यक्रम निर्माण का द्वितीय सोपान - उद्देश्यों का चयन करना है। शिक्षा तथा पाठ्यक्रम निर्माण उद्देश्य एक ही होते हैं। अतः शिक्षा के लिए उद्देश्यों को पहचानने का अर्थ होता है अपेक्षित उद्देश्यों का प्रतिपादन करना। उद्देश्यों के प्रतिपादन में कई स्रोतों का उपयोग किया जाता है। इसके प्रमुख स्रोत इस प्रकार हैं -

अ. परिस्थिति विश्लेषण के आन्तरिक तथा बाह्य घटकों की पहचान करना।

ब. शिक्षा के दार्शनिक, सामाजिक, आर्थिक राजनैतिक आधार।

स. छात्रों के विकास की अवस्थाओं की आवश्यकता।

द. राष्ट्र के भावी नागरिकों के कौशल एवं क्षमताओं का स्वरूप।

शिक्षा के द्वारा बालक के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास किया जाता है। परन्तु विकास दिशा का निर्धारण उपरोक्त स्रोतों से किया जाता है। सम्पूर्ण व्यक्तित्व के विकास के प्रमुख पक्ष इस प्रकार हैं -

i. ज्ञानात्मक विकास
ii. भावात्मक अथवा संवेगात्मक विकास
iii. क्रियात्मक अथवा कौशलों का विकास
iv. सामाजिक विकास
v. शारीरिक विकास

इन उद्देश्यों का स्वरूप अधिक व्यापक तथा वृहद होता है। शिक्षा द्वारा माध्यमिक कक्षा से विश्वविद्यालयों की शिक्षा तक इन्हीं पक्षों के विकास का प्रयास किया जाता है। इनके आधार पर शिक्षा के पाँच उद्देश्य होते हैं।

शिक्षा के उद्देश्य-

a. ज्ञानात्मक उद्देश्य
b. भावात्मक अथवा संवेगात्मक उद्देश्य
c. क्रियात्मक उद्देश्य
d. सामाजिक उद्देश्य
e. शारीरिक विकास का उद्देश्य

पाठ्यक्रम का प्रारूप विशिष्ट होत है जिसका निर्माण विशेष स्तर के छात्रों के लिए विशिष्ट सामाजिक संदर्भ के लिए किया जाता है । इसके लिए आवश्यक होता है इन उद्देश्यों का चयन करके व्यवहारिक रूप में लिखा जाए जिसे विशिष्ट उद्देश्य कहते है । इन विशिष्ट उद्देश्य के लिए पाठ्यवस्तु के स्वरुप का निर्धारण विशिष्ट उद्देस्यों तथा विशिष्ट अधिगम परिस्थिति के आधार पर किया जा सकता है । यह प्रक्रिया त्रिपदी होती है ।

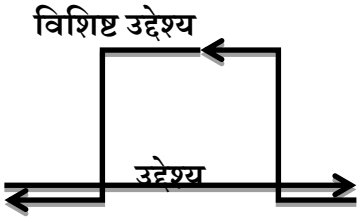

विशिष्ट **पाठ्यवस्तु**
विशिष्ट अधिगम परिस्थिति

B. तृतीय सोपान-पाठ्यवस्तु का चयन एवं उसकी व्याख्या (Selection and Organization of the Content)

पाठ्यवस्तु का चयन पाठ्यक्रम निर्माण का सबसे महत्वपूर्ण सोपान है। आरम्भ में पाठ्यवस्तु को ही प्राथमिकता दी जाती रही है, परन्तु अब भी इसका महत्व कम नहीं है। पाठ्यवस्तु-केन्द्रित पाठ्यक्रम के निर्माण में इसी सोपान को विशेष महत्व दिया जाता है।

पाठ्यवस्तु की व्यवस्था एवं अर्थापन ज्ञान, कौशल, अभिवृत्ति तथा मूल्यों के माप में किया जाता है। इसकी व्यवस्था विद्यालय में पाठ्यक्रम के आधार पर की जाती है। विषयवस्तुओं के मूल्यों के सम्बन्ध में अलग-अलग विचार हैं। यहाँ मूल्यों के आन्तरिक तथा बाह्य रूप में समझने का प्रयास करते हैं। मूल्य सीखने के बजाय व्यवहारिक अधिक होते हैं। जीवन-यापन से व्यक्ति मूल्यों के सम्बन्ध में जानकारी होती है। अधिकांश विद्वानों का मत है कि पाठ्यवस्तु- मानसिक योग्यताओं, कौशलों, अभिवृत्तियों, अभिरूचियों तथा मूल्यों के विकास का साधन है।

पाठ्यवस्तु के स्वरूप के चयन एवं व्यवस्था में अधोलिखित तथ्यों को ध्यान में रखा जाता है -

i. छात्रों की अभिरूचियों एवं आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके।

ii. पाठ्यवस्तु का स्वरूप छात्रों के पूर्व सीखे हुए ज्ञान से सम्बन्धित हो।
iii. पाठ्यवस्तु का स्वरूप छात्रों की क्षमताओं एवं योग्यताओं के अनुरूप हो।
iv. छात्रों के व्यक्तिगत भिन्नता को भी ध्यान में रखा जाए।
v. पाठ्यवस्तु का स्वरूप शुद्ध तथा स्पष्ट हो।

पाठ्यवस्तु के स्वरूप के निर्धारण के लिए विषय-समितियों का गठन किया जाए उनमें अनुभवी शिक्षकों को ही सम्मिलित किया जाए। पाठ्यवस्तु अथवा विषयवस्तु के स्वरूप का चयन करते समय परीक्षण तथा मूल्यांकन विधि को भी ध्यान में रखना चाहिए। शिक्षण तथा परीक्षण में पाठ्यवस्तु के स्वरूप के द्वारा सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। पाठ्यक्रम के निर्माण में परीक्षण प्रणाली को ध्यान में रखना होता है। पाठ्यक्रम का प्रारूप, परीक्षण प्रणाली के अनुरूप होना चाहिए।

C. चतुर्थ सोपान - शिक्षण विधियों का चयन तथा व्यवस्था करना (Selection and Organization of Teaching Method)

पाठ्यवस्तु तथा शिक्षण विधियों को अलग करना बहुत ही कठिन होता है क्योंकि एक समाप्त होता है दूसरा आरम्भ होता है। शिक्षण विधि का चयन पाठ्यवस्तु के स्वरूप के आधार पर किया जाता है। शिक्षण में छात्र और शिक्षक के मध्य अन्तःप्रक्रिया पाठ्यवस्तु तथा शिक्षण विधि की सहायता से होती है। अधिगम परिस्थितियों तथा अवसरों में पाठ्यवस्तु तथा विधि एक साथ होती है। इस प्रकार अधिगम परिस्थितियों के लिए छात्र, शिक्षक, पाठ्यवस्तु, सहायक सामग्री तथा वातावरण में सम्बन्ध के लिए नियोजन किया जाता है। पाठ्यवस्तु का जिस ढंग से प्रस्तुतीकरण किया जाता है उसे शिक्षण विधि कहते हैं।

पाठ्यक्रम के निर्माण में पाठ्यवस्तु तथा शिक्षण विधियाँ प्रमुख होते हैं। इसके अतिरिक्त शिक्षक तथा विद्यालय की प्रभावशीलता के लिए शिक्षण विधियाँ भी महत्व रखती हैं। परन्तु यह निर्णय लेना कठिन होता है कि कौन-सी लिपि अधिक प्रभावशाली तथा उपयुक्त है क्योंकि प्रभावशीलता का मानदण्ड छात्र का सीखना है। प्रत्येक छात्र के सीखने तथा सोचने का ढंग अलग-अलग होता है। इसलिए शिक्षण विधि की उपयुक्तता छात्रों की दृष्टि से देखनी होती है। आगमन तथा निगमन विधियाँ अधिक प्राचीन हैं परन्तु किन छात्रों के लिए आगमन और किन छात्रों के लिए निगमन विधि उपयुक्त होगी यह कहना कठिन होगा।

पाठ्यवस्तु की प्रकृति एवं स्वरूप उद्देश्यों, शिक्षण विधियों, आव्यूहों तथा माध्यमों को प्रभावित करती हैं। इस क्षेत्र में शोध कार्यों की अधिक आवश्यकता है तभी किसी ठोस बात को कहा जा सकता है। प्राथमिक स्तर पर अक्षर ज्ञान के लिए, 'कन्डीशनिंग विधि' को प्रयुक्त करते हैं जिसमें अक्षर की ध्वनि को महत्व देते हैं।

D. पंचम सोपान - परीक्षण तथा मूल्यांकन प्रणाली विधि का निर्धारण करना (Assement and Evaluation System)

पाठ्यक्रम निर्माण का यह महत्वपूर्ण तथा अन्तिम सोपान है। इसके अन्तर्गत छात्रों की उपलब्धियों तथा व्यवहार परिवर्तन (सीखे हुए अनुभवों) का मूल्यांकन किया जाता है जिससे अधिगम-परिस्थितियों तथा अवसरों की प्रभावशीलता का बोध होता है। पाठ्यक्रम के स्वरूप की उपयुक्तता की भी जाँच होती है। विद्यालय के वातावरण एवं शैक्षिक क्रियाओं की प्रभावशीलता एवं सार्थकता का बोध होता है। इस सोपान के कई कार्य हैं –

i. शिक्षण व छात्रों को पुनर्बलन मिलता है।
ii. अधिगम-अवसरों के सुधार के लिए दिशा मिलती है।
iii. उद्देश्यों की प्राप्ति किस स्तर तक हुई इसकी जानकारी होती है।

डेवीज ने इस सोपान को नियंत्रण (Controlling) की संज्ञा दी है जो आज के संदर्भ में अधिक उपयुक्त है।

पाठ्यक्रम के प्रारूप से बालकों के सम्पूर्ण विकास का प्रयास किया जाता है परन्तु परीक्षण में आज भी बालकों के ज्ञानात्मक पक्षों के विकास का ही परीक्षण किया जाता है। सम्पूर्ण अधिगम परिस्थितियों तथा अवसरों का मूल्यांकन नहीं होता है। बी.एस. ब्लूम ने परीक्षा प्रणाली में सुधार हेतु यही सुझाव दिया था कि बालक के सम्पूर्ण व्यवहार परिवर्तनों (ज्ञानात्मक, भावात्मक तथा क्रियात्मक) का मूल्यांकन किया जाना चाहिए। आज की परीक्षा प्रणाली का स्वरूप ऐसा है जो छात्रों को रटने के लिए बाध्य करता है। जो छात्र तथ्यों को रट लेता है वह अच्छे अंक प्राप्त कर लेता है। परीक्षा में नकल करने का अधिक अवसर होता है। साधारणतः निबन्धात्मक परीक्षाओं का ही प्रयोग किया जाता है। यह परीक्षा प्रणाली दोषपूर्ण है फिर भी सभी स्तरों के परीक्षण में निबन्धात्मक परीक्षा का प्रयोग होता है। चयन परीक्षाओं में अब वस्तुनिष्ठ परीक्षण का प्रयोग किया जाने लगा है। इनका स्वरूप निष्पत्ति परीक्षा का ही है जबकि उद्देश्य-केन्द्रित होना चाहिए और इनका स्वरूप मानदण्ड परीक्षा का होना चाहिए।

1.14.3 पाठ्यक्रम निर्माण की प्रक्रिया के सिद्धांत

i. **लचीलेपन एवं व्यक्तिगत विभिन्नता का सिद्धान्त** पाठ्यक्रम में विभिन्नता और लोच होना चाहिए। इसमें बालकों की रूचियों एवं आवश्यकताओं की पूर्ति होनी चाहिए। पाठ्यक्रम में कठोरता होने से बालकों में असंतोष उत्पन्न होता है और उनका सामान्य विकास नहीं हो पाता है। जब से शिक्षा में मनोविज्ञान को स्थान प्राप्त हुआ है, तब से पाठ्यक्रम के निर्माण में बालकों में पाई जाने वाली व्यक्तिगत विभिन्नताओं पर ध्यान देना आवश्यक समझा जाने लगा है। मनोविज्ञान ने यह सिद्ध कर दिया है कि प्रत्येक बालक की रूचियाँ, आवश्यकताएँ, क्षमताएँ, योग्यताएँ, मनोवृत्तियाँ एवं बुद्धि एक-दूसरे से भिन्न होती हैं तथा उनका अपना विशिष्ट व्यक्तित्व

होता है। इसलिए सभी के लिए एक-समान पाठ्यक्रम की अवधारणा उपयुक्त नहीं है। अतः पाठ्यक्रम में विविधता एवं लचीलापन का होना अति आवश्यक है।

माध्यमिक शिक्षा आयोग के अनुसार ''व्यक्तिगत भिन्नताओं की दृष्टि से तथा आवश्यकताओं एवं रूचियों के अनुकूलन के लिए पाठ्यक्रम में पर्याप्त विविधता एवं लचीलापन होना चाहिए।"

ii. **सृजनात्मक एवं रचनात्मक शक्तियों के उपयोग का सिद्धान्त -** पाठ्यक्रम को निर्माण करते समय केवल मौखिक कार्य नहीं होना चाहिए बल्कि उसमें रचनात्मक कार्य अवश्य होना चाहिए। पाठ्यक्रम में रचनात्मक कार्य अवश्य होने से बालक क्रियाशील रहते हैं। इससे उनकी रचनात्मक योग्यता का उपयोग भी हो जाता है। अतः पाठ्यक्रम निर्माण में ऐसी विषय-वस्तु तथा क्रियाओं का समावेश होना चाहिए जो इन सृजनात्मक एवं रचनात्मक शक्तियों का विकास कर सकें। इससे बालक एक न एक सृजनात्मक उपलब्धि प्राप्त करने में समर्थ हो जाएगा जो उसके भावी जीवन के लिए आवश्यक है।

रेमाण्ट ने लिखा है - ''जो पाठ्यक्रम वर्तमान एवं भविष्य की आवश्यकताओं के लिए उपयुक्त है, उसमें निश्चित रूप से रचनात्मक विषयों के प्रति निश्चित सुझाव होना चाहिए।

iii. **जीवन से सम्बन्धित होने का सिद्धान्त -**शिक्षा का उद्देश्य जीवन को पूर्णता प्रदान करना है। अतः पाठ्यक्रम में जीवन से सम्बन्धित उन सभी क्रियाओं एवं अनुभवों को स्थान दिया जाना चाहिए जिससे बालक का सर्वांगीण विकास सुनिश्चित हो सके। इसके लिए पाठ्यक्रम का निर्माण करते समय ऐसे प्रयत्न किए जाने चाहिए कि उसमें वे सभी क्रियाएँ समाहित हो जाए जिनसे बालकों का सर्वांगीण अर्थात् शारीरिक, मानसिक, राजनीतिक, सामाजिक-चारित्रिक, आध्यात्मिक विकास सम्भव हो सके।

iv. **स्कृति एवं सभ्यता के ज्ञान का सिद्धान्त -**पाठ्यक्रम के निर्माण के समय इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि इसमें ऐसे विषयों, क्रियाओं तथा वस्तुओं का समावेश किया जाए, जिसके द्वारा बालक अपनी संस्कृति तथा सभ्यता का अच्छी तरह से ज्ञान कर सके। इस सम्बन्ध में **''हैण्डबुक आफ सजेशन्श फार टीचर्स'' "Handbook of suggestions for Teachers"** नामक पुस्तक में लिखा है - ''वर्तमान में यह तथ्य अधिकाधिक स्वीकार किया जा रहा है कि पाठ्यक्रम के विभिन्न विषयों में कुछ निपुणताओं के प्रतीक होते हैं, जो सम्पूर्ण जाति के अनुभव में महत्वपूर्ण सिद्ध हो जाती है और जिनकी शिक्षा देना प्रत्येक आने वाली पीढ़ी के लिए आवश्यक होता है। इस दृष्टि से पाठशाला का कर्तव्य है कि व्यवहार के उन परम्पराओं, ज्ञान एवं प्रमाणों का जिन पर हमारी सभ्यता आधारित है, रक्षा करें और उन्हें आगे बढ़ाए।"

v. **अग्रदर्शिता का सिद्धान्त -**पाठ्यक्रम में ऐसे विषय, क्रियाओं तथा वस्तुओं का समावेश किया जाए, जिनके द्वारा बालक जीवन में आगे आने वाली परिस्थितियों को अच्छी तरह समझ सके और सफल जीवन यापन के लिए उनसे अनुकूलीकरण कर सके।

इस सम्बन्ध में रायबर्न ने लिखा है - ''बालक जो कुछ शिक्षालय में सीखता है, उसके द्वारा उसे इस संसार की जीवन परिस्थितियों के संग अनुकूलीकरण के योग्य होना चाहिए, जो उसे आवश्यकता पड़ने पर परिस्थितियों में परिवर्तन करने योग्य भी बना सके।"

vi. **खेल और कार्य सम्बन्धी क्रियाओं के अन्तर्सम्बन्ध का सिद्धान्त** -खेल बालक की जन्मजात प्रवृत्ति है, जिसमें वह सुख, आनन्द तथा स्वतंत्रता की अनुभूति करता है। ऐसी स्थिति में पाठ्यक्रम के निर्माण में बालकों से जो भी कार्य कराने तथा सिखाने की योजना बनाई जाए उसमें बालकों की अपनी खेज प्रवृत्ति करने का अवसर प्रदान किया जाना चाहिए, इससे बालक जो भी कार्य करेंगे, उसमें वे सुख तथा आनन्द का अनुभव करेंगे। इस प्रकार पाठ्यक्रम के निर्माण में खेल तथा कार्य-सम्बन्धी क्रियाओं में अन्तर्सम्बन्ध स्थापित किया जाना चाहिए।

vii. **सह-सम्बन्ध का सिद्धान्त** -पाठ्यक्रम के निर्धारण में इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि उसमें सम्मिलित किए जाने वाले विभिन्न विषय एक-दूसरे से सम्बन्धित हो। इसका तात्पर्य यह है कि एक विषय की शिक्षा दूसरे विषय की शिक्षा का आधार बन सके। वर्तमान समय में सभी शिक्षा-शास्त्री इस सिद्धान्त पर विशेष बल दे रहे तथा इसी के आधार पर एकीकृत एवं सुसम्बद्ध पाठ्यक्रम तैयार किया जाता है। अतः पाठ्यक्रम के निर्माण में सह-सम्बन्ध का सिद्धान्त बहुत महत्वपूर्ण है।

viii. **विकास की सतत् प्रक्रिया का सिद्धान्त** -किसी भी देश की शिक्षा पर उसके दर्शन, समाज, राजनीतिक स्थिति, वैज्ञानिक प्रगति आदि का प्रभाव पड़ता है। अतः किसी भी पाठ्यक्रम को स्थायी रूप से सदैव के लिए निर्मित नहीं किया जा सकता है। समय एवं परिस्थितिजन्य आवश्यकताओं के अनुसार उसमें परिवर्तन करना आवश्यक है। अतः पाठ्यक्रम-निर्माण में विकास की सतत् प्रक्रिया का ध्यान रखना अनिवार्य होता है।

ix. **स्वस्थ आचरण के आदर्शों की प्राप्ति का सिद्धान्त** -बालकों के सामाजीकरण तथा सफल एवं व्यवहार कुशल भावी जीवन के लिए उसमें उत्तम आचरण का विकास करना अधिक आवश्यक होता है। अतः पाठ्यक्रम में उन विषयों, वस्तुओं एवं क्रियाओं का समावेश किया जाना चाहिए, जिससे बालकों को उत्तम आचरण के आदर्शों की शिक्षा मिल सके।

इस सम्बन्ध में क्रो एवं क्रो का कथन है - '' पाठ्यक्रम का निर्माण इस प्रकार से किया जाना चाहिए, जिससे वह बालकों को उत्तम आचरण के आदर्शों की प्राप्ति में सहायता कर सके।"

x. **अवकाश के लिए प्रशिक्षण का सिद्धान्त** -वर्तमान समय में अवकाश के सदुपयोग की भी समस्या है। यदि अवकाश के लिए बालक को प्रशिक्षण नहीं दिया जाए तो उसके गलत दिशा में जाने की संभावना अधिक रहती है। अतः पाठ्यक्रम इस प्रकार का होना चाहिए जो बालकों को कार्य एवं अवकाश दोनों के लिए प्रशिक्षित कर सके।

xi. **माध्यमिक शिक्षा आयोग ने भी इस सम्बन्ध में अपने प्रतिवेदन में कहा है** - '' पाठ्यक्रम इस प्रकार नियोजित किया जाना चाहिए कि वह छात्रों को न केवल कार्य के लिए अपितु अवकाश के लिए भी प्रशिक्षित करें।"

पर्याप्त समय की व्यवस्था का सिद्धान्त -किसी भी विषय के कोर्स को पूरा करने के लिए जितने समय की आवश्यकता है, उतना समय पाठ्यक्रम में उसके लिए निश्चित कर देना चाहिए। इस प्रकार विभिन्न विषयों में कोर्स को पूरा करने के लिए पाठ्यक्रम में पर्याप्त समय की व्यवस्था कर देनी चाहिए।

xii. **बाल केन्द्रीयता का सिद्धान्त** -पाठ्यक्रम के निर्माण में बालक की रूचियों, योग्यताओं, आवश्यकताओं, प्रवृत्तियों, अभिवृत्तियों, क्षमताओं, बुद्धि आयु पर ध्यान देना अति आवश्यक है। बालक की रूचि के अनुसार पाठ्यक्रम होने पर बालक को पढ़ने में कोई कठिनाई नहीं होती और इससे प्राप्त ज्ञान अधिक स्थायी होता है।

xiii. **सामुदायिक जीवन के सम्बन्ध का सिद्धान्त** -पाठ्यक्रम का निर्माण करते समय स्थानीय आवश्यकताओं एवं परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए उन सभी सामाजिक प्रयासों, मान्यताओं, विश्वासों, मूल्यों एवं समस्याओं को स्थान दिया जाना चाहिए, जिनसे बालक सामुदायिक जीवन की प्रमुख बातों से परिचित हो सके।

According to Secondary Education Commission Report, "Curriculum must be vitally or organically related to community lifes"

xiv. **जनतन्त्रीय भावना के विकास का सिद्धान्त** -भारत एक प्रजातान्त्रिक देश है। एक प्रजातान्त्रिक देश के पाठ्यक्रम में प्रजातान्त्रिक आदर्शों का समावेश होना चाहिए। विद्यालय में सामूहिक कार्यों पर बल देना चाहिए। देश की सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक समस्याओं को सम्मिलित किया जाना चाहिए। पाठ्यक्रम इस प्रकार बनाया जाना चाहिए जिससे बालकों में कुशल नागरिकता के गुणों का विकास किया जा सके। इसके लिए विद्यालय के सभी कार्यों- प्रवेश, चयन, अध्ययन-अध्यापन, खेलकूद आदि में जनतन्त्रीय भावना का समावेश होना चाहिए।

xv. **उपयोगिता का सिद्धान्त** -पाठ्यक्रम में जिन विषयों को स्थान दिया जाए वे भारत के भावी जीवन के लिए उपयोगी होने चाहिए।

Nunn महोदय का अभिप्राय है कि ''साधारण मनुष्य यह चाहता है कि उसके बच्चे केवल ज्ञान के प्रदर्शन के लिए कुछ व्यर्थ की बातों को ही न सीखें परन्तु समग्र रूप से वह यह चाहता है कि उनको वे बातें सिखाई जाए जो भावी जीवन के लिए उपयोगी हो।"

xvi. **आवश्यकता का सिद्धान्त** -बालक की आवश्यकताएँ, सभ्यता एवं संस्कृति तथा विकास की आवश्यकताओं के अनुसार भिन्न होंगे। साथ ही सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं धार्मिक पर्यावरण एवं क्षमताओं के अनुसार भी निश्चित होती है।

xvii. **रुचि का सिद्धान्त** -अनुसंधानों ने यह सिद्ध कर दिया है कि छात्र की रूचि का शैक्षिक उपलब्धि से गहन सम्बन्ध होता है। इसका कारण है रूचि एवं सम्बन्ध। छात्र जिस बात में रूचि लेते हैं उस पर उनका ज्ञान बिना किसी प्रयास के केन्द्रित हो जाता है। अतः पाठ्यक्रम में बालक की रूचियों से सम्बन्धित विषयवस्तु का समावेश किया जाना चाहिए।

John Dewey ने अपने Elementary School के पाठ्यक्रम का निर्धारण अधोलिखित चार प्रकार के रूचियों के आधार पर किया है

क. वार्तालाप एवं विचार विनिमय में रूचि।

ख. खोज में रूचि।

ग. रचना में रूचि।

घ. कलात्मक अभिव्यक्ति में रूचि।

xviii. **शैक्षिक उद्देश्यों के अनुरूपता का सिद्धान्त -** शिक्षा का उद्देश्य बालकों का शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं चारित्रिक विकास करने के साथ-साथ उन्हें किसी उद्योग अथवा उत्पादन के कार्य में निपुण करना है। अथवा व्यक्तिगत एवं सामाजिक हितों के संरक्षण के योग्य बनाना है। अतः पाठ्यक्रम का निर्माण करते समय इन उद्देश्यों को सामने रखना चाहिए।

xix. **शिक्षा जीवन की अवस्थाओं का सिद्धान्त - A. N. Whitetlead के अनुसार** पाठ्यक्रम शिक्षा-जीवन की तीन आवश्यकताओं - कौतूहल, यथार्थता तथा सामान्यीकरण के अनुरूप होना चाहिए। इस दृष्टि से पाठ्यक्रम ऐसा होना चाहिए जो बालकों को यथार्थ ज्ञान दे सके तथा जिससे वे वास्तविक जीवन में सफल हो सकें।

उपर्युक्त सिद्धान्तों का निष्कर्ष यह है कि पाठ्यक्रम का निर्माण ऐसा होना चाहिए जिससे बालकों को न केवल कार्य के लिए वरन् अवकाश के लिए भी प्रशिक्षित किया जा सके। पाठ्यक्रम में सामाजिक, कलात्मक, सांस्कृतिक क्रियाओं का भी समावेश होना चाहिए। इसका निर्माण बालकों की आवश्यकताओं, रूचियों, योग्यताओं, विभिन्नताओं को दृष्टि में रखते हुए किया जाना चाहिए जिससे उसके व्यक्तित्व का सम्पूर्ण विकास हो सके तथा भावी जीवन में वे सफल जीवन-यापन के योग्य बन सकें। **माध्यमिक शिक्षा आयोग का यह कथन इसकी पुष्टि करता है -** ''विद्यालय का सम्पूर्ण जीवन पाठ्यक्रम बन जाता है जो छात्रों के लिए जीवन के सभी पहलुओं से जुड़ा होता है तथा सन्तुलित व्यक्तित्व के विकास में सहायता प्रदान करता है।"

1.14.4 पाठ्यक्रम निर्माण के सूत्र

पाठ्यक्रम निर्माण तथा विकास पर शोध कार्य भी किए गए तथा शिक्षा शास्त्रियों के अनुभव के आधार पर दस सूत्रों का प्रतिपादन किया गया -

प्रथम सूत्र (Axiom-I) - पाठ्यक्रम के नियोजन में कार्यकारिणी या कार्य-परिषद् से विवाद होता है परन्तु इसका सहयोग लेना प्राथमिक आवश्यकता होती है।

द्वितीय सूत्र (Axiom-II) - पाठ्यक्रम नियोजन का सम्बन्ध शिक्षा प्रणाली से होता है इसलिए आवश्यकता होती है कि राज्य प्रणाली को निर्धारित किया जाए।

तृतीय सूत्र (Axiom-III) - पाठ्यक्रम नियोजन की आवश्यकता है कि यह प्रक्रिया समन्वित रूप में की जाए।

चतुर्थ सूत्र (Axiom-IV) - पाठ्यक्रम नियोजन में अधिगम सामग्री की उपयुक्तता को ध्यान में रखना आवश्यक है।

पंचम सूत्र (Axiom-V) - पाठ्यक्रम नियोजन में शिक्षक भूमिका को ध्यान में रखना होता है आम शिक्षक के अधिगम-परिस्थितियों का व्यवस्थापक माना जाता है।

षष्टम् सूत्र (Axiom-VI) - पाठ्यक्रम नियोजन में पाठ्यवस्तु के चयन से पूर्व उद्देश्यों का प्रतिपादन करना आवश्यक होता है।

सप्तम् सूत्र (Axiom-VII) - पाठ्यक्रम नियोजन में मूल्यांकन प्रक्रिया निहित होना आवश्यक है जिससे पाठ्यक्रम में स्वतः ही सुधार किया जा सके।

अष्टम् सूत्र (Axiom-VIII) - शिक्षा प्रणाली में परिवर्तन के लिए बाह्य परिस्थितियाँ ही प्रभावित करती हैं।

नवम् सूत्र (Axiom-IX) - आधुनिक अधिगम परिस्थितियों की परिभाषा करना और मूल कौशल का पहचानना आवश्यक होता है।

दसम् सूत्र (Axiom-X) - पाठ्यक्रम नियोजन की प्रक्रिया शिक्षा की भांति निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है। इसका कभी अन्त नहीं होता है सदैव सुधार एवं परिवर्तन की आवश्यकता रहती है।

1.15 सामग्री का चयन

प्रत्येक पाठ्यवस्तु का अपना स्वरूप होता है जिसे पाठ्य-सामग्री भी कहते है, जिसको शिक्षण-अधिगम परिस्थितियों को उत्पन्न करने के लिए किया जाता है। इस क्षेत्र में "ब्रूनर" का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

1.15.1 पाठ्यसामग्री का अर्थ एवं सिद्धांत

पाठ्यसामग्री चयन के प्रमुख सिद्धान्तों का वर्णन निम्नलिखित है -

a) मैकिया का सिद्धान्त

मैकिया (1965) ने चार विभिन्न प्रकार के पाठ्यचर्या सिद्धान्त प्रस्तुत किए। उन्होंने बताया कि पाठ्यचर्या विशेषज्ञ, संरचनाओं, घटनाओं, मूल्यों एवं अभ्यासों के बारे में चिन्तन करते हैं -

1. **संरचनात्मक सिद्धान्त -** इस सिद्धान्त का सम्बन्ध उस अनुशासन की संरचना के बारे में चिन्तन से है जिसके अन्तर्गत पाठ्यचर्या है। पाठ्यचर्या विशेषज्ञ प्रायः इस सिद्धान्त की समझ दार्शनिकों एवं निश्चित अनुशासनों के सदस्य से ज्ञात करते हैं। इसका सम्बन्ध 'यह क्या है' और 'क्या विद्यमान' है से है।
2. **घटना सिद्धान्त -**यह वैज्ञानिक सिद्धान्त के समान है। यह घटना के बारे में चिंतन करता है। यह पूर्व कथन करने का प्रयास करता है कि दी गई स्थितियों में क्या होगा?
3. **मूल्यांकन सिद्धान्त -** प्रस्तुत सिद्धान्त में सर्वाधिक वांछित उद्देश्य एवं सम्मिलित की जाने वाली श्रेष्ठ विषयवस्तु की प्राप्ति के लिए उपयुक्त साधन के बारे में चिन्तन किया जाता है। मूल्यांकनात्मक सिद्धान्त में मूल्यों एवं मानकों को शामिल किया जाता है।
4. **अभ्यासात्मक सिद्धान्त -**प्रस्तुत सिद्धान्त का उपयोग जो मूल्यवान निर्धारित किया जाता है, उसे प्राप्त करने के लिए उपयुक्त साधन के बारे में चिन्तन से सम्बन्धित है। यह पाठ्यचर्या नीति निर्माण, किसी निश्चित उद्देश्य की प्राप्ति के लिए प्रयुक्त साधन एवं विद्यालय में प्रयुक्त विशिष्ट अभ्यास को सहारा देती है।

b) **जानसन का प्रतिमान -** जानसन (1967) ने बताया कि, पाठ्यचर्या विशेषज्ञों को पहले पाठ्यचर्या एवं पाठ्यचर्या 'निर्माण' को परिभाषित करना चाहिए। उसके बाद सिद्धान्त निर्माण की ओर ध्यान देना चाहिए। उसने यह तर्क दिया कि पाठ्यचर्या योजना एवं पाठ्चर्या विकास प्रक्रिया में पहले को अन्तिम के निर्गत के रूप में परिभाषित कर भेद किया है। उसने पाठ्यचर्या, अनुदेशन एवं अध्यापक व्यवहार के मध्य भी भेद बताए हैं। उसने उद्देश्यों को व्यवहार रूप में रखने की बात की है। उन्होंने वस्तुतः सिद्धान्त प्रस्तुत नहीं किया है, अपितु उपयोगी प्रतिमान प्रदान किया है।

1.15.2 सामग्री चयन की विधि एवं उसकी व्यवस्था

पाठ्यवस्तु का चयन पाठ्यक्रम निर्माण का सबसे महत्वपूर्ण सोपान है। आरम्भ में पाठ्यवस्तु को ही प्राथमिकता दी जाती रही है, परन्तु अब भी इसका महत्व कम नहीं है। पाठ्यवस्तु-केन्द्रित पाठ्यक्रम के निर्माण में इसी सोपान को विशेष महत्व दिया जाता है।

पाठ्यवस्तु की व्यवस्था एवं अर्थापन ज्ञान, कौशल, अभिवृत्ति तथा मूल्यों के माप में किया जाता है। इसकी व्यवस्था विद्यालय में पाठ्यक्रम के आधार पर की जाती है। विषयवस्तुओं के मूल्यों के सम्बन्ध में अलग-अलग विचार हैं। यहाँ मूल्यों के आन्तरिक तथा बाह्य रूप में समझने का प्रयास करते हैं। मूल्य सीखने के बजाय व्यवहारिक अधिक होते हैं। जीवन-यापन से व्यक्ति मूल्यों के सम्बन्ध में जानकारी होती

है। अधिकांश विद्वानों का मत है कि पाठ्यवस्तु- मानसिक योग्यताओं, कौशलों, अभिवृत्तियों, अभिरूचियों तथा मूल्यों के विकास का साधन है।

पाठ्यवस्तु के स्वरूप के चयन एवं व्यवस्था में अधोलिखित तथ्यों को ध्यान में रखा जाता है -

- छात्रों की अभिरूचियों एवं आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके।
- पाठ्यवस्तु का स्वरूप छात्रों के पूर्व सीखे हुए ज्ञान से सम्बन्धित हो।
- पाठ्यवस्तु का स्वरूप छात्रों की क्षमताओं एवं योग्यताओं के अनुरूप हो।
- छात्रों के व्यक्तिगत भिन्नता को भी ध्यान में रखा जाए।
- पाठ्यवस्तु का स्वरूप शुद्ध तथा स्पष्ट हो।
- पाठ्यवस्तु का स्वरूप छात्रों, समाज तथा विद्यालय की दृष्टि से महत्वपूर्ण हो।
- पाठ्यवस्तु के स्वरूप के लिए शिक्षण विधियाँ उपलब्ध हों तथा शिक्षक उनका प्रयोग करने में सक्षम हो।
- पाठ्यवस्तु के स्वरूप से उद्देश्यों की प्राप्ति भी की जा सके।
- पाठ्यवस्तु को छात्र सीख सकें।
- पाठ्यवस्तु का सम्बन्ध छात्रों के मानसिक, कौशल, अभिरूचि तथा मूल्यों के विकास से हो।

पाठ्यवस्तु के स्वरूप के निर्धारण के लिए विषय-समितियों का गठन किया जाए उनमें अनुभवी शिक्षकों को ही सम्मिलित किया जाए। पाठ्यवस्तु अथवा विषयवस्तु के स्वरूप का चयन करते समय परीक्षण तथा मूल्यांकन विधि को भी ध्यान में रखना चाहिए। शिक्षण तथा परीक्षण में पाठ्यवस्तु के स्वरूप के द्वारा सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। पाठ्यक्रम के निर्माण में परीक्षण प्रणाली को ध्यान में रखना होता है। पाठ्यक्रम का प्रारूप, परीक्षण प्रणाली के अनुरूप होना चाहिए।

1.15.3 शिक्षण विधियों का चयन तथा व्यवस्था

पाठ्यवस्तु तथा शिक्षण विधियों को अलग करना बहुत ही कठिन होता है क्योंकि एक समाप्त होता है दूसरा आरम्भ होता है। शिक्षण विधि का चयन पाठ्यवस्तु के स्वरूप के आधार पर किया जाता है। शिक्षण में छात्र और शिक्षक के मध्य अन्तःप्रक्रिया पाठ्यवस्तु तथा शिक्षण विधि की सहायता से होती है। अधिगम परिस्थितियों तथा अवसरों में पाठ्यवस्तु तथा विधि एक साथ होती है। इस प्रकार अधिगम परिस्थितियों के लिए छात्र, शिक्षक, पाठ्यवस्तु, सहायक सामग्री तथा वातावरण में सम्बन्ध के लिए नियोजन किया जाता है। पाठ्यवस्तु का जिस ढंग से प्रस्तुतीकरण किया जाता है उसे शिक्षण विधि कहते हैं।

पाठ्यक्रम के निर्माण में पाठ्यवस्तु तथा शिक्षण विधियाँ प्रमुख होते हैं। इसके अतिरिक्त शिक्षक तथा विद्यालय की प्रभावशीलता के लिए शिक्षण विधियाँ भी महत्व रखती हैं। परन्तु यह निर्णय लेना कठिन होता है कि कौन-सी लिपि अधिक प्रभावशाली तथा उपयुक्त है क्योंकि प्रभावशीलता का मानदण्ड छात्र का सीखना है। प्रत्येक छात्र के सीखने तथा सोचने का ढंग अलग-अलग होता है। इसलिए शिक्षण विधि की उपयुक्तता छात्रों की दृष्टि से देखनी होती है। आगमन तथा निगमन विधियाँ अधिक प्राचीन हैं परन्तु किन छात्रों के लिए आगमन और किन छात्रों के लिए निगमन विधि उपयुक्त होगी यह कहना कठिन होगा।

पाठ्यवस्तु की प्रकृति एवं स्वरूप उद्देश्यों, शिक्षण विधियों, आव्यूहों तथा माध्यमों को प्रभावित करती हैं। इस क्षेत्र में शोध कार्यों की अधिक आवश्यकता है तभी किसी ठोस बात को कहा जा सकता है। प्राथमिक स्तर पर अक्षर ज्ञान के लिए, 'कन्डीशनिंग विधि' को प्रयुक्त करते हैं जिसमें अक्षर की ध्वनि को महत्व देते हैं।

1.4 गतिविधियों या क्रिया-कलापों का विकास

1.4.1 पाठ्यक्रम विकास

''पाठ्यक्रम-विकास'' का अर्थ निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया जो कभी समाप्त नहीं होती है। कहाँ से आरम्भ हुई इसका कोई बोध नहीं है। शिक्षण की आवश्यकता की जानकारी छात्रों की उपलब्धियों से हो जाती है जिनको शिक्षक प्राप्त करने का प्रयास करता है। परीक्षण के द्वारा यह भी जानकारी हो जाती है कि किस सीमा तक उद्देश्य प्राप्त हुए हैं।

इसको दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि अधिगम-अवसरों के नियोजन द्वारा छात्रों के व्यवहार में विशिष्ट परिवर्तन लाना तथा परीक्षण द्वारा यह जानना कि किस सीमा तक अपेक्षित परिवर्तन हुआ है। इस प्रत्यय को पाठ्यक्रम-विकास की संज्ञा दी जाती है। पाठ्यक्रम का मुख्य लक्ष्य छात्रों का विकास करना है इसलिए पाठ्यक्रम का प्रारूप ऐसा हो जिससे छात्रों के व्यवहारों में अपेक्षित परिवर्तन किया जा सके। यह प्रक्रिया चक्रीय तथा निरन्तर चलने वाली मानी जाती है - इसके प्रमुख तत्व चार माने जाते हैं -

1) **शिक्षण-उद्देश्य -** सभी साधनों का प्रयोग उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए किया जाता है पाठ्यवस्तु एक साधन है उद्देश्यों को प्राप्त करने की दृष्टि।

2) शिक्षण विधि तथा पाठ्यवस्तु -छात्रों में अपेक्षित व्यवहार परिवर्तन के लिए अधिगम-परिस्थितियाँ तथा अवसर शिक्षण विधियों तथा पाठ्यवस्तु की सहायता से उत्पन्न किए जाते हैं जिससे उद्देश्य प्राप्त किए जा सकें।

1) परीक्षण प्रक्रिया

इसके द्वारा यह सुनिश्चित किया जाता है कि शिक्षण विधियों तथा पाठ्यवस्तु से किसी सीमा तक उद्देश्यों को प्राप्त किया गया है।

4) पृष्ठपोषण

परीक्षण का अर्थापन शिक्षकों तथा छात्रों को पृष्ठपोषण प्रदान करता है तथा पाठ्यक्रम के प्रारूप को सुधार के लिए दिशा मिलती है। पृष्ठपोषण मूल्यांकन का प्रभाव होता है।

1.15.4पाठ्यक्रम सम्पादन

पाठ्यक्रम-विकास प्राचीन तथा विशिष्ट प्रत्यय है जबकि पाठ्यक्रम सम्पादन नवीन तथा व्यापक प्रत्यय है। पाठ्यक्रम-सम्पादन का विकास 'अनुदेशनात्मक प्रारूप' (Instructional Designs) के साथ हुआ है। पाठ्यक्रम-विकास का सम्बन्ध 'पाठ्यक्रम प्रबन्धन' से हुआ है। पाठ्यक्रम-विकास एक चार सोपान की चक्रीय प्रक्रिया है। पाठ्यक्रम-विकास का सम्बन्ध् वर्तमान पाठ्यक्रमों के सुधार एवं परिवर्तन से होता है। जबकि पाठ्यक्रम-सम्पादन का सम्बन्ध नवीन पाठ्यक्रमों के सृजन से होता है।

1.15.5पाठ्यक्रम सम्पादन एवं पाठ्यक्रम विकास में अंतर

पाठ्यक्रम-सम्पादन तथा पाठ्यक्रम-विकास

	पाठ्यक्रम-सम्पादन		पाठ्यक्रम विकास
1.	यह नवीन तथा व्यापक प्रत्यय है। इसमें वर्तमान परिस्थिति को ध्यान में रखा जाता है।	1.	पाठ्यक्रम विकास प्राचीन तथा विशिष्ट प्रत्यय है। इसमें भविष्य की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हैं
2.	इसका सम्बन्ध अनुदेशनात्मक प्रारूप से है और इसी के साथ विकसित हुआ है।	2.	इसका सम्बन्ध पाठ्यक्रम प्रबन्धन से है।
1.	इसका सम्बन्ध नवीन पाठ्यक्रमों के सम्पादन से होता है।	1.	पाठ्यक्रम-विकास का सम्बन्ध प्रचलित पाठ्यक्रमों में सुधार एवं परिवर्तन से होता है।
4.	इसमें पाँच सोपानों का अनुसरण किया जाता है- अ. नियोजन करना ब. व्यवस्था/संगठन करना। स. प्रशासन करना द. निर्देशन देना य. नियंत्रण करना इसका उपयोग आरम्भ किया जाता है।	4.	यह चार सोपान की चक्रीय प्रक्रिया है- अ. उद्देश्यों का प्रतिपादन करना ब. अनुदेशनात्मक विधियों को प्रयुक्त करना स. मूल्यांकन करना द. पृष्ठपोषण देना यह चक्रीय प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है।

5.	पाठ्यक्रम-सम्पादन का कार्य अधिक कठिन तथा जटिल होता है। यह भी भविष्य उन्मुख होता है।	5.	यह कार्य अधिक सरल होता है। प्रचलित पाठ्यक्रमों में ही सुधार करते हैं। भविष्य उन्मुखी होता है।
6.	नवीन विषयों के लिए विभिन्न स्तरों के नियोजन करके सम्पादन की व्यवस्था की जाती है।	6.	इसमें नियोजन तथा वयवस्था नहीं करनी होती है। विशिष्ट विषय का विशिष्ट स्तर के लिए पाठ्यक्रम में परिवर्तन किया जाता है।
7.	नवीन पाठ्यक्रमों के सम्पादन के लिए बोर्ड या परिषद् की भी स्थापना करनी होती है। विषय विशेषज्ञों की सहायता ली जाती है।	7.	इस प्रकार की समस्या पाठ्यक्रम विकास में नहीं होती है। बोर्ड तथा परिषद् द्वारा ही विकास किया जाता है।
1.	पाठ्यक्रम-सम्पादन के सैद्धान्तिक तथा व्यवहारिक दोनों की पक्ष होते हैं।	1.	पाठ्यक्रम-विकास का व्यवहारिक पक्ष ही होता है।
9.	पाठ्यक्रम-सम्पादन के बाद विकास की क्रिया आरम्भ होती है।	9.	इसकी प्रक्रिया चक्रीय तथा सतत् होती है।
10.	नवीन पाठ्यक्रमों का प्रबन्धन इसके अन्तर्गत किया जाता है।	10.	यह एक प्रविधि है जिससे प्रचलित पाठ्यक्रमों में सुधार तथा परिवर्तन किया जाता है

मानवीय ज्ञान में वृद्धि अधिक तीव्र गति से हो रही है। प्रत्येक दसक में ज्ञान दूना हो जाता है जबकि जनसंख्या 25 वर्ष में दुगनी हो जाती है। ज्ञान वृद्धि के परिणाम स्वरूप नये अध्ययन क्षेत्रों का विकास हो रहा है। आज कम्प्यूटर विज्ञान तथा उपयोग का नया अध्ययन क्षेत्र विकसित हुआ है। नवीन अध्ययन विषयों का प्रबन्धन तथा पाठ्यक्रमों का सम्पादन दो प्रकार के पाठ्यक्रम के रूप में किया गया है।

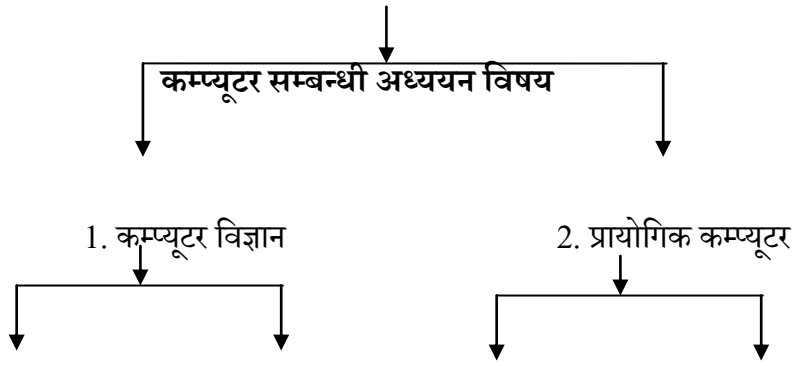

1.1 बी.एस.सी. कम्प्यूटर	1.2 एम.एस.सी. कम्प्यूटर	2.1 बी.सी.ए. B.C.A.	2.2 एम.सी.ए. M.C.A.
(सैद्धान्तिक पाठ्यक्रम)		(प्रायोगिक पाठ्यक्रम)	

कम्प्यूटर सम्बन्धी पाठ्यक्रम का प्रबन्धन विद्यालय स्तर से विश्वविद्यालय स्तर तक प्रबन्धन एवं सम्पादन सी.बी.एस.सी. (CBSE) तथा आई.सी.एस.सी. (ICSE) बोर्डों द्वारा किया जाता है। उच्च कक्षाओं के लिए कम्प्यूटर पाठ्यक्रमों का प्रबन्धन एवं सम्पादन विश्वविद्यालय की अध्ययन समितियों द्वारा किया जाता है। कम्प्यूटर पाठ्यक्रमों का प्रबन्धन एवं सम्पादन किया जाता है। कम्प्यूटर के प्रचलित पाठ्यक्रमों का विकास, सुधार एवं परिवर्तन भी अधिक तीव्रता से किया जाता है। जिससे भावी आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सके। शिक्षा की प्रवृत्ति सदैव भविष्य की ओर होती है। शिक्षा सदैव भविष्य के लिए दी जाती है। पाठ्यक्रम-विकास में भविष्य की आवश्यकताओं को ध्यान रखते हैं। इसके साथ उद्देश्यों की पूर्ति के अभाव होने पर भी पाठ्यक्रम-विकास की आवश्यकता होती है।

पाठ्यक्रम-विकास एवं सम्पादन का अन्य उदाहरण राष्ट्रीय अध्यापाक शिक्षा परिषद् (NCTE) द्वारा बी.एड. तथा एम.एड. कक्षाओं के लिए 1995 में पाठ्यक्रमों का प्रबन्धन किया और उनका सम्पादन किया जिससे अध्यापक-शिक्षा में गुणवत्ता लाई जा सके और उद्देश्यों की पूर्ति की जा सके। सन् 1997 में इन पाठ्यक्रमों में सुधार एवं परिवर्तन किया जिससे 'पाठ्यक्रम-विकास' कहते हैं। इन उदाहरणों से पाठ्यक्रम-सम्पादन एवं पाठ्यक्रम-विकास के अन्तर को भली प्रकार समझ सकते हैं।

1.15.6पाठ्यक्रम विकास में अनुसंधान की आवश्यकता

पाठ्यक्रम-विकास के प्रत्यय से स्पष्ट होता है कि प्रचलित पाठ्यक्रमों में भविष्य की आवश्यकताओं एवं उद्देश्यों की पूर्ति की दृष्टि सुधार तथा परिवर्तन किया जाता है। यह कार्य बोर्डों, परिषदों तथा अध्ययन समितियों द्वारा किया जाता है। विषय विशेषज्ञ अपने अनुभवों तथा अध्ययनों के आधार पर पाठ्यक्रम में सुधार एवं परिवर्तन करते रहते हैं। सामान्यतः विशेषज्ञों की यह प्रवृत्ति होती है कि उन्होंने किसी नवीन प्रत्यय तथा पाठ्यवस्तु को कहीं पढ़ लिया उसको पाठ्यक्रम में सम्मिलित कर देते हैं। यह कह सकते हैं कि उद्देश्यों एवं भविष्य आवश्यकताओं को ध्यान में न रखकर अपनी योग्यताओं का पाठ्यक्रम विकास में प्रदर्शन करते हैं। पाठ्यक्रम-विकास में सैद्धान्तिक पक्ष की अपेक्षा व्यवहारिक पक्ष को प्रधानता दी जानी चाहिए। इसके लिए अनुसन्धान की आवश्यकता है, प्रणाली विश्लेषण का उपयोग किया जाए। शोध निष्कर्षों तथा प्रणाली-विश्लेषण के आधार पर पाठ्यक्रम विकास से शिक्षा में अधिक उपयोगी होता है। पाठ्यक्रम-विकास के लिए नवीन पाठ्यपुस्तकों की आवश्यकता होती है। पाठ्यक्रम-सम्पादन समुचित पाठ्यपुस्तकों पर निर्भर करता है। पाठ्यक्रम-विकास तथा पाठ्यक्रम-सम्पादन में पाठ्यपुस्तकों की गुणवत्ता आवश्यकत होती है।

1.15.7पाठ्यक्रम विकास में अनुसंधान के क्षेत्र

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद् (NCERT) इस प्रकरण संवीक्षण तथा शोध कार्यों को किया है तथा कर भी रही है। अधिकांश विकास का क्षेत्र विशिष्ट है। विज्ञान तथा गणित विषयों पर अधिक शोध किये गये हैं जबकि सामाजिक-अध्ययन पर शोध-कार्य कम हुए हैं। इसलिए आज आवश्यकता है कि सामाजिक अध्ययन पाठ्यक्रम विकास को अधिक महत्व दिया जाए। शोध के आधार पर पाठ्यक्रम-विकास को व्यवहारिक आधार प्रदान किया जा सकता है। निम्नलिखित शोध क्षेत्रों को महत्व दिया जाए।

1. पाठ्यक्रम के व्यवहारिक आधार पर,
2. पाठ्यक्रम के लिए विभिन्न विषयों के घटकों पर,
1. पाठ्यक्रम की अभिवृत्ति तथा ऐतिहासिक विकास पर,
4. पाठ्यक्रम परिवर्तन में बाधाओं पर,
5. विशिष्ट समस्याओं का अध्ययन विभिन्न विषयों के पाठ्यक्रम के सन्दर्भ में
6. भारतीय भाषाओं का विशलेषणात्मक अध्ययन
7. शिक्षण कौशलों - लिखना, बोलना, पढ़ना आदि
1. पाठ्यक्रम परिवर्तन में शिक्षकों की सहभागिता पर अध्ययन
   - (अ) पाठ्यपुस्तकों की उपादेयता
   - (ब) पाठ्यपुस्तकों को तैयार करना
   - (स) पाठ्यपुस्तकों में विषय सम्बन्ध शब्दावली
   - (द) पाठ्यपुस्तकों की शिक्षकों तथा छात्रों की उपयोगिता
   - (य) पाठ्यपुस्तकों का आकलन

इन क्षेत्रों में शोध-अध्ययन किये जाए और पाठ्यक्रम-विकास के समय जिन समस्याओं की पहिचान की जाए उन पर शोध कार्य की सहायता ली जाए। पाठ्यक्रम-विकास में शोध निष्कर्षों की सहायता ली जाए।

पाठ्यक्रम-सम्पादन में भी शोध कार्यों का आयोजन किया जाए। नवीन पाठ्यक्रम को किसी एक संस्था में प्रयुक्त करके उनकी व्यावहारिकता एवं उपयोगिता का आकलन किया जाए। इन सभी सूचनाओं के आधार पर पाठ्यक्रम में सुधार एवं परिवर्तन करकरे सम्पादन किया जाना चाहिए।

1.4 पाठ्यपुस्तकों का निर्माण

पाठ्यक्रम शैक्षिक उद्देश्यों का एक महत्वपूर्ण साधन है तथा पाठ्यक्रम-निर्माण शिक्षा-प्रक्रिया का महत्वपूर्ण अंग है, क्योंकि यह उद्देश्यों की पूर्ति के लिए प्रारम्भिक एवं मूलभूत आधार है। पाठ्यक्रम-निर्माण के उपरांत अनुदेशात्मक सामग्री के निर्माण एवं प्रयोग दूसरा महत्वपूर्ण पक्ष है। इसके आभाव में शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया सफल नहीं हो सकती। वर्तमान में अनुदेशात्मक सामग्री के विभिन्न रूप इस प्रकार है-

i. पाठ्य-पुस्तकें (Text-Books)
ii. पाठ्य-संदर्शिका (Curriculum guides)
iii. समृद्धकारी सामग्री-अनुपूरक पुस्तकें (Enrich-Material)
iv. दृश्य-श्रव्य सामग्री (Audio-Visual Aids)

1.15.8 पाठ्यपुस्तक की अवधारणा

किसी विषय के ज्ञान को जब एक स्थान पर पुस्तक के रूप में संगठित ढंग से प्रस्तुत किया जाता है तो उसे पाठ्य-पुस्तक की संज्ञा प्रदान की जाती है।

पाठ्य-पुस्तक की परिभाषा-

a. **Harolicker के अनुसार-** *'पाठ्य-पुस्तक ज्ञान, आदतों, भावनाओं, क्रियाओं तथा प्रवृतियों का सम्पूर्ण योग है।'*

b. **Lange के अनुसार** – *'यह अध्ययन क्षेत्र की किसी शाखा की एक प्रमाणित पुस्तक होती है।'*

1.15.9 पाठ्यपुस्तकों की आवश्यकता एवं महत्व

पाठ्य-पुस्तक की आवश्यकता एवं महत्व को निम्नलिखित कारणों से स्वीकार किया जाता है-

i. पाठ्य-पुस्तक में निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुसार विषय का संगठित ज्ञान एक स्थान पर मिल जाता है।
ii. पाठ्य-पुस्तकें शिक्षकों एवं छात्रों के लिए मार्ग-दर्शक का कार्य करती है।
iii. पाठ्य-पुस्तकों के द्वारा शिक्षकों एवं छात्रों को यह जानकारी मिलती है कि किसी कक्षा-स्तर के लिए कितनी विषय-वस्तु का अध्ययन-अध्यापन करना है।
iv. पाठ्य-पुस्तकों के माध्यम से स्वाध्याय द्वारा ज्ञान प्राप्त करने में छात्रों को प्रेरणा प्राप्त होती है।
v. पाठ्य-पुस्तकें छात्रों को विषय-वस्तु को संकलित करने में सहायता प्रदान करती है।

1.15.10 पाठ्यपुस्तक की विशेषताएँ

एक अच्छी पाठ्य-पुस्तक में निम्नलिखित गुणों का होना आवश्यक होता है-

a. विषय-वस्तु का प्रस्तुतीकरण बालकों के मानसिक के अनुरूप।
b. विषय-वस्तु का संगठन तार्किक एवं मनोवैज्ञानिक।
c. भाषा-शैली में सरलता, स्पष्टता, मौलिकता एवं प्रवाहशीलता।
d. छात्रों में स्वयं पढने की रुचि विकसित कर सकने की क्षमता।
e. अध्यायों के आकार बालकों के स्तर एवं क्षमताओं के अनुरूप।
f. विषय-वस्तु का प्रस्तुतीकरण शिक्षण-उद्देश्यों एवं मूल्यों के अनुरूप।
g. विषय-वस्तु के अनुकूल चित्रों, मानचत्रों, रेखाचित्रों आदि का प्रस्तुतीकरण।

1.5 पाठ्यपुस्तक का निर्माण के सिद्धांत

1.15.11 पाठ्यपुस्तक निर्माण

किसी समाज के लिए शिक्षा के पाठ्यपुस्तक का निर्धारण करने में दार्शनिक विचारधारा, सामाजिक मूल्य, राजनीतिक विचारधारा, मनोवैज्ञानिक तथा वैज्ञानिक प्रवृतियों आदि की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। पाठ्य-पुस्तक के निर्माण में इनके प्रभावों को सिद्धांतो के रूप में बाँट दिया गया है। पाठ्यपुस्तक के निर्माण में सबसे अधिक बल बालकों की रूचि, रुझान तथा योग्यता पर दिया जाता है।

1.15.12 पाठ्यपुस्तक निर्माण के सिद्धांत

पाठ्यपुस्तक से सम्बन्धित शब्द पाठ्यपुस्तक निर्माण के लिए अधिक प्रयोग होता है। शिक्षा को विकास की प्रक्रिया मानते हैं। शिक्षा का प्रारूप पाठ्यपुस्तक पर आधारित होता है इसलिए पाठ्यपुस्तक निर्माण शब्द का प्रयोग किया जाता है। समाज और शिक्षा दोनों ही परिवर्तनशील हैं और परिवर्तन विकास की ओर होता है। अतः उस अपेक्षित विकास के लिए समुचित पाठ्यपुस्तक का विकास करना आवश्यक है। अतः पाठ्यपुस्तक निर्माण निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है।

पाठ्यपुस्तक निर्माण की क्रिया की ऐतिहासिक समीक्षा करने से विदित होता है कि पाठ्यक्रम-विकास में तीन तथ्यों को महत्व दिया जाता रहा है-उद्देश्य, प्रक्रिया एवं परिस्थिति।

यहाँ प्रतिमान शब्द का अर्थ पाठ्यपुस्तक के स्वरूप से है। पाठ्यपुस्तक निर्माण में समय-परिवर्तन, सामाजिक परिवर्तन के साथ शिक्षा का लक्ष्य बदलता रहा है। प्रतिमान का स्वरूप लक्ष्य पर आधारित होता है। शिक्षा-प्रक्रिया के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि पाठ्यपुस्तक में तीन तथ्यों को अधिक महत्व दिया जा रहा है। इस प्रकार पाठ्यपुस्तक निर्माण के प्रतिमानों को प्रमुख रूप से तीन समूहों में विभाजित करते हैं-

(1) उद्देश्य प्रतिमान (The Objectives Model)

(2) प्रक्रिया प्रतिमान (The Process Model) तथा

(1) परिस्थित प्रतिमान (The Situational Model)।

पाठ्यपुस्तक निर्माण में यदि उद्देश्यों को महत्व देकर उसका प्रारूप विकसित किया जाए तब उसे 'उद्देश्य प्रतिमान' कहते हैं। यदि शिक्षा की प्रक्रिया को प्राथमिकता दी जाती है तब उसे 'प्रक्रिया प्रतिमान' की संज्ञा दी जाती है। सामाजिक तथा राजनैतिक परिस्थिति के बदलने पर पाठ्यक्रम के प्रारूप को बदला जाये तब उसे परिस्थिति प्रतिमान कहा जाता है।

1.6 सारांश

शिक्षा एक विकास की प्रक्रिया मानी जाती है। **कोठारी शिक्षा आयोग ने प्रथम वाक्य में यही कहा है।** ''भारत के भाग्य का निर्माण उसकी कक्षाओं के अन्तर्गत किया जा रहा है।" (Destiny of India is being shaped in her classroom). पाठ्यक्रम का विकास समाज तथा राष्ट्र की आवश्यकताओं के लिये किया जाता है। शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति का साधन पाठ्यक्रम ही है। शिक्षा की प्रक्रिया का आधार पाठ्यक्रम का प्रारूप होता है। सामाजिक परिवर्तन के साथ-साथ शिक्षा के उद्देश्यों तथा पाठ्यक्रम के प्रारूप में भी परिवर्तन आवश्यक होता है। इसलिये पाठ्यक्रम विकास की प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है। पाठ्यक्रम विकास की प्रक्रिया प्राथमिक स्तर से विश्वविद्यालय स्तर तक चलती रहती है। यह कार्य अध्ययन समितियों, परिषदों तथा अध्ययन बोर्ड द्वारा किया जाता है।

कक्षा के अन्तर्गत शिक्षा पाठ्यवस्तु का सम्पादन करता है। पाठ्यक्रम का विकास समाज तथा राष्ट्र की आवश्यकताओं के लिए किया जाता है। शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति का साधन पाठ्यक्रम ही है। सामाजिक परिवर्तन के साथ-साथ शिक्षा के उद्देश्यों तथा पाठ्यक्रम के प्रारूप में भी परिवर्तन आवश्यक होता है। इसलिए पाठ्यक्रम विकास की प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है। पाठ्यक्रम विकास की प्रक्रिया प्राथमिक स्तर से विश्वविद्यालय स्तर तक चलती रहती है।

शिक्षा की प्रक्रिया में विभिन्न युगों में विभिन्न पक्षों को प्राथमिकता दी जाती रही है। कभी शिक्षकों को, कभी छात्रों को, कभी पाठ्यवस्तु के शिक्षण को तो कभी शिक्षण उद्देश्यों को महत्व दिया जाता रहा है। परन्तु आज उद्देश्यों को प्राथमिकता दी जाती है। शिक्षण, प्रशिक्षण, अनुदेशन तथा अधिगम की प्रक्रियाओं की व्यवस्था में उद्देश्यों को ही महत्व दिया जाता है यहाँ तक शिक्षण और परीक्षण की क्रियाओं में भी उद्देश्यों को ही महत्व दिया जाता है। शिक्षण उद्देश्य साधन नहीं है अपितु साध्य है बिना साधन के उद्देश्यों की व्यवस्था एवं प्राप्ति सम्भव नहीं हो सकती है। यही कारण है शिक्षा में नवीन प्रत्ययों, आयामों तथा प्रवर्तनों में बड़ी तीव्रता से वृद्धि हो रही है परन्तु उसके कोई ठोस परिणाम नहीं प्राप्त हो सके हैं। प्रबन्धन का साधन पाठ्यक्रम तथा पाठ्यपुस्तकें हैं। पाठ्यक्रम तथा पाठ्यपुस्तकों पर इतना ध्यान नहीं दिया गया है। जितना उद्देश्यों पर दिया है। दोनों का समन्वय और विकास गति एक साथ होगी तभी शिक्षा की प्रक्रिया सार्थक एवं प्रभावी हो सकती है। शिक्षा के शोध कार्यों में भी पाठ्यक्रम तथा पाठ्यपुस्तकों पर ध्यान नहीं दिया गया है। उत्तम प्रकार की पुस्तकों का भी अभाव रहा है।

1.7 शब्दावली

1. पाठ्यक्रम-औपचारिक शिक्षा के क्षेत्र में पाठ्यचर्या या पाठ्यक्रम (करिकुलम) विद्यालय या विश्वविद्यालय में प्रदान किये जाने वाले पाठ्यक्रमों और उनकी सामग्री को कहते हैं। पाठ्यचर्या-पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम के उस पक्ष को कहा जाता है जिसे कक्षा में प्रयोग हेतु व्यवस्थित किया जाता है। इसमें अन्तर्वस्तु के अतिरिक्त शिक्षकों, छात्रों तथा प्रकाशकों के उपयोगार्थ सहायक सामग्री एवं कार्य-विधि आदि के निर्देश भी सम्मिलित होते हैं।
2. पाठ्यक्रम विकास – ''पाठ्यक्रम-विकास'' का अर्थ निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया जो कभी समाप्त नहीं होती है। कहाँ से आरम्भ हुई इसका कोई बोध नहीं है। शिक्षण की आवश्यकता की जानकारी छात्रों की उपलब्धियों से हो जाती है जिनको शिक्षक प्राप्त करने का प्रयास करता है। परीक्षण के द्वारा यह भी जानकारी हो जाती है कि किस सीमा तक उद्देश्य प्राप्त हुए हैं।
3. पाठ्यसामग्री- किसी तरह की शिक्षा अथवा प्रशिक्षण के लिये निर्धारित विषयों, उपविषयों (टॉपिक्स) एवं सम्बन्धित सामग्री की व्यवस्थित एवं साररूप में प्रस्तुति ही पाठ्यविवरण (syllabus) कहलाता है। पाठ्यविवरण प्रायः किसी शिक्षा परिषद (बोर्ड) द्वारा निर्धारित की जाती है या किसी प्राध्यापक द्वारा बनायी जाती है जो उस विषय के शिक्षण की गुणवत्ता के लिये उत्तरदायी होता है। समुचित पाठ्यविवरण का शिक्षा में बहुत महत्वपूर्ण स्थान है।
4. पाठ्यपुस्तक- किसी विषय के ज्ञान को जब एक स्थान पर पुस्तक के रूप में संगठित ढंग से प्रस्तुत किया जाता है तो उसे पाठ्य-पुस्तक की संज्ञा प्रदान की जाती है।

1.8 अभ्यास प्रश्न

1. पाठ्यक्रम की परिभाषा दीजिए।
2. पाठ्यक्रम निर्माण की अवधारणा स्पष्ट कीजिए।
3. पाठ्यक्रम विकास से आप क्या समझते है ?
4. पाठ्यपुस्तक एवं पाठ्यचर्या में क्या अंतर है ?
5. पाठ्यक्रम विकास में अनुसंधान की क्या आवश्यकता है ?

1.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. शर्मा, डा. आर. ए.; पाठ्यक्रम विकास एवं अनुदेशन, आर.लाल बुक डिपो, (2014)

2. पाल, डा. हंसराज एवं पाल; राजेन्द्र; पाठ्यचर्या: कल और और कल, शिप्रा पब्लिकेशन्स, (2006)
3. यादव, डा. सियाराम, पाठ्यक्रम विकास, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा-2, (2010-2011)
4. पाण्डेय, डा. रामशकल; पाठ्यक्रम विशेषांक 1971 (साहित्य परिचय), विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
5. सुखिया, एच.पी.; विद्यालय प्रशासन एवं संगठन, विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा।
6. अग्रवाल, जे.सी.; शिक्षा के सिद्धान्त एवं तकनीकि, आर्य बुक डिपो, (1915)
7. ओड., प्रो. एल.के.; शैक्षिक प्रशासन, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, (2010)
8. National Curriculum Framework, 2005.
9. Khan, Mohammad Sharif; School Curriculum, Ashish Publishing House, N.D. (1995).
10. Chandra, Arvind; Curriculum Development and Education in Education, Sterling Publishers Pvt. Ltd., New Delhi (1977)
11. Sharma, Promila; Encyclopaedia of Curriculum Development (Vol.I), A.P.H. Publishing Corporation, New Delhi (2009)

1.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. पाठ्यक्रम,पाठ्यचर्या एवं पाठ्यसामग्री की अवधारणा स्पष्ट करते हुए तीनों में अंतर बताइए।
2. पाठ्यक्रम निर्माण के सिद्धांतो का वर्णन कीजिए।
3. पाठ्यसामग्री का अर्थ बताते हुए सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए।
4. पाठ्यक्रम विकास एवं पाठ्यक्रम सम्पादन को विस्तारपूर्वक स्पष्ट कीजिए।
5. पाठ्यपुस्तक से आप क्या समझते है ? पाठ्यपुस्तक के निर्माण के सिद्धांतो का वर्णन कीजिए। कक्षा 6 वीं एवं 7 वीं के संस्कृत पाठ्य पुस्तक की समीक्षा कीजिए।

इकाई 2- संस्कृत शिक्षण की पाठ्यपुस्तकों का मूल्यांकन

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 पाठ्यपुस्तकों का अर्थ
2.4 पाठ्यपुस्तक की अवधारणा
2.4.1 पाठ्यपुस्तक की परिभाषा
2.4.2 अच्छी पाठ्यपुस्तक की विशेषताएँ
2.5 संस्कृत-शिक्षण में पाठ्यपुस्तकों का महत्व
2.5.1 पाठ्यपुस्तकों की आवश्यकता एवं महत्व
2.5.2 **भाषा शिक्षण के पुस्तकों का महत्व**
2.6 पाठ्यपुस्तकों के प्रकार
2.6.1 पाठ्यपुस्तक के प्रकार
2.6.2 पाठ्यपुस्तक के भेद
2.7 पाठ्यपुस्तकों के गुण
2.7.1 पाठ्यपुस्तक के गुण
2.7.2 सहायक पाठ्यपुस्तक के आवश्यक गुण
2.8 पाठ्यपुस्तकों के दोष
2.8.1 पाठ्यपुस्तक के दोष
2.8.2 पाठ्यपुस्तक की हानियाँ
2.9 सारांश
2.10 शब्दावली
2.11 अभ्यास प्रश्न
2.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.13 निबंधात्मक प्रश्न

2.3 प्रस्तावना

अर्वाचीन शिक्षा पाठ्य-पुस्तकों पर आधारित है। प्राचीन काल में जब मुद्रणकाल का विकास नहीं हुआ था, तब समस्त विषयों की शिक्षा मौखिक रूप से हुआ कराती थी। आधुनिक युगज्ञान, विज्ञान एवं तकनीकी के अत्याधिक विकास के कारण मौखिक शिक्षा देना असम्भव ही नहीं, दुष्कर कार्य है। यदि यह कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति न होगी कि भाषा की पुस्तकें तो साधन साध्य दोनों रूपों में प्रयोग की

जाती है ।बच्चों को उनके उच्चारण को शुरू करने, पठन कला में निपुण करने, उनकी बोध एवं कल्पना शक्ति का विकास करने, उनकी रचनात्मक वृत्ति को सचेष्ट करने और उन्हें विविध विषयों का ज्ञान कराकर उनका चरित्र निर्माण करने के हेतु प्रयोग करते है।

पाठ्यपुस्तक आधुनिक शिक्षा प्रणाली का मुख्य आधार है। विद्यार्थियों को अपने ज्ञान के विकास के लिए पाठ्य-पुस्तक का ही सहारा लेना पड़ता है। इसलिए विश्व-विद्यालय तथा शिक्षण-मण्डल, विद्यार्थियों की भिन्न-भिन्न परीक्षाओं के लिए पाठ्य-पुस्तकें निर्धारित की जाती है । न केवल विद्यार्थियों के लिए ही, अपितु अध्यापकों के लिए भी पाठ्य-पुस्तकें मार्ग-दर्शन का काम करती है।

2.2 उद्देश्य

पाठ्य-पुस्तक की संज्ञा प्रत्येक पुस्तक को नहीं दी जा सकती है, इसी तथ्य को मद्देनजर रखते हुए **गुड महोदय** के मतानुसार- "एक निश्चित पाठ्यक्रम के अध्ययन के प्रमुख साधन के रूप में एक निश्चित शैक्षिक स्तर पर प्रयुक्त करने के लिए एक निश्चित विषय पर व्यवस्थित ढंग से लिखी हुई पुस्तक पाठ्य-पुस्तक है।"

इस इकाई से आप जानेंगे-

- पाठ्यपुस्तक की अवधारणा
- पाठ्यपुस्तक की आवश्यकताएँ
- पाठ्यपुस्तक का महत्व
- पाठ्यपुस्तक के प्रकार
- पाठ्यपुस्तक के गुण
- पाठ्यपुस्तक के दोष
- पाठ्यपुस्तक से जुड़े अन्य तथ्य

2.3 पाठ्यपुस्तकों का अर्थ

अर्वाचीन शिक्षा पाठ्य-पुस्तकों पर आधारित है।प्राचीन काल में जब मुद्रणकाल का विकास हुआ था, तब समस्त विषयों की शिक्षा मौखिक रूप से हुआ करती थी।आधुनिक युग ज्ञान, विज्ञान एवं तकनीकी के अत्याधिक विकास के कारण मौखिक शिकाहा देना असम्भव ही नहीं, दुष्कर कार्य है यदि यह कहा जाए तो कोई अतिश्योक्ति न होगी कि भाषा की पुस्तकें तो साधन साध्य दोनों रूपों में प्रयोग की जाती है।बच्चों को उनके उच्चारण को शुरू करने, पठन कला में निपुण करने, उनकी बोध एवं शक्ति का विकास करने,

उनकी रचनात्मक वृत्ति को सचेष्ट करने और उन्हें विविध विषयों का ज्ञान करा कर उनका चरित्र निर्माण करने के हेतु प्रयोग करते है।

2.4 पाठ्यपुस्तक की अवधारणा

प्राचीन भारत में पाठ्य-पुस्तक के लिए ग्रन्थ शब्द का प्रचलन था। ग्रन्थ का अर्थ है- गूँथना,बाँधना,नियमित ढंग से जोडना, क्रम से रखना आदि। भोज-पत्र या ताड़पत्र को आचार्य लोग अपने शिष्यों के समक्ष क्रम से रखते थे। उनमें बीच में छेद करके किसी धागे से गूँथ भी देते थे। इसीलिए उन्हें ग्रन्थ कहा जाता था। अंग्रेजी का 'बुक' शब्द जर्मन भाषा के 'बीक' (beach) शब्दसे व्युत्पन्न माना जाता है, जिसका अर्थ है- वृक्ष। फ्रांसीसी भाषा में भी इसका संबंध वृक्ष छाल या तख्ती पर लिखने से हे।

आज पाठ्य-पुस्तक की संज्ञा प्रत्येक पुस्तक को नहीं दी जा सकती। **गुड** के अनुसर,''एक निश्चित पाठ्यक्रम के अध्ययन के प्रमुख साधन के रूप में एक निश्चित शैक्षिक स्तर पर प्रयुक्त करने के लिए एक निश्चित विषय पर व्यवस्थित ढंग से लिखी हुई पुस्तक पाठ्य-पुस्तक है।''**क्रोनबैक** ने ठीक ही कहा है कि ''पुस्तक प्राय: अप्रौढ़ छात्र के लिए लिखी जाती है।''

पाठ्यक्रम शैक्षिक उद्देश्यों का एक महत्वपूर्ण साधन है तथा पाठ्यक्रम-निर्माण शिक्षा-प्रक्रिया का महत्वपूर्ण अंग है, क्योंकि यह उद्देश्यों की पूर्ति के लिए प्रारम्भिक एवं मूलभूत आधार है । पाठ्यक्रम-निर्माण के उपरांत अनुदेशात्मक सामग्री के निर्माण एवं प्रयोग दूसरा महत्वपूर्ण पक्ष है । इसके आभाव में शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया सफल नहीं हो सकती । वर्तमान में अनुदेशात्मक सामग्री के विभिन्न रूप इस प्रकार है-

v. पाठ्य-पुस्तकें (Text-Books)
vi. पाठ्य-संदर्शिका (Curriculum guides)
vii. समृद्धकारी सामग्री-अनुपूरक पुस्तकें (Enrich-Material)
viii. दृश्य-श्रव्य सामग्री (Audio-Visual Aids)

2.3.3पाठ्यपुस्तक की परिभाषा-

c. **Harolicker के अनुसार-** *'पाठ्य-पुस्तक ज्ञान, आदतों, भावनाओं, क्रियाओं तथा प्रवृतियों का सम्पूर्ण योग है ।'*

d. **Lange के अनुसार** – *'यह अध्ययन क्षेत्र की किसी शाखा की एक प्रमाणित पुस्तक होती है।'*

i. अच्छी पाठ्यपुस्तक की विशेषताएँ

एक अच्छी पाठ्य-पुस्तक में निम्नलिखित गुणों का होना आवश्यक होता है-

h. विषय-वस्तु का प्रस्तुतीकरण बालकों के मानसिक के अनुरूप।
i. विषय-वस्तु का संगठन तार्किक एवं मनोवैज्ञानिक।
j. भाषा-शैली में सरलता, स्पष्टता, मौलिकता एवं प्रवाहशीलता।
k. छात्रों में स्वयं पढने की रुचि विकसित कर सकने की क्षमता।
l. अध्यायों के आकार बालकों के स्तर एवं क्षमताओं के अनुरूप।
m. विषय-वस्तु का प्रस्तुतीकरण शिक्षण-उद्देश्यों एवं मूल्यों के अनुरूप।
n. विषय-वस्तु के अनुकूल चित्रों, मानचत्रों, रेखाचित्रों आदि का प्रस्तुतीकरण।

2.5 संस्कृत-शिक्षण में पाठ्यपुस्तकों का महत्व

पाठ्य-पुस्तक मानव की एक महत्वपूर्ण रचना है। मनुष्य अपने अनुभवों, विचारों एवं अनुभूतियों का पुस्तक के रूप में संचय करता है। पाठ्य-पुस्तक ज्ञान संचय का साधन है जिसका लाभ नई पीढ़ी को होता है। पुस्तकों के माध्यम से संचित ज्ञान को शिक्षक अपने छात्रों को प्रदान करता है। मानवीय ज्ञान संचय एवं संचार का साधन पुस्तक है। आज के तकनीकी एवं कम्प्यूटर युग में पुस्तकों के अतिरिक्त आधुनिक साधनों एवं माध्यमों का विकास हो रहा है। टेपरिकॉर्डर, विडियोटेप, फ्लॉपी, माइक्रोफिल्म आदि का विकास हुआ है।

2.5.1 पाठ्यपुस्तकों की आवश्यकता एवं महत्व

पाठ्य-पुस्तक की आवश्यकता एवं महत्व को निम्नलिखित कारणों से स्वीकार किया जाता है-

vi. पाठ्य-पुस्तक में निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुसार विषय का संगठित ज्ञान एक स्थान पर मिल जाता है।
vii. पाठ्य-पुस्तकें शिक्षकों एवं छात्रों के लिए मार्ग-दर्शक का कार्य करती है।
viii. पाठ्य-पुस्तकों के द्वारा शिक्षकों एवं छात्रों को यह जानकारी मिलती है कि किसी कक्षा-स्तर के लिए कितनी विषय-वस्तु का अध्ययन-अध्यापन करना है।
ix. पाठ्य-पुस्तकों के माध्यम से स्वाध्याय द्वारा ज्ञान प्राप्त करने में छात्रों को प्रेरणा प्राप्त होती है।
x. पाठ्य-पुस्तकें छात्रों को विषय-वस्तु को संकलित करने में सहायता प्रदान करती है।

2.5.2 भाषा शिक्षण के पुस्तकों का महत्व

i. **पुस्तकें : हमारी मित्र** – पुस्तकें हमारी मित्र हैं। वे अपना अमृत-कोष सदा हम पर न्योछावर करने को तैयार रहती हैं। अच्छी पुस्तकें हमें रास्ता दिखाने के साथ-साथ हमारा मनोरंजन भी

करती हैं। बदले में वे हम से कुछ नहीं लेतीं, नही परेशान या बोर करती हैं। इससे अच्छा और कौन-सा साथी हो सकता है कि जो केवल कुछ देने का हकदार हो, लेने का नहीं।

ii. **पुस्तकें : प्रेरणा का स्त्रोत** – पुस्तकें प्रेरणा की भंडार होती हैं। उन्हें पढ़कर जीवन में कुछ महान कर्म करने की भावना जागती है। महात्मागाँधी को महान बनाने में गीता, टालस्टाय और थोरो का भरपूर योगदान था। भारत की आज़ादी का संग्राम लड़ने में पुस्तकों की भी महत्वपूर्ण भूमिका थी।

iii. **पुस्तकें : विकास की सूत्रधार** – पुस्तकें ही आज की मानव-सभ्यता के मूल में हैं। पुस्तकों के द्वारा एक पीढ़ी का ज्ञान दूसरी पीढ़ी तक पहुँचते-पहुँचते सारे युग में फ़ैल जाता है। विपिल महोदय का कथन है – "पुस्तकें प्रकाश-गृह हैं जो समय के विशाल समुद्र में खड़ी की गई हैं।" यदि हज़ारों वर्ष पूर्व के ज्ञान को पुस्तकें अगले युग तक न पहुँचती तो शायद एक वैज्ञानिक सभ्यता का जन्म न होता।

iv. **प्रचार का साधन** – पुस्तकें किसी भी विचार, संस्कार या भावना के प्रचार का सबसे शक्तिशाली साधन हैं। तुलसी के 'रामचरितमानस' ने तथा व्यास-रचित महाभारत ने अपने युग को तथा आने वाली शताब्दियों की पूरी तरह प्रभावित किया। आजकल विभिन्न सामाजिक आंदोलन तथा विविध विचारधाराएँ अपने प्रचार-प्रसार के लिए पुस्तकों को उपयोगी अस्त्र के रूप में अपनाती हैं।

v. **मनोरंजन का साधन** – पुस्तकें मानव के मनोरंजन में भी परम सहायक सिद्ध होती हैं। मनुष्य अपने एकांत क्षण स्तकों के साथ गुजार सकता है। पुस्तकों के मनोरंजन में हम अकेले होते हैं, इसलिए मनोरंजन का आनंद और अधिक गहरा होता है। इसलिए किसी ने कहा है– "पुस्तकें जागत देवता है। उनकी सेवा करके तत्काल वरदान प्राप्त किया जा सकता है।"

2.6 पाठ्यपुस्तकों के प्रकार

विद्यालयों में होने वाला समस्त अध्ययन-अध्यापन तथा कार्य-कलाप वैसे साधारणतया बहुत सरल सी बात प्रतीत होती है, किन्तु बात वस्तुतः ऐसा नहीं है। विद्यालयों का सम्पूर्ण कार्यक्रम शिक्षा विज्ञान के सुदृढ़ आधारों, सिद्धांतों, उद्देश्यों आदि के अनुरूप होती है। पाठ्यपुस्तक से हमें सरलतया सुस्पष्ट हो जाता है कि किसको किस रूप में क्या करना है तथा इसी के अनुरूप विद्यालय की शिक्षण व्यवस्था, विभिन्न अन्य कार्यकलाप तथा व्यवस्थाएं होती है। इसी आधार पर पाठ्यपुस्तक को विभिन्न वर्गों में बांटा जाता है।

2.6.1 पाठ्यपुस्तकों के प्रकार

मोटे रूप में पाठ्य-पुस्तकें दो प्रकार की होती हैं-

(क) विस्तृत अध्ययन के लिए, तथा

(ख) सहायक पुस्तकों के लिए।

(क) विस्तृत अध्ययनके लिएजो पुस्तकें होती हैं, वहाँ हमारा प्रयोजन होता है कि बालकों का शब्द–भण्डार तथा सूक्ति-भण्डार बढ़े। दूसरे शब्दों में, हम ऐसा कह सकते हैं कि जिन शब्दों, सूक्तियों तथा लोकोक्तियों का समावेश पाठ्यपुस्तक में हुआ है, बालक उनका ठीक-ठीक प्रयोग कर सकें।

(ख) सहायक पुस्तकों को हम द्रुत वाचन की पुस्तकें भी कह सकते हैं। यहाँ हमारा प्रयोजन शब्दार्थ समझाना अथवा व्याख्या करना नहीं, अपितु तीव्र गति से वाचन का अभ्यास कराना है। विद्यार्थी जल्दी से जल्दी पुस्तक पढ़कर भावार्थ समझ लें; यही इस प्रकार की पुस्तकों का उद्देश्य है। कहीं-कहीं आवश्यकता पड़ने पर विद्यार्थी अध्यापक की सहायता ले सकता है, अथवा शब्दकोश देख सकता है।

2.7 पाठ्य पुस्तकों के भेद

पाठों के भेद जानने के पूर्व हमें यह जान लेना आवश्यक है कि मनोवैज्ञानिकों ने मानसिक अनुभवों को तीन अंगों में बाँटा है- (3) ज्ञान , (2) अनुभूति, (3) क्रिया। इन अंगों को एक-दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। बिना अनुभूति तथा क्रिया के हम किसी ज्ञान की कल्पना नहीं कर सकते हैं। इसी प्रकार अन्य अंग भी दूसरे दो अंगों से अलग नहीं किये जा सकते हैं। मानसिक अनुभवों के अंगों के आधार पर हमारे पाठ भी तीन प्रकार के हो सकते हैं-

1. ज्ञान के पाठ।
2. रसानुभूति के पाठ।
3. कौशल के पाठ।

(1) ज्ञान के पाठ- ज्ञान के पाठ से हमारा तात्पर्य उन पाठों से है जिनसे बालक किसी प्रकार का ज्ञान प्राप्त करता है और अपने ज्ञान को विकसित करता है। ज्ञान प्राप्त करने के लिये दो साधन प्रयोग में लाये जाते हैं- (अ) दूसरों से तथा (ब) स्वयं चिन्तन करके और खोज करके। पहले प्रकार के पाठों में अध्यापक को अधिकांश बाते विद्यार्थियों को स्वयं बतलानी होती हैं। दूसरे प्रकार के पाठों में विद्यार्थी को ज्ञान प्राप्ति के लिये चिन्तन करना पड़ता है और अन्वेषण द्वारा स्वयं अपने ज्ञान का विकास करना होता है। ज्ञान के पाठ के अन्तर्गत विज्ञान, इतिहास, भूगोल,गणित, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, कुछ भाषा पाठ आदि को रखा जा सकता है।

(2) रसानुभूति के पाठ- रसानुभूति के पाठ वे हैं जिनमें बालक को सौन्दर्य की अनुभूति होती है। वह किसी 'रस' का अनुभव करता है। इस प्रकार के पाठों के अन्तर्गत कविता, साहित्य, कला, संगीत आदि के पाठों को रखा जा सकता है। इस प्रकार के पाठ को केवल निपुण अध्यापक ही पढ़ा सकता है क्योंकि ऐसे पाठों में एक उचित प्रकार का वातावरण उपस्थित करना होता है। इस प्रकार के पाठों की शिक्षण विधि ज्ञानात्मक पाठों की शिक्षण विधि से भिन्न होती है।

(3) कौशल के पाठ- कौशल के पाठ में बालक स्वयं क्रिया द्वारा तथा प्रयोग द्वारा सीखता है। कौशल के पाठों में बालक को अपनी मौलिकता दिखलाने का अवसर प्राप्त होता है। इन पाठों के अन्तर्गत हस्तकला, चित्रकला, चर्मकला, काष्ठकला, लिखना, पढ़ना, नवीन भाषा आदि रखे जा सकते हैं। इस प्रकार के पाठों में अभ्यास की आवश्यकता पड़ती है। इन पाठों की चर्चा के लिए 'उद्देश्य' और 'अपेक्षित योग्यताएँ' नामक अध्यायों का अवलोकन करना उपयोगी होगा।

2.8 पाठ्यपुस्तक के गुण

पाठ्य-पुस्तक के गुणों की चर्चा करने से पूर्व, हमें उसके दो रूपों को समझ लेना आवश्यक है। पहला- आन्तरिक रूप, और दूसरा- बाह्य रूप।

आन्तरिक रूप में हम पाठ्य-पुस्तक की भाषा-शैली, पाठ्य-विषय आदि की चर्चा करते हैं। **बाह्य रूप** में पाठ्य-पुस्तक के आवरण, आकार-प्रकार, रूप-रंग तथा मुद्रण आदि पर विचार होता है।

2.7.1 पाठ्यपुस्तक के गुण

पाठ्य-पुस्तकों में निम्नलिखित गुण होने आवश्यक हैं-

(१) उपयुक्ता-बालकों के विकास की जो भिन्न-भिन्न अवस्थाएँ हैं, पाठ्य-पुस्तकें उसके अनुरूप ही हों। प्रारम्भिक कक्षाओं में बालकों को अद्भुत कथाएँ; जैसे- अप्सराओं की कहानियाँ, और माध्यमिक अवस्था में जीवनियाँ और जानवरों की कहानियाँ अच्छी लगती है। अत: पाठ्य-पुस्तकों में भी इन्हीं विषयों का समावेश होना चाहिए।

(२) क्रम का होना- पाठ्य-पुस्तकों का पाठ्य-विषय किसी क्रम के अनुसार होना चाहिए; जैसे- बालकों की क्रमश: बढ़ती हुई आयु के अनुसार क्रम। भाषा-शैली तथा शब्दों के चयन के संबंध में भी क्रम होना चाहिए। पाठ्य-पुस्तकों की भाषा न तो अत्यन्त सरल ही होनी चाहिए, न अत्यन्त कठिन। वह धीरे-धीरे 'सरलता से जटिलता' की ओर बढ़नी चाहिए।

(३) अभ्यास- जिन शब्दों को बालक पहले पढ़ चुके हैं, उनका व्यवहार आगे के पाठों में किया जाए, ताकि बालक उनसे अभ्यस्त हो जायँ और वे इन शब्दों का प्रयोग ठीक-ठीक ढंग से कर सकें।

(४) सार्थकता- पाठ्य-पुस्तकों में ऐसे वाक्य न हों, जो अलग से दिखें और जिनका आपस में कोई संबंध न हो। पाठ्य-विषय में एकता होनी चाहिए और उनका विभाजन भिन्न-भिन्न अनुच्छेदों में हो। एक अनुच्छेद दूसरे अनुच्छेद से, एक वाक्य दूसरे वाक्य से संबंधित हो। ऐसा होने पर ही पाठ्य-पुस्तक में सार्थकता संबंधी गुण आएगा।

(५) **रोचकता-**पाठ्य-विषय ऐसा हो, जिसमें विद्यार्थी रुचि रखें। गद्य के पाठों में छोटी और सरल कहानियाँ था सरल वर्णनात्मक लेख हों।

(६) **विषय-विविधता-** पाठ्य-पुस्तकों के विषयों में विविधता होना आवश्यक है। उनमें भिन्न–भिन्न विषयों पर लेख होने चाहिए; जैसे- इतिहास, अविष्कार आदि।

(७) **उचित परिमाण में कविताओं का होना-** पाठ्य-पुस्तकों में यथेष्ट परिमाण में कविताएँ भी होनी चाहिए। प्रारंम्भिक अवस्था में बातचीत तथा साधारण तुकबन्दी की कविताएँ रखी जाएँ। बाद में धीरे-धीरे वर्णनात्मक तथा रचनात्मक कविताओं को भी स्थान दिया जा सकता है।

(८) **भिन्न-भिन्न प्रदेशों से संबंधित होना-** जो कहानियाँ, लेख, कविताएँ इत्यादि हों- उनका संबंध किसी एक प्रदेश तक ही सीमित न हो, अपितु उनमें भिन्न-भिन्न प्रदेशों तथा विदेशों के जीवन की झलक भी हो, जिससे कुछ समय के पश्चात् विद्यार्थी राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण को समझ सके।

(९) **साहित्य की सभी धाराओं का समावेश होना-** पाठ्य-पुस्तकों के अंदर साहित्य की सभी धाराओं का; जैसे- कविता, कहानी, नाटक, जीवनी, वार्त्तालाप, पत्र, वर्णनात्मक लेख, निबंध इत्यादि के दर्शन होने चाहिए, जिससे विद्याथी भी उनसे परिचित हो सकें।

(१०) **मौलिकता की रक्षा-** प्राय:पाठ्य-पुस्तकों के संपादक, किसी लेखक की रचना को या तो संक्षिप्त कर देते हैं, अथवा उन रचना का वर्णन अपने शब्दों में कर देते हैं। इससे रचना की सारी मौलिकता नष्ट हो जाती है और विद्यार्थियों को लेखक की मूल रचना का परिचय नहीं मिल पाता। अतएव अन्य प्रान्तीय भाषाओं की रचना को छोड़कर शेष सभी रचनाएँ मूल रूप में दी जाएँ तो अधिक अच्छा रहेगा। जहाँ पर रचनाएँ बहुत लंबी हो वहाँ उनका कुछ अंश दिया जा सकता है।

(११) **रचनाओं का आकार-** इस बात का ध्यान रखा जाय कि पाठ्य-पुस्तकों में जो भी रचनाएँ हीं, वह इतनी बड़ी हों जो ३५ अथवा ४० मिनट की अवधि में पूरी हो सकें।

(१२) **उपयोगी चित्र-** इस बात का यत्न किया जाना चाहिए कि वर्णित विषय से संबंधित चित्र पाठों के साथ लगा दिया जाएँ। इससे बालक पाठ में अधिक रुचि लेंगे।

2.7.2 पाठ्यपुस्तक के लाभ

i. पाठ्य-पुस्तक के द्वारा अध्यापक को पाठ्यक्रम के ढाँचे तथा उसकी सीमा का ज्ञान होता है। पाठ्य-पुस्तक को लेखक अपने वर्षों के अनुभवों तथा अन्वेषणों के आधार पर लिखते हैं और पाठ्य-वस्तु को इस प्रकार व्यवस्थित रूप मे संगठित करते हैं कि अध्यापकों को पाठ्य-वस्तु को विद्यार्थियों के सन्मुख प्रस्तुत करने में सरलता होती है। पाठ्य-पुस्तकों को विभिन्न कक्षा के छात्रों

के मानसिक स्तर के अनुसर लिखा जाता है इसलिये अध्यापकों को अपने शिक्षण कार्य में अधिक सहायता मिलती है। यद्यपि आधुनिक काल की पाठ्य-पुस्तकों में बहुत कुछ दोष हैं फिर भी यह कहा जा सकता है कि पाठ्य-पुस्तकों से उन अध्यापकों को पाठ्य-वस्तु को व्यवस्थित करने में अधिक सहायता मिलती है जिनको शिक्षण का अधिक अनुभव न हो।

ii. पाठ्य-पुस्तकों की सहायता से वह समय नष्ट होने से बचाया जा सकता है जो अभ्यास-कार्य तथा गृह-कार्य को श्रुत लेख से लिखाने में लगता है।

iii. पाठ्य-पुस्तक में लेखक सोच-विचार कर विभिन्न स्तर के प्रश्न क्रमानुसार लिखता है। अत: अध्यापक को विभिन्न स्तर के छात्रों को प्रश्न देने में सरलता होती है। उसे नये प्रश्न नहीं बनाने पड़ते।

iv. कक्षा में पढ़ी हुइ अथवा सुनी हुई बातें छात्रों को कक्षा में याद नहीं हो पाती है। उन्हें दोहराने की आवश्यकता होती है। अत: पाठ्य-पुस्तक की इसके लिये सबसे सरल साधन है। छात्र घर में विषय की रीति को पाठ्य-पुस्तक से दोहरा सकता है और पुस्तक में दिये गये प्रश्नों को करके अपना ज्ञान दृढ़ कर सकता है।

v. छात्रों को स्वतन्त्रापूर्वक अध्ययन करने में पाठ्य-पुस्तक ही लाभदायक सिद्ध होती है।

vi. बालकों को सामूहिक रूप से पढ़ाने में भी पाठ्य-पुस्तक सहायक सिद्ध होती है।

जब कभी अध्यापक कक्षा में नहीं पहूँच पाता है तो ऐसे अवसर पर विद्यार्थी पाठ्य-पुस्तकों को पढ़कर समय का सदुपयोग कर सकते हैं। इससे अनुशासन भंग नहीं हो पाता।

2.7.2 सहायक पाठ्यपुस्तक के आवश्यक गुण

i. भाषा तथा शब्दावली

इन पुस्तकों की भाषा पाठ्यपुस्तकों से सरल होनी चाहिए तथा इनमें उन शब्दों का प्रयोग होना चाहिए, जिन्हें छात्र पाठ्यपुस्तक में पढ़ चुके है। इससे उनका अभ्यास पक्का हो जाएगा।

ii. विषय

पाठ ऐसे हो,जिनमें बालक रुचि लें तथा वे एक ही विषय से संबंधित हो तो अधिक अच्छा रहेगा।

iii. आवृत्यात्मक प्रश्न

पाठ केअन्त में ऐसे प्रश्न हो, जिनका सम्बन्ध पाठ्य-विषय के सार से हो।

2.8 पाठ्यपुस्तक के दोष

शिक्षा के माध्यम से लोगों की सोच को नियंत्रित किया जा सकता है। बहुत से लोग अभी भी इस बात में गहरा विश्वास रखते हैं।ऐसे विचार में विश्वास करने वाले ऐसी पाठ्यपुस्तकें बनाते हैं, जिससे किसी ख़ास

सोच को बढ़ावा दिया जा सके।पर सही मायने में शिक्षा तो हमें दायरों को तोड़ना और उससे निकलकर आगे बढ़ाना सिखाती है।वह लोगों के विचारों को ख़ास सोच में क़ैद करने की पैरोकार नहीं होती।बच्चों की किताबों का उद्देश्य उनको पढ़ना लिखना और अपने विचारों को मौलिक ढंग से व्यक्त करने-में समर्थ बनाना होना चाहिए।

हमें उनको 'रेडीमेड विचार' देने की बजाय सोचने-विचारने का अवसर देना चाहिए ताकि वे अपनी क्षमताओं का विकास कर सकें।स्कूलों को 'रेडीमेड विचारों' की फैक्ट्री में तब्दील करना, एक ऐसी पीढ़ी को तैयार करना है जो समस्याओं के समाधान का खुद प्रयास करने की बजाय, किसी अन्य से समाधान की अपेक्षा रखेगी।

2.8.1 पाठ्यपुस्तक के दोष

शिक्षा में पाठ्यचर्या का मूर्त रूप पाठ्यक्रम में दिखाई देता है। कोई भी पाठ्यपुस्तक पाठ्यक्रम के आधार पर लिखी जाती है। राज्य सरकारों में बदलाव के साथ पाठ्यपुस्तकों में भी बदलाव की प्रवृत्ति भारत में दिखाई देती है।

एनसीईआरटी की बच्चों के लिए कहानी की किताबें के विषय में एक प्रसंग यह आता है कि ऐसी कहानी का क्या लाभ है जिससे बच्चों को कोई नैतिक शिक्षा न मिल रही हो।ऐसी ही एक कहानी में एक बच्ची के स्कूल के पास लगे आम के पेड़ से चुपचाप पका आम तोड़ने और खाकर सो जाने का जिक्र आता है, इसके बारे में विरोधी खेमे का कहना था कि आप लोग बच्चों को चोरी करना सिखा रहे हैं। जबकि इन किताबों का असल मक़सद बच्चों को पढ़ना सीखने की प्रक्रिया में रोचक पठन सामग्री उपलब्ध करवाना था।

यह तो कहानी के किताबों की बात थी। अगर पाठ्य पुस्तकों की बात करें तो उसके लिए भी ऐसी ही प्रक्रिया से होकर गुजरना होता है। आजकल सरकारी और निजी दोनों जगह पर पढ़ने वाले बच्चे पासबुक का सहारा लेते हैं। वे मानते हैं कि पासबुक अच्छा नंबर पाने का एक माध्यम है। स्कूल में शिक्षक भी तो पासबुक का ही सहारा लेते हैं तो फिर क्यों हम ख़ुद से किसी सवाल का उत्तर लिखने की परेशानी उठाएं। पासबुक के बहुत से ख़तरे हैं मसलन एक शिक्षक को अपनी क्लास में बच्चों को जो माहौल देना चाहिए, वे उससे बचने की कोशिश करते हैं। वे बच्चों के लिए ख़ुद से नोट्स नहीं बनाते।

इससे बच्चों को कक्षा में पढ़ने वाला उस आनंद का एहसास नहीं होता जिसमें वे ख़ुद से सवालों का जवाब खोजने की कोशिश करते हैं। सवाल भले एक जैसे हों मगर सबके जवाब अलग-अलग होते हैं। जब वे किसी सवाल के जवाब में तब्दील होने की प्रक्रिया से होकर गुजरते हैं, तो उनको यह बात भी समझ में आती है कि जीवन में भी हमें बहुत से सवालों का जवाब ख़ुद से खोजना होता है। वहां हमारे सवालों के जवाब किसी पासबुक या किताब में पहले से लिखे नहीं होते। पहले से लिखे जवाब वास्तव में पाठ्यपुस्तकों के महत्व को कम कर रहे हैं और बच्चों को सोचने की क्षमता का विकास करने से वंचित कर रहे हैं।

शिक्षा के नाम पर होने वाली राजनीति के गहरे निहितार्थ हैं। हर राजनीतिक दल की हसरत होती है कि वह ऐसे लोगों को तैयार करे, जो उनकी विचारधारा के प्रभाव में आजीवन बंधे रहें। इस मामले में कांग्रेस हो या बीजेपी। दोनों एक जैसे हैं। सत्ता में बदलाव के साथ पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकों में बदलाव का यह खेल पुराना है। मगर जिस हड़बड़ी में इस प्रक्रिया को पूरा किया गया है, उसे लेकर विशेषज्ञ और शिक्षाविद् दोनों सवाल उठा रहे हैं।

पहली नज़र में किताबों में बदलाव का कार्यक्रम ख़ासकर हिंदी के संदर्भ में तो कॉपी-पेस्ट का मामला लगता है। बहुत सारी चीज़ों को जगह-जगह से बिना सोचे-समझे उठा लिया गया है। इस काम को अगर उस क्षेत्र के विशेषज्ञों से राय लेकर किया जाता तो शायद इस बदलाव को ज्यादा बेहतर बनाया जा सकता था। मगर अभी तो लोगों की नज़रे इतिहास में बदलाव से उपजे विवाद पर टिकी हुई हैं।

आठवीं कक्षा के सामाजिक विज्ञान की किताब से भारत के पहले प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू का नाम हटा तो शोर हो रहा है कि पाठ्यक्रम बदल रहा है। अगर ऐसा विवाद नहीं होता तो शायद लोगों को पता भी नहीं चलता कि राजस्थान में पाठ्यपुस्तकें बदल रही हैं। इस बदलाव से पहले आठवीं कक्षा में 'भारत की खोज' नाम से हिंदी विषय की पूरक पुस्तक चल रही थी।इस किताब के कवर पेज़ पर नेहरू की कोई तस्वीर नहीं है। मगर भीतर के पन्नों में नेहरू का नाम पहले पाठ से लेकर किताब खत्म होने तक बार-बार आता है। पूरे प्रभाव के साथ आता है।

2.8.2 पाठ्यपुस्तक के हानियाँ

पाठ्यपुस्तक से कुछ निम्नलिखित हानियाँ भी है –

(क) कभी-कभी अध्यापक विद्यार्थियों को उतनी ही बात बतलाने का प्रयत्न करते है जो पाठ्यपुस्तक में लिखी जाती है। इससे विद्यार्थियों का ज्ञान संकुचित हो जाता है। पाठ्य-पुस्तक को रटकर ज्ञान प्राप्त कर लेना विद्यार्थियों का मुख्य उद्देश्य हो जाता है। वे विषय का विस्तृत ज्ञान करने में रुचि नहीं ले पाते है।

(ख) वर्तमान पाठ्य –पुस्तकों में मौलिकता नहीं होती। पाठ्य-पुस्तक में पाठ असंबंधित रूप में लिखे रहते हैं। लेखक पाठ्यक्रम में दिये गये प्रकरणों को पाठ्य-पुस्तक में लिखने का प्रयत्न करते हैं। उनका ध्यान इस बात की ओर रहता है कि सभी प्रकरणों के संबंध में पाठ्य-पुस्तक में चर्चा की जाये। वे पाठ्य-पुस्तककी शैली, क्रम तथा उसकी रोचकता का ध्यान नहीं देते है। ऐसी पाठ्य-पुस्तकों में बालक रुचि नहीं ले पाते हैं।

(ग) पाठ्य-पुस्तकों की सहायता से पढ़ाने पर बालकों को स्वयं अन्वेषण द्वारा सीखने का अवसर नहीं मिल पाता। वे विषय-वस्तु को पहले ही पाठ्य-पुस्तकों में पढ़ लेते हैं और उसे ग्रहण कर लेते हैं।

(घ) पाठ्य-पुस्तकों के द्वारा पढ़ाये जाने के कारण आज के युग में पाठ्य-पुस्तकों को रटना ही एक प्रकार से शिक्षा का उद्देश्य हो गया है। इससे बालकों में रटने की बुरी प्रवत्ति उत्पन्न हो जाती है और बहुत कुछ अहित होता है।

(ङ) पाठ्य-पुस्तकों की सहायता से पढ़ने पर हमारा पाठ्यक्रम सैद्धान्तिक हो जाता है न कि व्यावहारिक जोकि सर्वदा अनुचित है। ऐसी परिस्थितियों में छात्र केवल उन बातों को सीखने का प्रयत्न करते हैं जो सैद्धान्तिक रूप से पाठ्य-पुस्तकों में लिखी रहती हैं। वे उन्हें व्यावहारिक रूप से नहीं सीख पाते हैं।

(च) इतना सब कुछ होते हुये भी यदि अच्छी पाठ्य-पुस्तकों का प्रयोग किया जाये और उन्हें अच्छे ढंग से प्रयोग किया जाये तो वे एक बहुमूल्य उपकरण बन सकती हैं। वास्तविक बात तो यह है कि पाठ्य-पुस्तकों का कोई दोष नहीं है। दोष है उनके बनाने की विधि का तथा उनको प्रयोग करने की विधि का।

2.9 सारांश

पाठ्यपुस्तक आधुनिक शिक्षा प्रणाली का मुख्य आधार है। विद्यार्थियों को अपने ज्ञान के विकास के लिए पाठ्य-पुस्तक का ही सहारा लेना पड़ता है। इसलिए विश्व-विद्यालय तथा शिक्षण-मण्डल, विद्यार्थियों की भिन्न-भिन्न परीक्षाओं के लिए पाठ्य-पुस्तकें निर्धारित की जाती है । न केवल विद्यार्थियों के लिए ही, अपितु अध्यापकों के लिए भी पाठ्य-पुस्तकें मार्ग-दर्शन का काम करती है।

पाठ्यक्रम शैक्षिक उद्देश्यों का एक महत्वपूर्ण साधन है तथा पाठ्यक्रम-निर्माण शिक्षा-प्रक्रिया का महत्वपूर्ण अंग है, क्योंकि यह उद्देश्यों की पूर्ति के लिए प्रारम्भिक एवं मूलभूत आधार है । पाठ्यक्रम-निर्माण के उपरांत अनुदेशात्मक सामग्री के निर्माण एवं प्रयोग दूसरा महत्वपूर्ण पक्ष है । इसके आभाव में शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया सफल नहीं हो सकती ।

पाठ्य-पुस्तक में लेखक सोच-विचार कर विभिन्न स्तर के प्रश्न क्रमानुसार लिखता है। अत: अध्यापक को विभिन्न स्तर के छात्रों को प्रश्न देने में सरलता होती है। उसे नये प्रश्न नहीं बनाने पड़ते।

कक्षा में पढ़ी हुइ अथवा सुनी हुई बातें छात्रों को कक्षा में याद नहीं हो पाती है। उन्हें दोहराने की आवश्यकता होती है। अत: पाठ्य-पुस्तक की इसके लिये सबसे सरल साधन है। छात्र घर में विषय की रीति को पाठ्य-पुस्तक से दोहरा सकता है और पुस्तक में दिये गये प्रश्नों को करके अपना ज्ञान दृढ़ कर सकता है।

2.10 शब्दावली

1. पाठ्यपुस्तक- पाठ्य-पुस्तक ज्ञान, आदतों, भावनाओं, क्रियाओं तथा प्रवृतियों का सम्पूर्ण योग है।

2.11 अभ्यास प्रश्न

प्रश्न 3) पाठ्यपुस्तक की परिभाषा दीजिए ।

प्रश्न 2)पाठ्यपुस्तक की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

प्रश्न 3)पाठ्यपुस्तक का क्या अर्थ है ? उसके महत्व को स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न 4)पाठ्यपुस्तक के कितने प्रकार है ?

प्रश्न 5)पाठ्यपुस्तक के गुणों का वर्णन कीजिए है ?

प्रश्न 5)पाठ्यपुस्तक के दोषों को स्पष्ट कीजिए?

2.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भाई, योगेन्द्रजीत; हिंदी भाषा शिक्षण, विनोदपुस्तकमन्दिरआगरा, (3935)
2. पाल, डा. हंसराजएवंपाल; राजेन्द्र; पाठ्यचर्या: कलऔरऔरकल, शिप्रापब्लिकेशन्स, (2006)
3. यादव, डा. सियाराम, पाठ्यक्रमविकास, अग्रवालपब्लिकेशन्स, आगरा-2, (2030-2033)
4. पाण्डेय, डा. रामशकल; संस्कृत शिक्षण, विनोदपुस्तकमन्दिर, आगरा (2005)
5. शर्मा, डॉ. लक्ष्मीनारायण, भाषा 3, 2 की शिक्षण विधियाँ एवं पाठ नियोजन, 3994
6. शर्मा, डॉ- उषा, संस्कृत शिक्षण, स्वाति पब्लिकेशन्स, जयपूर
7. मित्तल, डॉ. संतोष, संस्कृत शिक्षण, आर. लाल. बुक डिपो, 2030

2.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. पाठ्यपुस्तक की अवधारणा स्पष्ट करें और उसकी विशेषताओं का विस्तृत वर्णन करें।
2. पाठ्यपुस्तक के महत्व को स्पष्ट करें। संस्कृत पाठ्यपुस्तक के महत्वों को स्पष्ट करें। संस्कृत पाठ्यपुस्तक के किसी एक पाठ का विश्लेषण करें ।
3. पाठ्यपुस्तक का अर्थ स्पष्ट करते हुए उसके प्रकार का वर्णन करें।
4. संस्कृत पाठ्यपुस्तक के गुणों का उदाहरण सहित वर्णन करें।
5. पाठ्यपुस्तक के दोषों को स्पष्ट करते हुए कक्षा आठवीं एवं नवमीं के संस्कृत पाठ्यपुस्तकों का विश्लेषण करें तथा उसके गुण और दोष का वर्णन करें।

इकाई 3- परीक्षण, मापन एवं मूल्यांकन : संस्कृत भाषा के शिक्षण एवं अधिगम के विशेष संदर्भ में

3.1प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.4 परीक्षण की वर्तमान समस्याएँ
3.5 परीक्षण का वर्तमान परिदृश्य
3.6 मूल्यांकन का अर्थ
3.6 भाषा शिक्षण में मूल्यांकन का महत्व
3.7 संस्कृत शिक्षण में मूल्यांकन प्रक्रिया के सोपान
3.3 मूल्यांकन प्रविधियाँ
3.9 सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन का प्रकार्य
3.30 मूल्यांकन की नवीन अवधारणाएँ
3.33 मूल्यांकन प्रक्रिया में सूचना और संचार प्रौद्योगिकी
3.33.3 सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन के अन्तर्गत संस्कृत भाषा परीक्षण के लिए प्रारंभिक आंकलन उपकरण
3.32 सारांश
3.33 अभ्यास प्रश्नों के उतर
3.34 शब्दावली
3.35 संदर्भ ग्रंथ
3.36 सहायक उपयोगी ग्रंथ
3.37 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

मूल्यांकन शिक्षण अधिगम प्रक्रिया का महत्वपूर्ण एवं अपरिहार्य अंग है। यह एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है जो शिक्षकों एवं शिक्षार्थीयों को अधिगम अनुभवों को प्राप्त करने में सहायता करता है। मापन की अपेक्षा मूल्यांकन अधिक व्यापक है। मापन के अन्तर्गत किसी व्यक्ति अथवा वस्तु के गुणों अथवा विशेषताओं का वर्णन मात्र ही किया जाता है जबकि मूल्यांकन के अन्तर्गत उस व्यक्ति अथवा वस्तु के

गुणों अथवा विशेषताओं की वांछनीयता के वर्णन द्वारा कोई निष्कर्ष निकाला जाता है। वस्तुतः मूल्यांकन का यह प्रत्यय इस मान्यता पर आधारित है कि शिक्षा का कार्य छात्रों को सीखने में सहायता प्रदान करना है। शिक्षा का उद्देश्य यह निर्धारित करता है कि हम शिक्षण के माध्यम से छात्रों के व्यवहार परिवर्तन के किन-किन आयामों को प्राप्त करने के इच्छुक हैं। इन शिक्षण उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु विद्यालय में विभिन्न अधिगम क्रियाओं का आयोजन किया जाता है। ये अधिगम आयोजन निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त करने में किस स्तर तक सफल रहे यह देखना मूल्यांकन प्रक्रिया का कार्य है।

सीखने के दौरान छात्रों के विविध शैक्षिक मापन विधियों द्वारा मूल्यांकन कर भाषा शिक्षण के उद्देश्यों को न केवल प्राप्त किया जा सकता है वरन् नए उद्देश्यों को तय करने, अधिगम अनुभवों को प्रस्तुत करने और विद्यार्थीयों की संप्राप्ति की जाँच करने में भी इसका उपयोग होता है।

संस्कृत भाषा शिक्षण में मूल्यांकन का महत्व और अधिक बढ जाता है क्योंकि कक्षा-शिक्षण के अलावा विद्यार्थीयों के पास इस भाषा के अनुप्रयोग एवं पृष्ठपोषण की सम्भावना लगभग नगण्य होती है। ऐसे में मूल्यांकन प्रक्रिया संस्कृत भाषा शिक्षण के उद्देश्यों (श्रवण, वाचन, पठन और लेखन) को प्राप्त करने के साथ- साथ भाषा में निहित अनंत ज्ञान-विज्ञान एवं मूल्यों के प्रति छात्रों को आकृष्ट करती है।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात अध्येता इस योग्य हो जाऐंगे कि :

1. परीक्षण में मापन एवं मूल्यांकन के अर्थ को समझ सकेंगे
2. संस्कृत भाषा शिक्षण में मापन एवं मूल्यांकन के महत्व को बता पाऐंगे
3. परीक्षण की वर्तमान समस्याओं को स्पष्ट कर पाऐंगे
4. संस्कृत शिक्षण में मूल्यांकन के महत्व बता पाऐंगे
5. संस्कृत शिक्षण में मूल्यांकन प्रक्रिया के सोपान को बता पाऐंगे
6. संस्कृत शिक्षण में मूल्यांकन प्रविधियों को बता सकेंगे
7. मूल्यांकन की नवीन अवधारणाओं को स्पष्ट कर सकेंगे
8. मूल्यांकन प्रक्रिया में सूचना और संचार प्रौद्योगिकी के महत्व को बता सकेंगे

अभ्यास प्रश्न

1. वस्तु के गुणों अथवा विशेषताओं का वर्णन मात्र किसके अंतर्गत किया जाता है ?
2. अधिगम आयोजन की सफलता देखने की प्रक्रिया को क्या कहते हैं ?

3.3 परीक्षण की वर्तमान समस्याएँ

परीक्षण की प्राचीनता मानवीय ज्ञान के विकास क्रम में प्रारम्भिक दौर से माना जा सकता है। भारत में वर्तमान परीक्षा प्रणाली उस ब्रिटिश शिक्षा व्यवस्था की देन है, जो लार्ड मैकाले ने सन् 3335 में प्रारम्भ की थी। स्वतंत्र भारत में शैक्षिक सुधार को अत्यंत महत्वपूर्ण एवं आवश्यक उत्तरदायित्व के रूप में स्वीकार किया गया है। विभिन्न शिक्षा आयोगों एवं शिक्षाशास्त्रीयों ने शिक्षा व्यवस्था में सुधार के लिए परीक्षा सुधार को महत्वपूर्ण एवं अवश्य करणीय बताया है। परीक्षण की समस्याओं को समझने के लिए परीक्षा प्रणाली की सीमाओं एवं उसके दोषों पर विचार करना आवश्यक है। वर्तमान परीक्षा प्रणाली की सीमाएँ/दोष निम्नानुसार हैं-

- सम्पूर्ण शिक्षा प्रक्रिया का केन्द्र परीक्षा होने से सीखने की जीवंतता और सृजनशीलता में अवरोध
- शिक्षण के सभी उद्देश्यों का मूल्यांकन करने में असमर्थ
- रटन्त स्मरण को अत्यधिक बढावा
- परीक्षा में सम्पूर्ण पाठ्यक्रम के प्रतिनिधित्व का अभाव
- निबन्धात्मक प्रश्नों पर छात्रों के प्राप्तांकों की विश्वसनीयता तथा वैधता का अभाव
- नकल, प्रश्न-पत्रों का आउट होना, परीक्षकों तक पहुंच जैसे भ्रष्ट तरीकों का तेजी से प्रचलन

उपर्युक्त सीमाओं के विश्लेषण करने पर इन समस्याओं के स्पष्ट कारण दृष्टिगोचर होते हैं जिसमें छात्रों की वैयक्तिक भिन्नता, परिवार और समाज की अपेक्षा, सहपाठियों के साथ अत्यधिक प्रतिस्पर्धा, परीक्षकों की मनमानी आदी महत्वपूर्ण है। इन कारणों पर काम किये बगैर परीक्षा सुधार को वास्तविकता के धरातल पर नही उतारा जा सकता। देखा जाए तो परीक्षा सुधार के तीन महत्वपूर्ण उद्देश्य हैं-

- परीक्षा और सीखने की जीवंतता को परस्पर सहयोगि के रूप में विकसित करना
- परीक्षाओं को शैक्षिक उपलब्धि का वैध एवं विश्वसनीय मापन करने वाले साधन के रूप में विकसित करना
- छात्रों के वैयक्तिक भिन्नता का सम्मान करते हुए अधिगम आयोजन की प्रभावशीलता को अधिकाधिक बढाने वाले उपकरण के रूप में परीक्षा को विकसित करना

3.4 परीक्षण का वर्तमान परिदृश्य

वर्तमान परीक्षा प्रणाली ने परीक्षा सुधार के लिए अनेक प्रयोग किये हैं। परीक्षा के विविध क्षेत्र जैसे- लिखित परीक्षा, मौखिक परीक्षा, प्रयोगात्मक परीक्षा, परीक्षा संचालन एवं परीक्षण के उपकरणों की

वस्तुनिष्ठता को बढाकर उनके वैधता एवं विश्वसनीयता को बढाया जा रहा है। परीक्षा सुधार के सिद्धांतों एवं विभिन्न आयोगों के संस्तुतियां जिसे वर्तमान परीक्षण प्रक्रिया धीरे-धीरे आत्मसात कर रही है निम्न प्रकार से हैं-

1. परीक्षण में वस्तुनिष्ठ तथा लघुउत्तर प्रश्नों का प्रयोग।
2. आंतरिक एवं सतत् मूल्यांकन करना।
3. प्रश्न बैंक का निर्माण।
4. खुली पुस्तक परीक्षा।
5. अंक के स्थान पर ग्रेड प्रणाली को अपनाना।
6. राष्ट्रीय परीक्षा प्रारम्भ करना।
7. अंकन के बाद उत्तर पुस्तिकाओं को छात्रों को सुपुर्द कर देना।
8. एक विशेष स्तर तक छात्रों को अनुतीर्ण न करना।
9. विभिन्न विषयों में प्राप्त अंकों की स्केलिंग।
10. पाठ्यसहगामी क्रियाओं को भी मूल्यांकन प्रक्रिया में समुचित भार देना

अभ्यास प्रश्न

3. भारत में वर्तमान परीक्षा प्रणाली किस व्यवस्था की देन है ?
4. परीक्षा सुधार के लिए किए जा रहे प्रयासों में किन्हीं दो प्रयासों को लिखें।

3.5 मूल्यांकन का अर्थ

मूल्यांकन का शाब्दिक अर्थ "मूल्य का अंकन" करना है। शैक्षणिक संदर्भ में मूल्यांकन शैक्षिक निर्णय है, जिसे तार्किक ढंग से अधिगम उपलब्धियों की वांछनीयता को ज्ञात करने में किया जाता है। मूल्यांकन के अर्थ को स्पष्ट करते हुए एच. एच. रैमर्स तथा एन. एल. गेज ने लिखा है-

"मूल्यांकन में व्यक्ति अथवा समाज अथवा दोनों की दृष्टि से क्या अच्छा है अथवा क्या वांछनीय है का विचार या लक्ष्य निहित रहता है।"

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद ने मूल्यांकन के प्रत्यय को निम्न प्रकार से स्पष्ट करता है-

I. निर्धारित शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति किस सीमा तक हो रही है
II. कक्षा में दिये गये अधिगम अनुभव कितने प्रभावशाली रहे हैं, तथा
III. शिक्षा के उद्देश्य कितने अच्छे ढंग से पूर्ण हो रहे हैं।

उपर्युक्त परिभाषाओं के आलोकन से यह स्पष्ट होता है कि मूल्यांकन के द्वारा छात्र, शिक्षक, एवं विद्यालय प्रबन्धक शैक्षणिक क्रियाओं आदि की पारस्परिक निर्भरता एवं उनकी उपयोगिता की जाँच कर अधिगम उपलब्धि द्वारा आगामी योजना को तैयार कर उसको क्रियान्वित करते हैं।

3.6 भाषा शिक्षण में मूल्यांकन का महत्व

शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के महत्वपूर्ण तत्व छात्र, अध्यापक एवं पाठ्यक्रम में निरंतर परिमार्जन हेतु मूल्यांकन एक महत्वपूर्ण कारक है। संस्कृत भाषा शिक्षण में मूल्यांकन का महत्व निम्नलिखित है-

i. मूल्यांकन द्वारा छात्र, अध्यापक, प्रशासक एवं अभिभावक भाषा शिक्षण के उद्देश्यों की प्राप्ति की सीमा को जान पाते हैं।
ii. संस्कृत भाषा शिक्षण में सही शिक्षण विधि के चयन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।
iii. भाषा-शिक्षण के विविध प्रतिमानों के प्रभाव को स्पष्ट करता है।
iv. संस्कृत भाषा के प्रति छात्रों में रूचि, कुशलता, योग्यता को बढाता है।
v. संस्कृत भाषा के प्रति बेहतर दृष्टिकोण को बढाने में छात्र एवं अभिभावक की मदद करता है।

3.7 संस्कृत शिक्षण में मूल्यांकन प्रक्रिया के सोपान

संस्कृत शिक्षण में मूल्यांकन प्रक्रिया के तीन मुख्य सोपान हैं। इन सोपानों को चित्र रूप में निम्न प्रकार से प्रदर्शित किया जा सकता है-

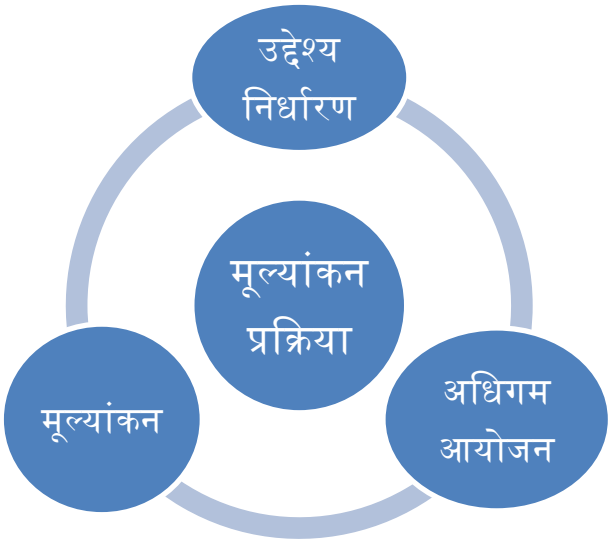

चित्र 3

मूल्यांकन प्रक्रिया के इन सोपानों को और अधिक स्पष्ट करने के लिए इन्हें निम्नांकित उप सोपानों में बाँटा जा सकता है-

i. उद्देश्य निर्धारण-इसके अंतर्गत भाषा शिक्षण के सामान्य उद्देश्य एवं विशिष्ट उद्देश्यों का निर्धारण व परिभाषीकरण करना आता है । ब्लूम टेक्सोनामी शैक्षिक उद्देश्यों को ज्ञानात्मक क्षेत्र, भावात्मक क्षेत्र एवं क्रियात्मक क्षेत्र में बाँटता है। भाषा शिक्षण के उद्देश्यों के निर्धारण में इन क्षेत्रों का ध्यान रखा जाना आवश्यक है।

ii. अधिगम आयोजन-इसके अंतर्गत भाषा शिक्षण के बिन्दुओं का चयन तथा उपयुक्त गतिविधियां जो अधिगम के अनुकुल हो, का आयोजन आता है।

iii. मूल्यांकन- इसके अंतर्गत छात्रों के व्यवहार परिवर्तन का ज्ञान, उपर्युक्त विधि द्वारा प्राप्त साक्ष्यों के आधार पर मूल्य का अंकन कर परिणामों को पृष्ठपोषण के रूप में प्रयुक्त किया जाता है।

3.3 मूल्यांकन प्रविधियाँ

भाषा शिक्षण का उद्देश्य छात्रों में भाषा के चारो कौशलों (सुनना, बोलना, पढना, लिखना) का विकास करना है । इन कौशलों की पूर्ती हेतु मूल्यांकन के विविध प्रविधियों जैसे-लिखित, मौखिक आदि का प्रयोग किया जाता है। परीक्षण प्रविधियों को और अधिक स्पष्ट करने के लिए हम निम्न चार्ट का प्रयोग कर सकते हैं-

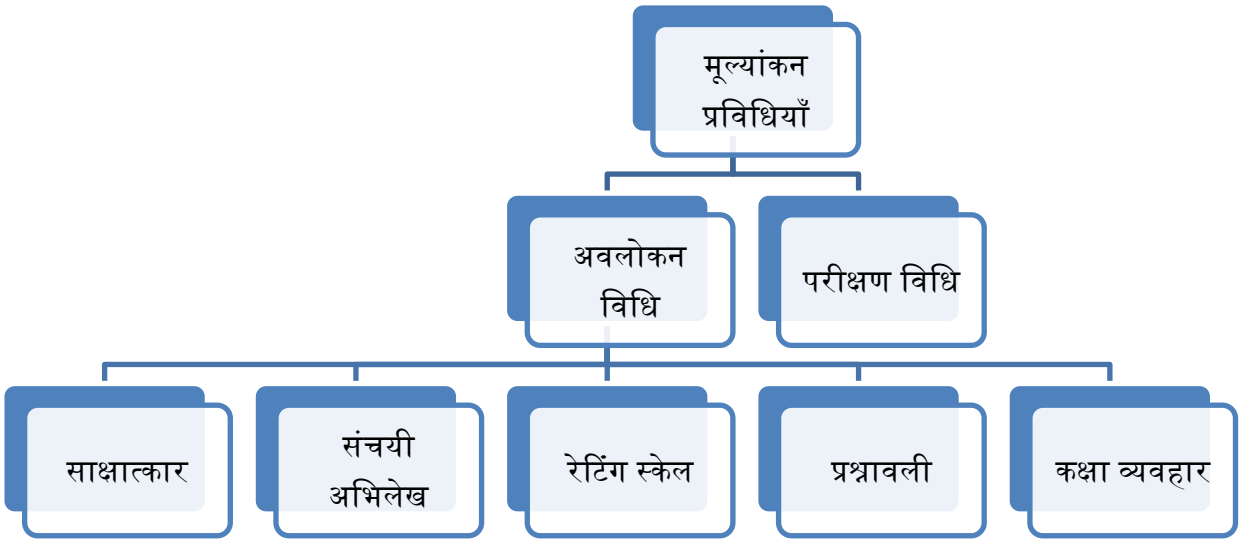

चित्र 2

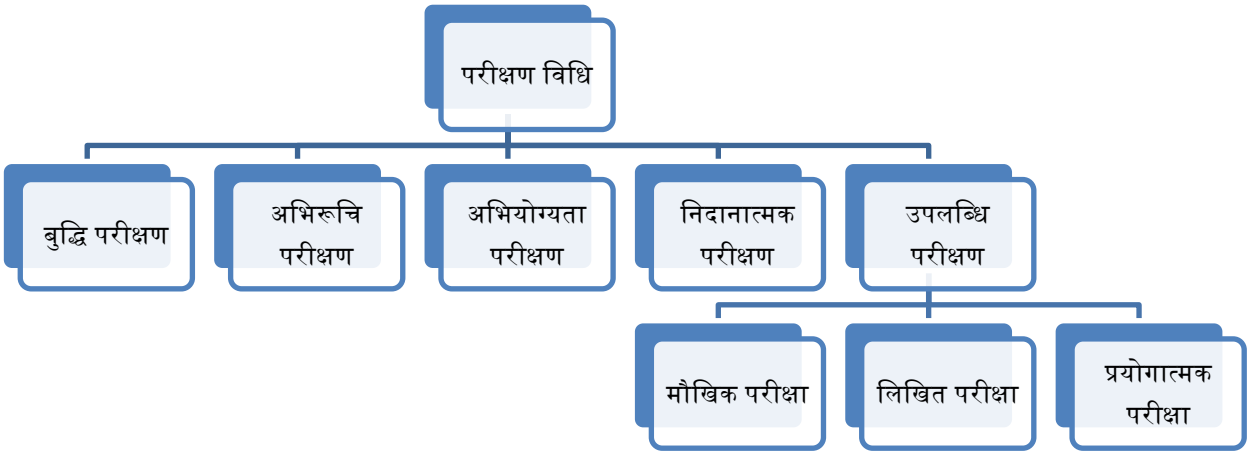

चित्र 3

संस्कृत भाषा शिक्षण के कौशलों को पूरा करने के लिए मुख्यतः मौखिक और लिखित परीक्षा का आयोजन किया जाता है। मौखिक परीक्षा के अंतर्गत निम्नांकित परीक्षण विधियाँ हैं

क. वार्तालाप-वार्तालाप के अन्तर्गत परीक्षक परीक्षार्थी का झिझक दूर करने के लिए संस्कृत भाषा में उसका परिचय देने के लिए कहते हैं। सहपाठियों के साथ किसी विषय पर परस्पर सम्वाद करना भी वार्तालाप का हिस्सा है। इस प्रकार के परीक्षण में छात्रों की सजनात्मकता एवं व्यक्तित्व का विकास होता है।

ख. शलाका परीक्षा-शलाका का अर्थ सलाई होता है। जिस प्रकार सलाई का अग्र भाग तीव्र होता है इस परीक्षण का उद्देश्य भी बालकों की मेधा को तीव्र करना है। प्राचीन समय में परीक्षक भुर्जपत्रों व ताम्रपत्रों पर लिखे ग्रन्थ में शलाका रखकर उस पृष्ठ से सम्बन्धित प्रश्न पूछता था। जैसे- इस सूत्र का अर्थ क्या है ? सूत्र की अनुवृत्ति क्या है ?

ग. शास्त्रार्थ-वाद-प्रतिवाद के माध्यम से विषय को उपस्थापित करना शास्त्रार्थ है। इसमें एक पक्ष किसी मत को पुष्ट करते हुए अपने तर्क स्थापित करता है जबकि अन्य पक्ष उसका प्रतिवाद करता है। शास्त्रार्थ छात्रों के वक्तृत्व कौशल एवं प्रस्तुति कौशल के मूल्यांकन एवं विकास दोनों के लिए महत्वपूर्ण है।

घ. आशुभाषण या सद्योभाषण-इसके अंतर्गत परीक्षार्थी के समक्ष कोई विषय रखा जाता है जिसपर छात्र को तत्काल अपना प्रस्तुतिकरण देना पडता है। इस विधि के द्वार परीक्षार्थी की भाषा में निपुणता का परीक्षण किया जाता है।

ङ. सस्वर वाचन-इसके माध्यम से संस्कृत के श्लोकों का सस्वर पाठ कराया जाता है। यह विधि भाषा शिक्षण में अत्यंत उपयोगि है विशेषकर छात्रों के रूची को उत्पन्न करने में।

3.9 लिखित परीक्षा

लिखित परीक्षा से तात्पर्य छात्रों द्वारा अर्जित ज्ञान, बोध, विश्लेषण, संश्लेषण आदि योग्यताओं की उपलब्धि स्तर को उनके लेखकीय अभिव्यक्ति पर मूल्य प्रदान करना। लिखित परीक्षा मूल्यांकन की सर्वाधिक प्रचलित प्रणाली है। लिखित परीक्षा में प्रश्नों के स्वरूप को हम निम्न प्रकार से व्यक्त कर सकते हैं-

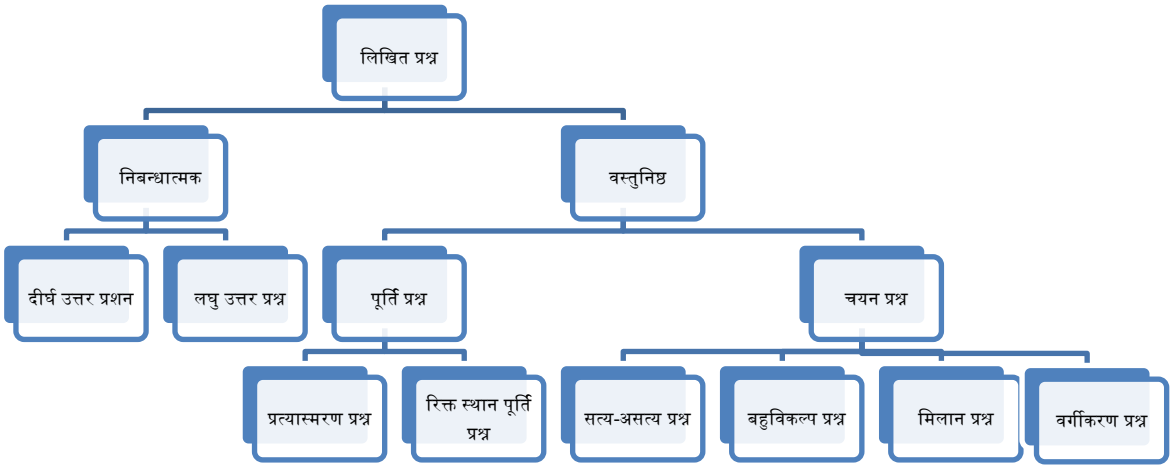

चित्र 4

अध्यापक निर्मित लिखित परीक्षण को अप्रमापीकृत परीक्षण भी कहते हैं। भाषा अध्यापक अपने विवेक से छात्रों के उपलब्धि स्तर को ध्यान में रखकर सम्प्राप्ति मापन हेतु लिखित प्रश्नों का निर्माण करते हैं। लिखित प्रश्नों की प्रकृति एवं उत्तर के लम्बाई के आधार पर दो भागों में बाँटा जा सकता है। निबन्धात्मक प्रश्न एवं वस्तुनिष्ठ प्रश्न।

- निबन्धात्मक प्रश्न-निबन्धात्मक प्रश्न से तात्पर्य ऐसे प्रश्न से है जिसमें परीक्षार्थी प्रश्न का उत्तर निबन्ध रूप में प्रस्तुत करता है। स्पष्ट है कि इस प्रकार के प्रश्नों में परीक्षार्थी अधिक शब्दो में उत्तर देता है जिससे वह अपने विचारों, चिन्तन, कल्पना, तर्क आदि को दिये जा रहे उत्तर में समाहित करता है। निबन्धात्मक प्रश्नों में एक ओर जहाँ परीक्षार्थी के बौद्धिक ज्ञान का पता चलता है वहीं दूसरी ओर उनकी उच्च स्तरीय मानसीक योग्यताओं जैसे तर्क क्षमता, अभिव्यक्ति, सृजनात्मकता, समीक्षा, अनुशीलन आदि तथा व्यक्तित्व गुणों का भी मूल्यांकन हो जाता है। प्रश्नों की प्रकृति एवं उत्तर की लम्बाई के आधार पर निबनाधात्मक प्रश्नों के अन्तर्गत दीर्घ उत्तर प्रश्न एवं लघु उत्तर प्रश्न आते हैं।
- वस्तुनिष्ठ प्रश्न-वस्तुनिष्ठ प्रश्न से अभिप्राय ऐसे प्रश्नों से है जिनमें सम्मलित प्रत्येक प्रश्न का केवल एक ही सही उत्तर होता है। यदी परीक्षार्थी उस उत्तर को देता है तो उसे पूर्ण अंक प्राप्त होते हैं और यदि वह उस उत्तर को नही देता तो उसे शून्य अंक प्राप्त होते हैं। स्पष्ट है कि वस्तुनिष्ठता से तात्पर्य अंकन की वस्तुनिष्ठता से है। वस्तुनिष्ठ प्रश्नों में अनेक प्रकार के प्रश्न सम्मिलित किये जा सकते हैं। प्रमुख प्रकार के वस्तुनिष्ठ प्रश्न निम्नवत हैं-

  क. पूर्ति प्रश्न इसके अंतर्गत प्रत्यास्मरण प्रश्न या पुनः स्मरण प्रश्न एवं रिक्त स्थान पूर्ति प्रश्न आते हैं।

  ख. चयन प्रश्न- इसके अंतर्गत सत्य-असत्य प्रश्न, बहुविकल्प प्रश्न, मिलान प्रश्न, वर्गीकरण प्रश्न आदि सम्मिलित हैं।

अभ्यास प्रश्न

5. मूल्यांकन का शाब्दिक अर्थ क्या है ?
6. अध्यापक निर्मित लिखित परीक्षण को और क्या कहते हैं ?
7. शलाका का अर्थ क्या होता है ?

3.10 सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन

सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन की योजना परीक्षा सुधार कार्यक्रम के एक भाग के रूप में लाया गया है। सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन न केवल शैक्षिक क्षेत्रों में शिक्षा को बढ़ाने के लिए वांछित अतिरिक्त क्षेत्रों के अधिग्रहण के स्तर के बारे में आवश्यक प्रतिक्रिया प्रदान करता है, अपितु शिक्षार्थियों के जीवन कौशल, दृष्टिकोण और मूल्यों के अधिग्रहण में प्रवीणता पर बराबर जोर देता है। इस प्रकार सतत् और व्यापक मूल्यांकन छात्रों के मूल्यांकन प्रणाली के आधार को दर्शाता है कि छात्रों के विकास के सभी पहलुओं को शामिल किया जाए। सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन में प्रथम शब्द सतत् का अर्थ है-

- मूल्यांकन की नियमितता
- इकाई परीक्षण की आवृत्ति
- सीखने के अंतराल के निदान
- सुधारात्मक उपायों का प्रयोग
- पुनः परीक्षण और
- आत्म मूल्यांकन के लिए शिक्षकों और छात्रों के लिए पृष्ठपोषण की प्रक्रिया.

दूसरे शब्द 'व्यापक' का अर्थ है छात्रों के शैक्षिक और सह शैक्षिक विकास के पहलुओं को अधिकाधिक मूल्यांकन प्रक्रिया में शामिल करना। शिक्षा की ज्ञानात्मक, भावात्मक और गत्यात्मक आदि क्षेत्रों का समग्र रूप से आकलन इसमें निहित है।

इस तरह सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन एक पहल है, जो पाठ्यक्रम को समग्र सीखने एवं परीक्षण के प्रचलित व्यवस्था में बदलाव करने को प्रयासरत है। यह अच्छी भाषा, स्वास्थ्य, उचित कौशल और अकादमिक उत्कृष्टता के अलावा वांछनीय गुण रखने वाले नागरिकों को बनाने में मदद करने वाली प्रक्रिया है।

3.33 सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन का प्रकार्य

- नए पद्धति में एक सेमेस्टर के अंतर्गत दो संकलनात्मक मूल्यांकन के बाद एक योगात्मक मूल्यांकन का आयोजन किया जाता है।
- पाठ्यक्रम विभाजन संकलनात्मक मूल्यांकन एवं योगात्मक मूल्यांकन इस प्रक्रिया को ध्यान रखकर ही किया जाता है।
- शिक्षक छात्रों के प्रदर्शन का आकलन लगातार कक्षा में कर रहे हैं।
- मूल्यांकन हेतु कक्षा में विभिन्न गतिविधियों का आयोजन किया जाता है।
- सुधारात्मक एवं निदानात्मक कार्य को प्रभावी ढंग से प्राचार्य की देखरेख में किया जाता है।
- पाठ्यसहगामि गतिविधियों का आयोजन निरंतर किया जाता है।

3.33.3 सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन के अन्तर्गत संस्कृत भाषा परीक्षण के लिए प्रारंभिक आकलन उपकरण

- भाषण
- कविता सस्वर पाठ
- डायरी

- पत्र
- कक्षा कार्य
- होमवर्क सुधार
- वर्कशीट - व्याकरण बेस
- पत्र लेखन
- रोल – प्ले

अभ्यास प्रश्न

8. सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन में सतत् शब्द का अर्थ क्या है ?
9. सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन के तहत संस्कृत भाषा परीक्षण के लिए प्रारंभिक आकलन उपकरणों को लिखें।

3.12 मूल्यांकन की नवीन अवधारणाएँ

शिक्षा प्रणाली में समय समय पर-आवश्यकतानुसार परिवर्तन वांछनीय होता है। परीक्षा पद्धति शिक्षण प्रक्रिया पर गहरा प्रभाव डालती है अतइसमें बदलाव : और भी महत्वपूर्ण हो जाता है। विगत कुछ वर्षों में शैक्षिक मापन तथा मूल्यांकन के क्षेत्र में अनेक नवीन प्रत्ययों तथा नवाचारों का प्रचलन बढा है। शैक्षिक मापन एवं मूल्यांकन के नवीन सम्प्रत्यय शिक्षा के क्षेत्र में कार्य करने वालों के लिए अत्यंत आवश्यक है। शैक्षिक मापन व मूल्यांकन के कुछ प्रमुख नवीन नवाचारों में सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन, खुली पुस्तक परीक्षा, सेमेस्टर प्रणाली, ग्रेड प्रणाली आदि महत्वपूर्ण हैं। संस्कृत भाषा शिक्षण में इन नवीन अवधारणाओं का प्रयोग अध्यापक एवं छात्र दोनों के लिए ही श्रेष्ठ होगा। मापन तथा मूल्यांकन के इन नवीन प्रत्ययों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है-

- सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन - सतत और व्यापक मूल्यांकन छात्रों के मूल्यांकन प्रणाली के आधार को दर्शाता है कि छात्रों के विकास के सभी पहलुओं को शामिल किया जाए। सी सी ई. एक पहल है, जो पाठ्यक्रम को समग्र सीखने एवं परीक्षण के प्रचलित व्यवस्था में बदलाव करने को प्रयासरत है। यह अच्छी भाषा, स्वास्थ्य, उचित कौशल और अकादमिक उत्कृष्टता के अलावा वांछनीय गुण रखने वाले नागरिकों को बनाने में मदद करने वाली मूल्यांकन प्रक्रिया है ।

- खुली पुस्तक परीक्षा- इस प्रणाली के अन्तर्गत छात्रों को परीक्षा से पूर्व परीक्षा मे पूछे जाने वाले संभावित विषय दे दिये जाते हैं। इसका लाभ यह होता है कि उनके पास इन क्षेत्रों का गहन अध्ययन करने और तार्किक प्रश्नों के उत्तर देने की तैयारी करने का पर्याप्त समय मिल जाता है। इस प्रकार खुली पुस्तक परीक्षा से छात्रों में पठन सामग्री की गहन समझ, तार्किक क्षमता, मौलिक दृष्टिकोण, भिन्न प्रकार की सामग्री में अन्तरसम्बन्ध स्थापित करना तथा इस प्रकार की अन्य क्षमताएं विकसित करने में मदद मिलता है। संस्कृत भाषा को रटन्त विद्या से मुक्त कराने में यह कारगर उपाय है।
- सेमेस्टर प्रणाली- सेमेस्टर प्रणाली के अन्तर्गत किसी उपाधि के लिए निर्धारित संपूर्ण पाठ्यक्रम को छह-छह माह के काल खण्ड में विभाजित किया जाता है जिसे सेमेस्टर कहा जाता है। प्रत्येक सेमेस्टर के पाठ्यक्रम का शिक्षण करने के उपरान्त परीक्षा आयोजित की जाती है।
- ग्रेडिंग प्रणाली- परीक्षा में फेल या पास करने की पुरानी व्यवस्था से हटकर अब ग्रेडिंग प्रणाली में प्रमाण-पत्र छात्रों को दिये जा रहे हैं। इस प्रणाली में कम से कम पाँच विषयों में 33 प्रतिशत अंक प्राप्त करने होते हैं। ग्रेड को ए3, ए2, ए3, बी3, बी2, सी3, सी2, सी3 और ई वर्ग में बाँटा जाता है। इसके तहत 95 से 300 प्रतिशत अंक प्राप्त करने वाले छात्रों को ए3 ग्रेड, 90 से 94 प्रतिशत अंक प्राप्त करने वालों को ए2, 30 से 39 प्रतिशत अंक प्राप्त करने वाले ए3, 70 से 79 प्रतिशत अंक प्राप्त करने वाले बी3, 60 से 69 प्रतिशत अंक प्राप्त करने वाले बी2, 50 से 59 प्रतिशत अंक प्राप्त करने वाले सी3, 40 से 49 प्रतिशत अंक प्राप्त करने वाले सी2, 33 से 39 प्रतिशत अंक प्राप्त करने वाले सी3 और 32 प्रतिशत से कम अंक प्राप्त करने वालों छात्रों को ई ग्रेड प्रदान किया जाता है।

3.13 मूल्यांकन प्रक्रिया में सूचना और संचार प्रौद्योगिकी

पिछले कुछ दशकों से प्रौद्योगिकी ने हर संभव मार्ग से हमारे जीवन को पूरी तरह बदल दिया है शिक्षण का क्षेत्र इससे अछूता नही है। शिक्षा के क्षेत्र में सूचना और संचार प्रौद्योगिकी के सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदानों में से एक है अधिगम्यता पर आसान पहुंच। सूचना और संचार प्रौद्योगिकी की सहायता से छात्र अब ई-पुस्तकें, परीक्षा के नमूने वाले प्रश्न पत्र, पिछले वर्षों के प्रश्न पत्र आदि देखने के साथ संसाधन व्यक्तियों, विशेषज्ञों, शोधकर्ताओं, व्यावसायिकों और साथियों से दुनिया के किसी भी कोने पर आसानी से संपर्क कर सकते हैं। सूचना और संचार प्रौद्योगिकी आधारित शिक्षा आपूर्ति (रेडियो और टेलिविजन पर शैक्षिक कार्यक्रमों का प्रसारण) से सभी सीखने वाले और अनुदेशक को एक भौतिक स्थान पर होने की आवश्यकता समाप्त हो जाती है। जब से सूचना और संचार प्रौद्योगिकी को एक शिक्षण माध्यम के रूप में उपयोग किया गया है, इसने एक त्रुटिहीन प्रेरक साधन के रूप में कार्य किया है, इसमें वीडियो, टेलिविजन, मल्टीमीडिया कम्प्यूटर सॉफ्टवेयर का उपयोग शामिल है जिसमें , ध्वनि और रंग निहित है। इससे छात्र सीखने की प्रक्रिया में गहराई से जुडते हैं। संस्कृत भाषा परीक्षण में सूचना और संचार

प्रौद्योगिकी का अत्यधिक महत्व है। संस्कृत भाषा के मूल्यांकन कार्य में सूचना और संचार प्रौद्योगिकी का प्रयोग निम्नांकित है-

1. प्रश्नपत्रों के निर्माण में
2. आनलाईन परीक्षण में
3. परीक्षा सम्बन्धी सूचनाओं के संग्रह व समूहन में
4. परीक्षण कार्य के पर्यवेक्षण में
5. परीक्षा सुधार के लिए नए नए प्रतिमान विकसित करने में

अभ्यास प्रश्न

10. शैक्षिक मापन व मूल्यांकन के कुछ प्रमुख नवीन नवाचारों को लिखें।
11. संस्कृत भाषा के मूल्यांकन कार्य में सूचना और संचार प्रौद्योगिकी के प्रयोग को सूचीबद्ध करें।

3.14 सारांश

मापन व्यक्तियों अथवा वस्तुओं के गुणों का वर्णन करता है। मापन की तुलना में मूल्यांकन अधिक व्यापक है। संस्कृत भाषा के लिए मूल्यांकन शिक्षण अधिगम प्रक्रिया का एक आवश्यक अंग है। संस्कृत भाषा शिक्षण के सामान्य एवं विशिष्ट उद्देश्यों का निर्धारण, शिक्षण बिन्दुओं का चयन, अधिगम क्रियाओं का आयोजन, छात्रों में भाषा शिक्षण के माध्यम से होने वाले व्यवहार परिमार्जन को जानना और परिणामों को पृष्ठपोषण के रूप में उपयोग लाना इसके अन्तर्गत है। मूल्यांकन की विभिन्न विधियाँ संस्कृत भाषा शिक्षण द्वारा प्राप्त उपलब्धियों का भिन्न-भिन्न प्रकार से मूल्यांकन करते है । मूल्यांकन की नवीन प्रविधियाँ भी संस्कृत भाषा शिक्षण के लिए उपयोगी है। मूल्यांकन प्रक्रिया में आई.सी.टी. न केवल गुणवत्ता को बढाने में कारगर है अपितु संस्कृत भाषा के विकास में भी अत्यंत सहयोगी है।

3.15 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. वस्तु के गुणों अथवा विशेषताओं का वर्णन मात्र मापन के अंतर्गत किया जाता है।
2. अधिगम आयोजन की सफलता देखने की प्रक्रिया को मूल्यांकन कहते हैं।
3. भारत में वर्तमान परीक्षा प्रणाली ब्रिटिश व्यवस्था की देन है
4. परीक्षा सुधार के लिए किए जा रहे प्रयास 3.4 उपखण्ड के अंतर्गत उल्लिखित है।
5. मूल्यांकन का शाब्दिक अर्थ "मूल्य का अंकन" है।
6. अध्यापक निर्मित लिखित परीक्षण को अप्रमापीकृत परीक्षण भी कहते हैं।
7. शलाका का अर्थ सलाई होता है।
8. सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन में सतत् शब्द का अर्थ 3.30 उपखण्ड के अंतर्गत उल्लिखित है।

9. सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन के तहत संस्कृत भाषा परीक्षण के लिए प्रारंभिक आकलन उपकरणों 3.12 उपखण्ड के अंतर्गत उल्लिखित है।
10. शैक्षिक मापन व मूल्यांकन के कुछ प्रमुख नवीन नवाचार हैं- सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन, खुली पुस्तक परीक्षा, सेमेस्टर प्रणाली, ग्रेड प्रणाली
11. संस्कृत भाषा के मूल्यांकन कार्य में सूचना और संचार प्रौद्योगिकी के प्रयोग 3.33 उपखण्ड के अंतर्गत उल्लिखित है।

3.17 संदर्भ ग्रंथ

1. राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (2005), एन. सी. ई. आर. टी. नई दिल्ली
2. गुप्ता, एस. पी. : आधुनिक मापन मूल्यांकन, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 2033
3. पाण्डेय, रामशकल : संस्कृत शिक्षण, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, 2003

3.13 सहायक उपयोगि ग्रंथ

1. पाण्डेय, रामशकल : संस्कृत शिक्षण, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, 2003
2. मित्तल, संतोष : संस्कृत शिक्षण, आर. लाल बुक डिपो, मेरठ, 2004
3. शास्त्री, आचार्य राम : संस्कृत शिक्षण सारिणी, आचार्य रामशास्त्री, ठोल-कुरुक्षेत्र (हरियाणा), 3933
4. मिश्र, प्रभाशंकर : संस्कृत शिक्षण, हरियाणा हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, चण्डीगढ, 3979
5. शर्मा, राधेश्याम: संस्कृत शिक्षण, पुनीत प्रकाशन, जयपुर, 3997
6. Apte, D.D. & Dongre, P.K.: Teaching of Sanskrit in Secondary Schools. Baroda: Acharya Book Depot, 3960

3.19 निबंधात्मक प्रश्न

1. वर्तमान परीक्षा प्रणाली के दोषों को सूचीबद्ध करते हुए परीक्षा सुधार के लिए किए जा रहे प्रयासों को स्पष्ट करें।
2. मूल्यांकन के अर्थ को स्पष्ट करते हुए संस्कृत भाषा शिक्षण में मूल्यांकन के महत्व को लिखें।
3. संस्कृत शिक्षण में मूल्यांकन प्रक्रिया के सोपान को स्पष्ट करें।
4. मूल्यांकन प्रविधियों का संक्षिप्त परिचय देते हुए किन्हीं तीन मौखिक परीक्षण पर टिप्पणी लिखें।

5. लिखित परीक्षा के आशय को स्पष्ट करते हुए निबन्धातमक एवं वस्तुनिष्ठ प्रश्नों की विशेषता को लिखें।
6. सतत एवं व्यापक मूल्यांकन के अर्थ को स्पष्ट करते हुए उसके प्रकार्य को लिखें।
7. 7.संस्कृत भाषा परीक्षण में सतत एवं व्यापक मूल्यांकन किस प्रकार उपयोगी है।
8. मूल्यांकन की नवीन अवधारणाओं को स्पष्ट करते हुए संस्कृत भाषा में उनकी उपयोगिता स्पष्ट करें।
9. निम्नांकित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखें-
    a. सेमेस्टर प्रणाली
    b. खुली पुस्तक परीक्षा
    c. ग्रेडिंग प्रणाली
10. संस्कृत भाषा परीक्षण में सूचना और संचार प्रौद्योगिकी क्र महत्व को स्पष्ट करें।

इकाई 4 - संस्कृत भाषा में उपलब्धि के मूल्यांकन हेतु उपलब्धि परीक्षण का निर्माण

4.1प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 उपलब्धि परीक्षण से आशय
4.3.1 उपलब्धि परीक्षण का अभिप्राय
4.3.2 उपलब्धि परीक्षण के प्रकार
4.3.3 प्रमापीकृत परीक्षण
4.3.4 शिक्षक निर्मित परीक्षण
4.3.5 प्रमापीकृत परीक्षण एवं शिक्षक निर्मित परीक्षण में अन्तर
4.3.6 उपलब्धि परीक्षण की आवश्यकता
4.3.7 उपलब्धि परीक्षण की विशेषताएँ
4.3.8 उपलब्धि परीक्षण का महत्व
4.3.9 उपलब्धि परीक्षण की सीमाएँ
4.4 उपलब्धि परीक्षण निर्माण की प्रक्रिया
4.4.1 उपलब्धि परीक्षण निर्माण
4.4.2 परीक्षण की योजना बनाना
4.4.3 प्रश्नों की रचना करना
4.4.4 प्रश्नों का चयन करना
4.4.5 परिक्षण का मूल्यांकन करना
4.5 सारांश
4.6 शब्दावली
4.7 अभ्यास प्रश्न
4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4.9 निबंधात्मक प्रश्न

4.3 प्रस्तावना

"The Educational tests seek to measure the products of training and indirectly to determine the efficiency of the training which the individual has received."

-Freeman

किसी भी प्रकार की परीक्षा हो उसको उपयोगिता तभी है जबकि वह विश्वसनीय हो तथा केवल उसी गुण या विशेषता का मापन करती हो जिसके लिए उसका निर्माण हुआ है। नाप-तौल के उपकरणों की आवश्यकता आदि कल से ही रही है तथा प्रतिदिन ही हमें उनकी आवश्यकता पड़ती है।सभी प्रकार के परीक्षणों का विश्वशनीय होना आवश्यक है, इसके अतिरिक्त, वैधता की मात्रा भी अधिक होनी चाहिए।

उपलब्धि परीक्षण के अंतर्गत यह मापन किया जाता है कि छात्र ने पढाए हुए, विषय में कितना ज्ञानार्जन किया है। इन परीक्षणों का विशेष रूप से निदानात्मक उपयोग है।

4.2 उद्देश्य

फ्रीमैन ने उपलब्धि परीक्षणों को परिभाषित करते हुए लिखा है "उपलब्धि परीक्षण में किसी एक विषय में अर्जित ज्ञान, सूझ-बूझ तथा कौशल का मापन करते है।"

राबर्ट ईबल ने लिखा है कि उपलब्धि परीक्षण का उद्देश्य किसी ज्ञान की शाखा में गृह्यीयता में निपुणता का मापन करना है। एक उपलब्धि परीक्षण छात्र द्वारा विद्यालय में अर्जित ज्ञान का मापन करता है। यह एक प्रकार से छात्र की शैक्षिक प्रगति या किसी कौशल में दक्षता का मूल्यांकन करता है।

इस इकाई को पढ़ने के बाद शिक्षार्थी जानेंगे–

- उपलब्धि परीक्षण की अवधारणा
- उपलब्धि परीक्षण के प्रकार
- उपलब्धि परीक्षण की आवश्यकता
- उपलब्धि परीक्षण के महत्व
- उपलब्धि परीक्षण के निर्माण प्रक्रिया के विभिन्न सोपान
- उपलब्धि परीक्षण से जुड़े अन्य तथ्य

4.3 उपलब्धि परीक्षण से आशय

व्यक्ति आने वाली तरुण पीढ़ी के समक्ष अपने अनुभव तथा मूल्य इस उद्देश्य ये रखता है ताकि वे सांस्कृतिक धरोहर की रक्षा कर सके एवं उनके व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन हो । बालक विद्यालय में

रहकर जो कुछ सीखता है उसे हम उपलब्धि (achievement)कहते हैं तथा इस उपलब्धि की जाँच के लिए जो परीक्षाएं ली जाती है उन्हें उपलब्धि परीक्षण (achievement test)कहते हैं। प्राचीन काल में भी शिक्षक एवं शिक्षालय का प्रथम दायितव अपने शिष्यों की उपलब्धि का मूल्यांकन रहा है ।शिक्षा के उद्देश्यों एवं परिवर्तन के साथ–साथ हमारी मूल्यांकन एवं मापन की प्रक्रिया भी बदलती रहती हैं।

उपलब्धि परीक्षण का अभिप्राय

शिक्षक अपने छात्रों की उन्नति का ज्ञान प्राप्त करने के लिए समय–समय पर उनकी परीक्षएं लेता रहता है। इन परीक्षाओं का उद्देश्य छात्रों की सफलता का मापन करना होता है तथा शिक्षक इस बारे में आश्वस्त होना चाहता है कि विद्यार्थी ने विषय सम्बन्धी योग्यता पूर्ण रूप से प्राप्त कर ली है या नहीं। इस परीक्षा के प्राप्तांक छात्र की किसी एक निश्चित क्षेत्र में सफलता का ज्ञान करते हैं। उपलब्धि परीक्षा द्वारा बालकों की योग्यता की तुलना की जाती है । इस परीक्षा में हम सापेक्षिक सफलता (relative achievement)पर बल देते हैं न कि पूर्ण सफलता (absolute achievement)पर । यदि एक छात्र किसी भी विषय में 30 अंक प्राप्त करता है तथा दूसरा छात्र 55 अंक प्राप्त करता है तो हम कहेंगे कि पहला छात्र दूसरे छात्र से योग्यता में 25 अंक कम हैं। यहाँ हम **pass grade** की महत्व नहीं देते जैसा कि **Essay Type Test** में देते हैं। यह भी हो सकता है के हमारी परीक्षा बुहत ही कठिन हो और कोई भी छात्र 36**%(Pass marks)** न ला पाये ऐसी स्थिति में यह तो नहीं कहा जा सकता है कि कोई भी छात्र योग्य नहीं है। अत: हमें यह करना चाहिए कि छात्रों को अंक देने के पश्चात् वर्गीकरण करें तथा मध्यांक ज्ञात करें, फिर यह देखें कि छात्र के अंक मध्यांक से किनते कम हों कि उसकी योग्यता को सफल कहा जाये। आजकल प्रतियोगी परीक्षाओं में यही नीति, प्रयोग में लायी जाती है।

4.3.3 उपलब्धि परीक्षण की परिभाषा

कुछ परिभाषाएँ निम्न हैं –

1. **फ्रीमैन (Freeman)** के अनुसार– **"**उपलब्धि परीक्षण वह अभिकल्प है जो एक विशेष विषय या पाठ्यक्रम के विभिन्न विषयों में व्यक्ति के ज्ञान, समझ एवं कौशल का

   A single score a pupil's relative achievement in a great achievement.
2. **सुपर (Super)**के शब्दों में– "एक उपलब्धि या क्षमता परीक्षण यह ज्ञात करने के लिए प्रयोग कियाजाता है कि व्यक्ति ने क्या और कितना सीखा तथा वह कोई कार्य कितनी भली–भाँति कर लेता है।**"**
3. **बिंघम के अनुसार**- "विद्यालय या विद्यालय के बाहर अर्जित पुराने ज्ञान के मापन का निर्माण प्रशिक्षण या अनुभव की अवधि तथा स्वरूप के परिप्रेक्ष्य में किया जाता तो इसे उपलब्धि परीक्षण कहते हैं।"

4.3.2 उपलब्धि परीक्षण के प्रकार - उपलब्धि परीक्षण का वर्गीकरण निम्नलिखित है-

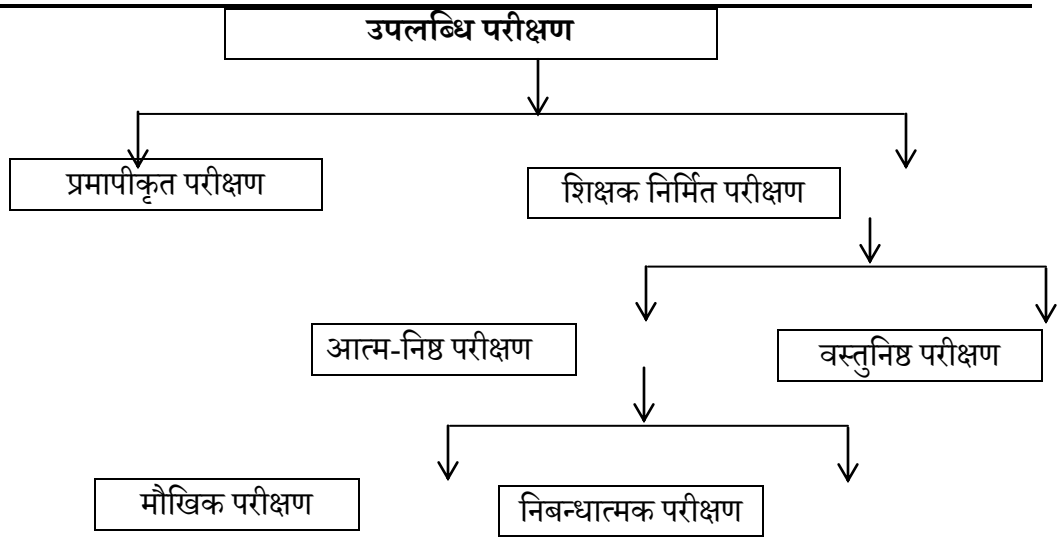

उपलब्धिपरीक्षणका एक अन्य प्रकार से वर्गीकरण भी किया जाता है-

1) **व्यवसाय परीक्षा-** इनके द्वारा व्यवसायगत दक्षता का मापन होता है।
2) **शैक्षिक परीक्षण-** इस प्रकार के परीक्षण व्यक्ति की शैक्षिक योग्यता का मापन करते हैं ।

4.3.3 प्रमापीकृत परीक्षण

प्रमापीकृत परीक्षण उपलब्धि परीक्षण के उत्तम साधन है। ये अत्यधिक विश्वसनीय होते है किन्तु ऐसे परीक्षण तैयार करना कठिन होता है और इनको तैयार करने में समय भी अधिक लगता है। भारतवर्ष में उपलब्धि परीक्षण की प्रमापीकृत परीक्षाएं बहुत कम है। एक प्रमापीकृत परीक्षण वह है जिसके मानदण्ड स्थापित किए गए हों ।यह कार्य तभी सम्भव है जबकि उस परीक्षण को बहुत बड़ी जनसंख्या पर लागू किया गया हो और उसके मानदण्ड की गणना की गई हो। मानदण्ड एक प्रकार के औसत है। श्रेणी मानदण्ड एक ही श्रेणी के छात्रों द्वारा प्राप्त औसत अंक होते है। आयु मानदण्ड एक ही आयुवर्ग के छात्रों द्वारा प्राप्त औसत अंक है।

एक प्रमापीकृत परीक्षण की रचना में अधिक श्रम तथा धन का खर्चा होता है। इसके परिणाम की प्रक्रिया में अनेक चरण निहित है। किसी विषय के उद्देश्यों को ध्यान में रखकर इसके प्रश्नों के निर्माण विशेषज्ञों के द्वारा होता है। विशेषज्ञ प्रश्नों के निर्माण में अध्यापक तथा प्रधानाचार्य से सलाह लेता है। इसके बाद दो या तीन बार परीक्षा को छात्रों पर लागू करके उसकी विश्वसनीयता, वस्तुनिष्ठता, प्रयोग में लाने में सुविधा तथा अंक देने की प्रक्रिया का पता लगाया जाता है। प्रमापीकृत परीक्षण वस्तुनिष्ठ होते है क्योंकि इसमें प्रश्नों का शब्दीकरण निश्चित, उत्तर निश्चित तथा अंकन सरल होता है ।इसमें सामान्यतः रिक्तस्थान पूर्ति, सत्य-असत्य, सरल स्मरण प्रश्न, बहुविकल्प प्रश्न, वर्गीकरण प्रश्न या मैचिंग प्रश्नों का

प्रयोग होता है। इसके प्रश्नों के उत्तरों में अंक देने के लिए का भी निर्माण होता है। इनका प्रयोग सरल होता है।

प्रमापीकृत परीक्षाओं की विशेषताएँ

Adams and Torgersonके अनुसार प्रामपीकृत मापन उपकरण (Standardized measuring instrument) की निम्नलिखित छ: विशेषतायें होती हैं–

1. प्रतिनिधि पाठ्यक्रम का मापन (To measure important common outcomes of representative courses of study.)।
2. परीक्षा देने के विषय में विशिष्ट सूचनायें (Specific directions for administering the test are stated in detail)।
    i. विशिष्ट शब्दों में (Specific words),
    ii. समय सीमा (Time limit)।
3. जाँचने के लिए विशिष्ट सूचनायें (Specific directions for scoring)
    i. जाँचने की कुँजी (Scoring key),
    ii. कुछ न्यादर्श दिए होते हैं (Selected samples of scored answer booklets)।
4. परीक्षण की परिस्थितियाँ स्पष्ट होती हैं। (Situations are specified)
    i. आयु वर्ग,
    ii. कक्षा,
    iii. स्थान।
5. मानक दिए होते हैं (Norms are supplied to aid in interpreting the scores)।
6. परीक्षण के महत्व को बताने वाले तथ्य (Information needed for judging the value of the test in provided)।

परीक्षण का निर्माण किस प्रकार हुआ, इसके क्या उद्देश्य (Purpose) हैं, किस प्रकार उसका प्रशासन हो, किस प्रकार जाँचा जाये, परिणामों की संख्या (Interpretation) कैसे हो, मानक की सारणियाँ आदि एक लघु पुस्तिका में दी होती है। इसे Manual of Test कहते हैं। प्रमाणीकृत परीक्षण में इसका होना भी अनिवार्य है।

मानकीकृत परीक्षाओं के गुण

मानकीकृत परीक्षाओं के प्रमुख गुण निम्न हैं –

1. ये परीक्षाएँ छात्र का शैक्षिक एवं व्यावसायिक मार्ग –दर्शन करने में सहायक होती हैं।
2. इन परीक्षाओं के आधार पर किसी छात्र की विभिन्न विषयों की उपलब्धियों में सहसम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है।

3. ये परीक्षाएँ कक्षा सम्बन्धी विभिन्न समस्याओं के हल करने में अथवा छात्रों के बारे मे जानकारी प्राप्त करने में शिक्षक की सहायता करती हैं।
4. ये परीक्षाएँ विभिन्न विद्यालयो में पढ़ने वाले छात्रो अथवा एक ही कक्षा में पढ़ने वाले लड़के एवं लड़कियों की बुद्वि अथवा योग्यता में विभेद करने में सहायक होती है।
5. तुलनात्मक अध्ययन में इन परीक्षाओं का सफलतापूर्वक प्रयोग किया जा सकता है।
6. इन परीक्षाओं की सबसे प्रमुख विशेषता यह है कि इन्हें कहीं भी और किसी भी समय प्रशासित किया जा सकता है तथा प्राप्त परिणामों की विश्वसनीयता बनी रहती है।
7. इन परीक्षाओं के माध्यम से छात्र को अपनी कमजोरियों एवं क्षमताओं का आभास आसानी से हो जाता है।
8. ये परीक्षाएँ छात्रो का वर्गीकरण करने में सहायक होती हैं।
9. ये परीक्षाएँ छात्र के व्यक्तित्व का पूर्ण रूप से परीक्षण करती है।
10. ये परीक्षाएं धन, समय एवं परिश्रम की दृष्टि से सुविधाजनक नहीं हैं साथ ही, इनकी वैधता एवं विश्वसनीयता के बारे में भी हम अधिक आश्वत नहीं रहते।

4.3.4 शिक्षक निर्मित परीक्षण

प्रत्येक विषय का अध्यापक भी शैक्षिक उपलब्धि का मापन करने के लिए परीक्षाओं का निर्माण करता है। अध्यापक द्वारा निर्मित परीक्षाएं दो प्रकार की होती है – (3) आत्मनिष्ठ परीक्षण, (2) वस्तुनिष्ठ परीक्षण।

आत्मनिष्ठ परीक्षण : ये शिक्षक द्ववारा निर्मित ऐसी परीक्षाएं है जिनके अंकन पर अध्यापक के मनोभावों का प्रयोग पड़ता है। ये दो प्रकार की होती है : (3) मौखिक परीक्षण, (2) निबन्धात्मक परीक्षण ।

i. **मौखिक परीक्षण-** मौखिक परीक्षणों में किसी प्रकार के लिखने आदि की आवश्यकता नहीं पड़ती है ।परीक्षक छात्रों से प्रश्न पूछता है और छात्र भी मौखिक उत्तर देते है। इस प्रकार के परीक्षणों के अंकों में वस्तुनिष्ठता का अभाव रहता है।
ii. **निबन्धात्मक परीक्षण-** इस प्रकार के परीक्षण में उत्तर निबंध के रूप में लिखना पड़ता है। इन परीक्षणों के प्रश्न प्रायः अस्पष्ट होते है। इनके उत्तरों पर अंक देने में वस्तुनिष्ठता का अभाव रहता है। निबन्धात्मक परीक्षा के गुण व दोष दोनों है।

शिक्षक समय–समय पर अपने छात्रों की परीक्षा लेकर अपनी तथा छात्रों की सफलता का ज्ञान प्राप्त करता है। इससे उसे अनेक छात्रों को प्रेरणा देने में सहायता मिलती है तथा छात्रों की योग्यता के बारे में भी वह अपनी निश्चित धारणा गना सकने में सफल होता है। इतना ही नहीं बल्कि शिक्षक को स्वयं भी अपनी कमियों एवं क्षमताओं का ज्ञान हो जाता है। छात्र निर्मित परीक्षाओं से हमारा तात्पर्य उन परीक्षाओं से है जिनका निर्माण कोई शिक्षक अपनी कक्षा के लिए अपने द्वारा पढ़ाये गये विषय के पाठ्यक्रम के उतने भाग के आधार पर करता है जो उसने एक निश्चित अवधि के अन्तर्गत पढ़ाया है। ये परिक्षाएँ विभिन्न

विषयों के लिए तैयार की जाती हैं । इन परीक्षाओं की निर्माण विधि निबन्धात्मक परीक्षाओं एवं मानवीकृत उपलब्धि परीक्षणों से भिन्न होती है, ये परीक्षाएँ वस्तुनिष्ठ होती हैं लेकिन प्रामाणीकृत नहीं होतीं।

शिक्षक निर्मित परीक्षाओं के उद्देश्य

शिक्षित निर्मित परीक्षाएँ शिक्षक एवं छात्र दोनों की दृष्टि से ही अत्यन्त महतवपूर्ण हैं । इन परीक्षाओं को निर्मित करने के प्रमुख उद्देश्य निम्न हैं–

1. इन परीक्षाओं के माध्यम से इस तथ्य की जानकारी हो जाती है कि शिक्षक को अपने उद्देश्यों की प्राप्ति में कहाँ तक सफलता प्राप्त हुई है।
2. शिक्षक सीमित पाठ्यवस्तु का मूल्यांकन सफलतापूर्वक कर लेता है।
3. ये परीक्षाएँ अनवरत मूल्यांकन की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।
4. ये परीक्षाएँ निबन्धात्मक परीक्षाओं का एक सुधारात्मक स्वरूप हैं । इन परीक्षाओं का उद्देश्य निबन्धात्मक परीक्षाओं के दोषों को दूर करके छात्रों की वास्तविक योग्यता की जाँच करना है।
5. इन परीक्षाओं को कम समय में आसानी से तैयार किया जा सकता है, साथ ही इन परीक्षाओं को तैयार करने में शिक्षक को किसी विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं होती।
6. निदानात्मक दृष्टि से इन परीक्षाओं का बड़ा महत्व है। ये परीक्षाएँ जहाँ एक ओर शिक्षक को यह संकेत देती हैं कि उसे शिक्षण कार्य में कहाँ तक सफलता प्राप्त नहीं हुई है वहीं ये छात्र यह आभास करा देतीं कि उसे कौन सी विषय–वसतु ठीक से समझ नहीं आई है।
7. ये परीक्षाएँ शिक्षक को अपने शिक्षण को प्रभावशाली बनाने के अवसर प्रदान करती हैं।

उपर्युक्त उद्देश्यों के अतिरिक्त शिक्षक निर्मित परीक्षाओं की अपनी कुछ प्रमुख विशेषतायें हैं जो इस प्रकार हैं –

(a) ये परीक्षाएँ मानकीकृत नहीं होतीं।
(b) इन परीक्षाओं के प्रश्न वस्तुनिष्ठ होते हैं।
(c) ये परीक्षाएँ किसी भी विषय शिक्षक द्वारा निर्मित की जा सकती हैं।
(d) ये परीक्षाएँ सीमित पाठयवस्तु के सन्दर्भ में कुछ विशिष्ट उद्देश्यों की पूर्ति हेतु तैयार की जाती हैं।
(e) इन परीक्षाओं मे प्रश्नों के विभिन्न रूपों का समावेश आसानी से कियाजा सकता है।
(f) परीक्षा में प्रश्न संक्षिप्त एवं अधिक संख्या में सम्मिलित किये जाते हैं ।
(g) ये परिक्षाएँ परीक्षक की मनोवृति के प्रभाव से पूर्णतया परे रहती हैं।
(h) ये परीक्षाएँ सम्पूर्ण पाठ्यक्रम का प्रतिनिधित्व करती हैं।

4.3.5 प्रमापीकृत परीक्षण एवं शिक्षक निर्मित परीक्षण में अन्तर

यद्यपि प्रमापीकृत एवं शिक्षक निर्मित परीक्षणों में एक से ही पद प्रयुक्त भी, दोनों में निम्नलिखित भिन्नताओं दृष्टिगोचर होतीं हैं–

प्रमापीकृत परीक्षाएँ	शिक्षक निर्मित परीक्षाएँ
1. इन परीक्षाओं का सम्बन्ध ज्ञान के व्यापक क्षेत्र से होता है।	1. इन परीक्षाओं का सम्बन्ध विशिष्ट एवं सीमित पाठ्य–वस्तु से होता है।
2. इन परीक्षाओं का प्रयोग बालक के विकास सम्बन्धी आलेख पत्र (Cumulative Records)तैयार करने में किया जाता है।	2. इन परीक्षाओं का प्रयोग यह ज्ञात करने के लिए किया जाता है कि छात्रों ने किसी विशिष्ट कौशल में किस सीमा तक दक्षता प्राप्त की जाती है।
3. प्रमापीकृत परीक्षण पाठ्यक्रम में हुये नये–नये परिवर्तनों के अनुरूप अपने को ढालने में सक्षम नहीं होते।	3. ये परीक्षण आसानी से पाठ्यक्रम में हुए नये–नये परिवर्तनों के अनुरूप अपने को ढालने में सक्षम होते हैं।
4. इन परीक्षणों में धन, समय एवं परिश्रम अधिक व्यय होता है।	4. इन परीक्षाओं में धन, समयएवं शक्ति कम मात्रा में व्यय होती है।
5. साफल्य परीक्षाएँ प्रमापीकृत होती हैं।	5. शिक्षक निर्मित परीक्षाएँ प्रमापीकृत नहीं होतीं।
6. इन परीक्षणों के निर्माणताओं को अनेक सुविधाएँ उपलब्ध होती हैं।	6. शिक्षक को कोई विशेष सुविधा उपलब्ध नहीं होती है।
7. ये परीक्षाएँ किसी विद्यालय विशेष के पाठ्यक्रम पर आधारित न होकर समस्त विद्यालयों में पढ़ासे जाने वाले पाठ्यक्रम पर आधारित होती हैं।	7. ये परीक्षाएँ किसी विशेष विद्यालय अथवा किसी कक्षा के विशिष्ट उद्देश्यों की पूर्ति हेतु बनायी जाती हैं।
8. इन परीक्षाओं में विभिन्न समूहों या स्तरों के मानक ज्ञात होते हैं।	8. इन परीक्षाओं में किसी प्रकार के मानक ज्ञात नहीं किये जाते हैं।
9. इन परीक्षाओं को प्रयोग छात्रों का वर्गीकरण, चयन एवं नियोजन करने के लिए किया जाता है।	9. इन परीक्षाओं का प्रयोग किसी विशिष्ट प्रकरण के विस्तार से परीक्षण के लिए किया जाता है।
10. इन परीक्षाओं में विषय–वस्तु का चयन शैक्षणिक उद्देश्यों (Educational Objectives)को ध्यान में रखकर किया जाता है।	10. इन परीक्षाओं में विषय–वस्तु का चयन शिक्षण उद्देश्यों (Instructional Objectives) को ध्यान में रखकर किया जाता है।
11. इन परीक्षणों की रचना शिक्षा जगत का कोई	11. इन परीक्षणों की रचना एक या दो

भी प्रबुद्ध व्यक्ति कर सकता है।	अध्यापकों की योग्यताओं एवं दक्षताओं पर निर्भर करती है।
12. इन परीक्षाणों की रचना में ग्रन्थों, विभन्न परीक्षणों, निर्णायकों आदि के प्रयोग की आवश्यकता होती है।	12. इन परीक्षणों में शिक्षणों में शिक्षक के अनुभवों को ही सहारा मात्र माना जाता है।

4.3.6उपलब्धि परीक्षण की आवश्यकता

वेयक्तिक विभिन्नताएँ एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है। इस तथ्य से स्पष्ट है कि समूह में रहने वाले समस्त सदस्यों कि ग्राहयता समान नहीं होती है। परिणाम यह है कि एक कक्षा में अध्ययनरत समस्त छात्रों को किसी विषय में उपलब्धि समान न होकर अलग-अलग होती है। उपलब्धि परीक्षण की आवश्यकताएँ निम्नलिखित है –

i. **छात्रों में विकसित होने वाली क्षमताओं की खोज-** इन परीक्षाओं में छात्रों को प्राप्त होने वाले अंकों के आधार पर उनकी विभिन्न विषयों मे ग्राहयता के आधार पर क्षमता का निर्धारण हो सकता है।
ii. **शिक्षकों के परामर्श-** उपलब्धि परीक्षा में छात्रों को प्राप्त होने वाले अंकों से शिक्षक भी अपने शिक्षण का मूल्यांकन कर सकता है। यदि उसके विषय में अधिकांश छात्र कम अंक प्राप्त करते हैं तो शिक्षक को अपने शिक्षण में सुधार करने की प्रेरणा मिलती है।
iii. **अभिभावकों को छात्र द्वारा विषय चयन में परामर्श-** विभिन्न विषयों के प्राप्तांकों आधार पर छात्रों के अभिभावकों को भी परामर्श दिया जा सकता है कि उनके बच्चे किं विषयों का चुनाव करे।
iv. **वर्गीकरण-** इन अंकों के आधार पर ही विद्यालयों में छात्रों के सजातीय समूह का निर्माण हो सकता है। इस प्रकार सजातीय समूहों मेन सामूहिक निर्देशन देना सरल हो जाता है।
v. **पथ प्रदर्शन एवं उपचारात्मक क्रिया-** ये परीक्षण छात्रों के पथ प्रदर्शन एवं उपचारात्मक क्रियाओं मे एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है।
vi. **उन्नति में सहायक-** छात्रों एवं व्यावसायिक संस्थानों में कार्यरत कर्मचारियों को उन्नति देने में इन परीक्षणों का बड़ा योगदान है।

4.3.7 उपलब्धि परीक्षण की विशेषताएँ

उपलब्धि परीक्षणों की विशेषताएँ निम्नलिखित है-

1) इन परीक्षणों की पाठ्य-वस्तु छात्रों के स्तर, योग्यताओं, रुचियों, एवं क्षमताओं के अनुकूल होती है।
2) इन परीक्षणों के प्रश्न वस्तुनिष्ठ होते हैं अतः आंशिक रूप में अंक प्रदान करने का प्रश्न ही नहीं उठता है।
3) ये परीक्षण विभेदकारी होते हैं। साथ ही, विश्वसनीय तथा वैध भी होते हैं।
4) ये परीक्षाएं धन, समय एवं शक्ति की दृष्टि से मितव्ययी हैं।
5) इन परीक्षाओं का उद्देश्य पूर्व निर्धारित होता है।
6) ये परीक्षण व्यवहारिक दृष्टिकोण से उपयोगी होते हैं।
7) इन परीक्षणों की विषय-सामग्री व्यापक होते है।
8) इन परीक्षणों में प्रमापीकृत परीक्षाओं की सभी विशेषताएं विद्यमान होती हैं, जैसे- अंकन कुँजी, निर्देश पुस्तिका, मानक आदि। ये सभी पहले से ही तैयार कर लिए जाते हैं तथा इन्हें पुस्तिका के रूप में छपवा दिया जाता है।
9) ये परीक्षाएं विभिन्न कक्षाओं के छात्रों के लिए अलग-अलग बनायी जाती हैं।
10) इन इन परीक्षणों का प्रशासन अंकन, समय सीमा आदि पहले से ही निश्चित क्र ली जाती है।
11) इन परीक्षणों में प्रश्नों की संख्या बहुत अधिक होती हैं अतः अवसर या भाग्य का प्रश्न ही नहीं उठता है।
12) इन परीक्षाओं के परीक्षाफलों से शिक्षक को ऐसी सामग्री मिल जाती है जिसके आधार पर वह समस्त शिक्षण योजना का निर्माण कर सकता है।

4.3.8 उपलब्धि परीक्षण का महत्व

उपलब्धि परीक्षणों का अनेक क्षेत्रों में महत्व माना गया है। इन परीक्षणों के माध्यम से अनेक क्षेत्रों में योगदान प्राप्त किया जा सकता है। ये परीक्षण वर्ग निर्धारण एवं पदोन्नति में प्रयोग की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। ये परीक्षण बालकों को शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन प्रदान करने में भी सहायक होते है। इससे पाठ्य-वस्तु के संशोधन में भी सहायक होता है।

1. उपलब्धि परीक्षणों का प्रयोग जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में व्यक्तियों के चयन एवं विद्यालय में छात्रों के प्रवेश हेतु किया जाता है।
2. ये परीक्षण वर्ग निर्धारण एवं पदोन्नति में प्रयोग की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं।
3. चिकित्सा एवं संदर्शन **(Counseling)** के क्षेत्र में उपलब्धि परीक्षणों का प्रयोग व्यापक रूप से किया जाता है। शिक्षिक उपलब्धियों में विशेष रूप से पिछड़े हुए विद्यार्थियों की पहचान, निदान एवं उपचारात्मक शिक्षण **(Remedial Teaching)** की दृष्टि से ये परीक्षाएं अत्यन्त होते हैं।

4. उपलब्धि परीक्षण व्यक्ति की अमुक कार्य में निम्नतम योग्यताओं के मापन में सहायक होते हैं।
5. उपलब्धि परीक्षणों का उपयोग विभिन्न प्रकार के वर्गीकरण एवं नियुक्ति करने में विस्तृत रूप से किया जाता है।
6. ये परीक्षण बालकों को शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन प्रदान करने में भी सहायक होते हैं।
7. इन परीक्षणों की सहायता से शिक्षक की कुशलताओं एवं प्रभावशीलता का मूल्यांकन किया जाता है।
8. न परीक्षणों का प्रयोग पाठ्य–वस्तु के संशोधन में भी सहायक होता है।
9. इसके निर्माण करने तथा सम्बन्धित साहित्य के अध्ययन से शिक्षकों में अपनी व्यावसायिक वृत्ति का विकास होता है।
10. इन परीक्षणों द्वारा सीखने में सुविधा प्रदान की जाती है। छात्र कोयह भली-भांति ज्ञात रहता है कि उसने कितना पढ़ लिया है और कितना पढ़ना शेष है। भविष्य में सीखने हेतु प्रेरणा भी मिलती है।
11. अभिभावकों को रिपोर्ट देना तथा छात्रों को प्रमाण पत्र प्रदान करना।
12. ये परीक्षण विभिन्न शिक्षण विधियों की प्रभावात्मकता का भी मूल्यांकन करते है तथा श्रेष्ठ विधि के चयन में अध्यापक की सहायता करते हैं।
13. इन परीक्षणों का प्रयोग पाठ्य–वस्तु के संशोधन में भी सहायक होते हैं।
14. इन परीक्षणों के आधार पर विभिन्न विद्यालयों के शैक्षिक स्तरों का भी तुलनात्मक अध्ययन संभव है।
15. ये परीक्षण छात्र की सर्वतोन्मुखी मानसिक योग्यता का ज्ञान कराते हैं।

4.3.9 **उपलब्धि परीक्षण की सीमाएँ**

इन परीक्षणों की भी कुछ सीमाएँ है जो इनकी उपयोगिताओं को कम कर देती है। इनकी सीमाएँ निम्नलिखित है-

i. अनेक कारणों से कभी-कभी छात्र परीक्षण में अपनी वास्तविक से अधिक अंक प्राप्त कर लेते है। अतः पूर्ण रूप से इन अंकों पर निर्भर रहना ठीक नहीं है।
ii. बहुत से उपलब्धि परीक्षण तथ्यों की जानकारी देते हैं। इससे योग्यता की सही पहचान नहीं हो पाती है।
iii. यह परीक्षण छात्रों को रटने के लिए प्रोत्साहित करते है।
iv. यह परीक्षण व्यक्ति की केवल शैक्षिक योग्यता को प्रकट करते है। अतः व्यावसायिक निर्देशन के लिए इन पर पूर्णतः निर्भर नहीं रहा जा सकता है।
v. व्यावसायिक संगठनों में कर्मचारियों की उन्नति का यह विश्वसनीय आधार नहीं है।
vi. विचार अभिव्यक्ति की क्षमता का विकास होता है।

4.4. उपलब्धि परीक्षण निर्माण की प्रक्रिया

क्या अध्यापक अपनी कक्षा के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि का मापन तथा मूल्यांकनं करने के लिये समय– समय पर अनके प्रकार के परीक्षणों का प्रयोग करता है। परीक्षण निर्माण के आधार पर परीक्षणों को दो भागों – अप्रमापीकृत परीक्षण (Unstandardized Test) तथा प्रमापीकृत परीक्षण (Standardized made test) भी कहते हैं। इनका निर्माण प्राय: कक्षा अध्यापकों के द्वारा किया जाता है। कक्षा अघ्यापक अपनी आवश्यकतानुसार तुरत फुरत कुछ प्रश्नों की रचना करके अध्यापक निर्मित परीक्षण बना लेता है। प्रमापीकृत परीक्षणों का निर्माता औपचारिक ढंग से परीक्षण की योजना बनाता है, प्रश्न बनाता है, प्रश्नों का तार्किक आधार पर चयन करता है तथा परीक्षण की विश्वसनीयता, वैधता व मानकों की गणना करता है। इसके विपरित प्रमापीकृत परीक्षण छात्रों की उपलब्धि का मापन विश्वसनीय व वैध ढंग से करते हैं तथा प्राप्तांको की व्याख्या किसी बड़े समूह के संदर्भ में करने का आधार उपलब्ध कराते हैं।

4.4 उपलब्धि परीक्षण निर्माण

उपलब्धि परीक्षण के निर्माण तथा प्रमापीकरण की प्रक्रिया को चार मुख्य सोपानों में बांटा जा सकताहैं –

(1) परीक्षण की योजना बनाना (Planning the test)
(2) प्रश्नों की रचना करना (Preparing the Items)
(3) प्रश्नों का चयन करना (Selecting the Items)
(4) परीक्षण का मूल्याकंन करना (Evaluating the Test)

4.4.1 परीक्षण की योजना बनाना

योजना बनाना परीक्षण निर्माण का प्रथम सोपान है। परीक्षण की योजना बनाने वाले इस प्रथम सोपान के अन्तगर्त परीक्षण से संबंधित अनेक निर्णय लिये जाते हैं। परीक्षण के लिये विषयवस्तु, शिक्षण उद्देश्यों, प्रश्नों के प्रकार, प्रश्नों की संख्या, समयावधि, अंकन विधि, परीक्षण का प्रारूप जैसी विभिन्न बातों को निर्धारित किया जाता है। परीक्षण की विषयवस्तु, शिक्षण उद्देश्य, प्रश्नों के प्रकार तथा प्रश्नों की संख्या को निश्चित करने के उपरांत विशिष्टीकरण सारणी (Table of Specifications याBlue-Print) तैयार की जाती है। विशिष्टीकरण सारणी में विषयवस्तु के विभिन्न प्रकरणों तथा शिक्षण उद्देश्यों को दिये जाने वाले भार (Weightage) को स्पष्ट किया जाता है।

परीक्षण निर्माता को प्रश्नों के अनुमानित कठिनाई स्तर तथा प्रश्नों की कुल संख्या व विभिन्न प्रकार के प्रश्नों की संख्या को भी निर्धारित करना हेाता है। परीक्षण विधि, प्रश्नों के प्रकार, छात्रों की आयु, पाठ्यवस्तु की प्रकृति आदि बातों को ध्यान में रखकर प्रश्नों की संख्या निर्धारित की जाती है।

निदानात्मक परीक्षणों के निर्माण के समय पाठ्यवस्तु विश्लेषण (Content Analysis) बड़ी सावधानी से करना चाहिये, जिससे छात्रों की कमियों के पहचानने हेतु उचित प्रश्नों की रचना की जा सकें। विभिन्न प्रकार के प्रश्नों को किस क्रम में परीक्षण में रखना है। इसका पूर्व निर्धारण भी आवश्यक है। प्रश्नों को निम्न क्रम से परीक्षण में रखना अधिक उपयुक्त माना जाता है –

1. सत्यासत्य प्रश्न (True-False Items)
2. मिलान प्रश्न (Matching Items)
3. प्रत्यास्मरण प्रश्न (Recall Items)
4. पूर्ति प्रश्न (Completion Items)
5. बहुविकल्प प्रश्न (Multiple Choice Items)
6. लघु उत्तर प्रश्न (Short Answer Items)
7. निबन्धात्मक प्रश्न (Easy type Items)

अंकन विधि का निर्धारण भी परीक्षण योजना का एक अत्यन्त आवश्यक अंग है। वस्तुनिष्ठ प्रश्नों में साधारणत: सही उत्तर को एक अंक तथा गलत उत्तर को शून्य अंक दिया जाता है। अंकन हाथ से (Manually) किया जायेगा अथवा अंकन कुंजी (Scoring Key) की सहायता से किया जायेगा अथवा कम्पयूटर की सहायता से किया जायेगा – इसका निश्चय भी इसी सोपान में किया जाता है। क्योंकि बहुविकल्प प्रश्नों में अनुमान से (guessing) सही उत्तर देने की संभावना रहती है, इसलिये अनुमान से हुई त्रुटि को समाप्त करने के लिये अंको को संशोधित करने के लिये संशोधन सूत्र का प्रयोग किया जा सकता है। यदि बहुविकल्पात्मक प्रश्नों पर किसी छात्र के द्वारा दिये गये सही उत्तरों की संख्या R है, गलत उत्तरों की संख्या Wहै तथा प्रत्येक प्रश्न में दिये गये विकल्पों की संख्या K है, तब उसका संशोधित प्राप्तांक अग्रांकित सूत्र से ज्ञात किया जाता है –

$$\text{संशोधित प्राप्तांक,} \quad S = R - \frac{W}{K-1}$$

4.4.2 प्रश्नों की रचना करना

परीक्षण निर्माण का दूसरा सोपान प्रश्नों की रचना करना है। इस सोपान में परीक्षण निर्माण के प्रथम सोपान अर्थात परीक्षण की योजना के अन्तर्गत लिये गये निर्णयों को कार्यरूप दिया जाता है। दूसरे शब्दों में विशिष्टीकरण सारणी का अनुसरण करके प्रश्नों की रचना की जाती है। प्रश्नों के लिये निर्देश तैयार कर लिये जाते हैं। इस बात का ध्यान रखा जाता है कि प्रश्नों तथा निर्देशों में प्रयुक्त भाषा व संकेत आदि छात्रों के स्तर के अनुरूप हों। जितने प्रश्न अंतिम परीक्षण में रखने होते हैं, प्राय: उसके दो गुणे प्रश्नों की रचना की जाती है। प्रश्नों की रचना करते समय पूर्ववर्ती परीक्षणों में सम्मिलित किये गये प्रश्नों से संकेत प्राप्त किये जा सकते हैं। वस्तुनिष्ठ प्रश्नों की रचना करते समय आर0एच0दवे (R.H.Dave) के द्वारा प्रस्तुत किये गये अग्रांकित माडल का उपयोग किया जा सकता है।

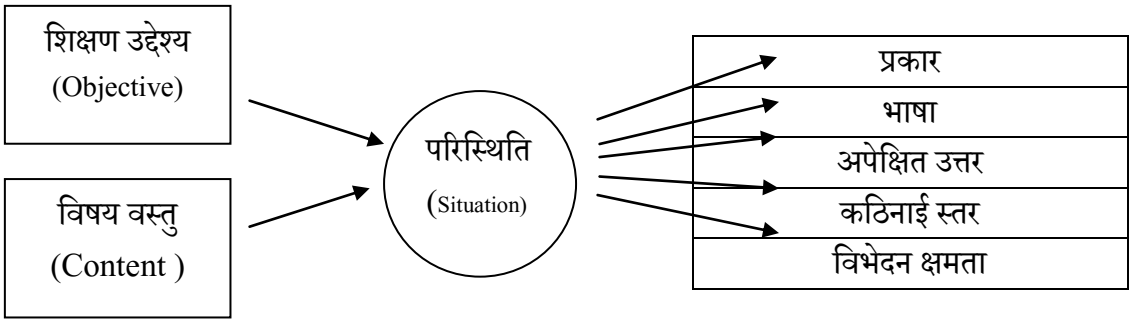

परीक्षण निर्माण के इस अत्यन्त महत्वपूर्ण सोपान में परीक्षण के लिये विभिन्न प्रकार के प्रश्नों की रचना करते समय निम्न बातों का ध्यान रखा जाना चाहिए कि –

i. प्रश्न के उत्तर से संबंधित असार्थक बाधाओं (Irrelevant Barriers to Answers) को यथासंभव कम करने का प्रयास करना चाहिए। द्विअर्थी वाक्यों (Ambiguious Statements) का प्रयोग करके प्रश्न नहीं बनाने चाहिए। अत्याधिक शब्दों (Excessive wordiness) के प्रयोग से प्रश्नों को जटिल नही करना चाहिए। क्लिष्ट शब्दावली (Difficult Vocubulary) अथवा जटिल वाक्य रचना (Complex Sentence Structure) के अनावश्यक प्रयोग से सदैव सावधान रहना चाहिए। प्रश्नों के संबंध में दिये गये निर्देश तनिक भी अस्पष्ट नहीं होने चाहिए।

ii. प्रश्नों के उत्तर देने के लिये अनावश्यक संकेत प्रदान करने से सदैव बचना चाहिए। अनावश्यक शाब्दिक संबंध (Verbal Associations), विशिष्ट निर्णय (Specific Determines), व्याकरण असंगतता Grammatical Inconsistencies), सही उत्तर की लम्बाई (Length of Correct Response) तथा सही उत्तरों की स्थिति (Location of Correct Response) इत्यादि प्रश्नों का उत्तर देते समय परीक्षार्थी को कुछ सामान्य संकेत प्रदान कर सकते हैं।अत: इन संकेतो के प्रयोग से बचने का प्रयास किया जाना आवश्यक है।

iii. सही उत्तरों के लिये किसी निश्चित उत्तर क्रम (Definite Response Pattern) से भी बचना चाहिए। कभी –कभी सही उत्तर एक निश्चित क्रम के अनुसार आने लगते हैं। यदि छात्र उस क्रम को समझ जाते हैं तो वे उस क्रम के आधार पर ही सही उत्तर दे देते हैं। इसलिये सही उत्तर के लिये कोई क्रम न बन सकें, इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए।

iv. प्रश्न की रचना करने के लिये पाठयपुस्तकों के वाक्यो को यथावत नहीं दोहराना चाहिए। जहाँ तक संभव हो सके, परीक्षण निर्माता को अपने शब्दों में ही वाक्यों अथवा प्रश्नों की रचना करनी चाहिए।

4.4.3 प्रश्नों का चयन करना

परीक्षण की योजना तथा उसके प्रारम्भिक रूप की रचना के बाद यह जानने का प्रयास होता है कि परीक्षण कितना श्रेष्ठ है, वैध एवं विश्वसनीय है ।परीक्षण का वास्तविक रचना से पूर्व उनके प्रारम्भिक रूप की जाँच क्र लेनी चाहिए। इस प्रारम्भिक जाँच को Pilot Study कहते है। इसके निम्न उद्देश्य है-

i. परीक्षण के अंतिम रूप में पदों की वास्तविक संख्या इंगित करना।
ii. विभिन्न पदों के मध्य अन्तर-सहसम्बन्ध ज्ञात करना।
iii. अंतिम रूप की वास्तविक समय सीमा ज्ञात करना।
iv. इस जाँच के द्वारा कमजोर एवं बेकार के पदों को परीक्षण से निकाल दिया जाता है।
v. अंकन विधि का निश्चय करना।
vi. परीक्षार्थी एवं परीक्षक के उत्तरों में रुचि व्यक्त करना।
vii. समस्त पदों को उप-भागों में व्यवस्थित करना।

प्रस्तुत सोपान के अन्तर्गत परीक्सं की जाँच दो भागों में की जाती है। प्रथम जाँच – Pre Try-Out कहलाती है और दूसरी जाँच Actual Try-Out कहलाती है।

प्रथम जाँच (Pre Try-Out) – प्रारम्भिक जाँच के लिए परीक्षण का प्रशासन प्रायः मूल जनसंख्या के 35 या 20 लोगों पर इस उद्देश्य से किया जाता है जिससे उसकी मुख्या कमियों को पाकर दूर किया जा सके।

द्वितीय जाँच (Actual Try-Out)– परीक्षण के वास्तविक जाँच के अन्तर्गत पद विश्लेषण की तकनीकी प्रक्रिया का प्रयोग किया जाता है ।पद विश्लेषण एक महतवपूर्ण सोपान है इसके बिना कोई भी परीक्षण पूरा नहीं होता ।पद विश्लेषण वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से परीक्षण निर्माता यह निश्चय करता है कि उसे परीक्षण के किन पदों को सम्मिलित करना है और किन पदों को छोडना है।

4.4.4 परिक्षण का मूल्यांकन करना

परीक्षण का मूल्यांकन निम्न दो बातों को ध्यान में रखकर किया जाता है-

i. परीक्षा कितनी वैध, विश्वसनीय, विभेदकारी या वस्तुनिष्ठ है अर्थात् परीक्षण में आदर्श मापन यंत्र की विशेषताएं किस सीमा तक उपस्थित है।
ii. परीक्षा देने वालों के उतारों का स्वरूप कैसा है अर्थात् विद्यालयों में विषय का शिक्षण किस प्रकार चल रहा है। उत्तम प्रकार का परीक्षण ही यह सूचना विश्वस्त रूप से दे सकते है ।अतः परीक्सं का मूल्यांकन उत्तम मापन की भावी कसौटियों को ध्यान में रखकर किया जाता है।

परीक्षण की विश्वसनीयता परीक्षण-

पुनर्परीक्षण विधि, समानान्तर प्रारूप विधि, अर्द्ध-विटापन विधि तथा रिचर्डसन फार्मूला में से किसी भी एक विधि का प्रयोग करके ज्ञात की जा सकती है। साधारणतः .80 अथवा उससे अधिक विश्वसनीयता वाला परीक्षण अच्छा परीक्षण माना जाता है। इसी प्रकार परीक्षण की वैधता, बाह्य वैधता, विषय-वस्तु वैधता, विशेषज्ञ वैधता, कारक वैधता या पूर्वकथन वैधता आदि विषयों में से किसी एक विधि से ज्ञात की

जा सकती है ।साधारणतः .60 या उससे अधिक वैधता वाला परीक्षण अच्छा परीक्षण माना जाता है । मानकों की दृष्टि से आयु मानक, ग्रेड मानक, शतांशीय मानक तथा टी-मानक आदि स्थापित किये जाते है। सबसे अन्त में परीक्षण निर्देशिका तैयार की जाती है ।इसमें परीक्षण से सम्बन्धित सभी जानकारी विस्तार से दी जाती है अर्थात् परीक्षण निर्देशिका में परीक्षण का उद्देश्य, विश्वसनीयता, वैधता तथा मानक आदि का वर्णन प्रस्तुत रहता है।

4.5 सारांश

उपलब्धि परीक्षण का प्रयोग जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में व्यक्तियों के चयन या विद्यालय में छात्रों के प्रवेश हेतु किया जाता है । ये परीक्षण वर्ग निर्धारण एवं पदोन्नति में प्रयोग की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है । ये परीक्षण बालकों को शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन प्रदान करने में भी सहायक होते है । इससे पाठ्य-वस्तु के संशोधन में भी सहायक होता है । इन परीक्षणों के प्रश्न वस्तुनिष्ठ होते हैं अतः आंशिक रूप में अंक प्रदान करने का प्रश्न ही नहीं उठता है । इस परीक्षणों द्वारा सीखने में सुविधा प्रदान की जाती है ।छात्र को यह भली भांतिज्ञात होता है कि उसने कितना पढ़ लिया है और कितना पढ़ना शेष है । इससे छात्र की सर्वतोन्मुखी मानसिक योग्यता का ज्ञान कराते हैं ।

उपलब्धि परीक्षण निर्माण की प्रक्रिया को चार मुख्या सोपानों में बांटा जा सकता है- परिक्षण की योजना बनाना, प्रश्नों की रचना करना, प्रश्नों का चयन करना तथा परीक्षण का मूल्यांकन करना ।

परीक्षण निर्माण के प्रथम सोपान अर्थात योजना बनाने के अन्तर्गत परीक्षण के प्रकार, विषयवस्तु, प्रश्नों की संख्या, परिक्षण अवधि, प्रशासन व अंकन विधि आदि बातों का निश्चय किया जाता है तथा विशिष्टीकरण तालिका बनाई जाती है ।

द्वितीय सोपान में विशिष्टीकरण तालिका के अनुरूप प्रश्नों की रचना की जाती है । प्रश्नों को बनाते समय परीक्षार्थियों को अनावश्यक भ्रम अथवा संकेत देने से बचना चाहिए ।निदानात्मक परीक्षणों के लिए अतिसूक्ष्म शिक्षण बिन्दुओं पर आधारित प्रश्न बनाने चाहिए ।

परीक्षण निर्माण के तृतीय सोपान में उचित प्रश्नों का चयन किया जाता है । इसके लिए प्रत्येक प्रश्न के लिए कठिनाई स्तर व विभेदन क्षमता नाम के दो गुणांकों की गणना करके पद विश्लेषण किया जाता है तथा उपयुक्त प्रश्नों का चयन किया जाता है । पद विश्लेषण के आधार पर प्रश्नों में सुधार भी किया जा सकता है ।

अन्तिम सोपान अर्थात् परीक्षण मूल्यांकन सोपान के अन्तर्गत परीक्षण की विश्वसनीयता व वैधता ज्ञात की जाती है तथा मानकों को प्रस्तुत किया जाता है । तत्पश्चात् परीक्षण निर्देशिका तैयार कर ली जाती है ।

4.6 शब्दावली

1. उपलब्धि परीक्षण-विद्यालय या विद्यालय के बाहर अर्जित पुराने ज्ञान के मापन का निर्णय प्रशिक्षण या अनुभव की अवधि तथा स्वरूप के परिप्रेक्ष्य में किया जाता है तो इसे उपलब्धि परीक्षण कहते है ।

2. प्रमापीकृत परीक्षण-प्रमापीकृत परीक्षण का सम्बन्ध विशिष्ट एवं सीमित पाठ्यवस्तु से होता है । इन परीक्षाओं का प्रयोग यह ज्ञात करने के लिए किया जाता है कि छात्रों ने किसी विशिष्ट कौशल में किस सीमा तक दक्षता प्राप्त की है ।
3. शिक्षक निर्मित परीक्षण-शिक्षक-निर्मित परीक्षण का सम्बन्ध ज्ञान के व्यापक क्षेत्र से होता है ।इन परीक्षाओं का प्रयोग बालक के विकास सम्बन्धी आलेख तैयार करने में किया जाता है ।

अभ्यास प्रश्न

1. उपलब्धि परीक्षण की परिभाषा दीजिए।
2. उपलब्धि परीक्षण के कितने प्रकार है? उल्लेख कीजिए।
3. प्रमापीकृत उपलब्धि परीक्षण किसे कहते है?
4. उपलब्धि परीक्षण की क्या आवश्यकता है?
5. उपलब्धि परीक्षण की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
6. उपलब्धि परीक्षण के निर्माण प्रक्रिया के सोपानों का वर्णन कीजिए।

4.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. त्रिपाठी, डॉ- मधुसूदन, शिक्षा में निर्देशन एवं परामर्श, विनोद पुस्तक मंदिर, 2005
2. गुप्ता, डॉ- एस. पी., आधुनिक मापन एवं मूल्यांकन, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 3993
3. गुप्ता, डॉ- एस. पी.,सांख्यिकी विधियाँ, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, 3993
4. शर्मा, डॉ. बी. एल., शैक्षिक एवं मानसिक मापन, आर. लाल. बुक डिपो, 2033
5. पाण्डेय, डा. कामताप्रसाद, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी 2033

4.8 निबंधात्मक प्रश्न

1. उपलब्धि परीक्षण की अवधारणा को स्पष्ट करें और उसकी विशेषताओं का वर्णन करें ।
2. उपलब्धि परीक्षण के कितने प्रकार है? प्रकारों का वर्णन कर उनमें अंतर स्पष्ट करें ।
3. उपलब्धि परीक्षण क्यों आवश्यक है? उदाहरण सहित स्पष्ट करें ।
4. उपलब्धि परीक्षण का क्या महत्व है तथा उसकी सीमओं का भी वर्णन करें ।
5. उपलब्धि परीक्षण निर्माण की प्रक्रिया का वर्णन करें ।

इकाई-5 संस्कृत शिक्षण एवं क्रियात्मक अनुसंधान

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3. क्रियात्मक अनुसन्धान से आशय
5.4. संस्कृत शिक्षण के विशेष सन्दर्भ में क्रियात्मक अनुसन्धान की आवश्यकता
5.4.1 मौलिक अनुसन्धान एवं क्रियात्मक अनुसन्धान में अन्तर
5.5 क्रियात्मक अनुसन्धान के सोपान
5.5.1 अभिकल्प
5.5.2. क्षेत्र
5.6. संस्कृत शिक्षण के क्षेत्र में क्रियात्मक अनुसन्धान हेतु कतिपय समस्याएँ
5.7. क्रियात्मक अनुसन्धान के प्रारुप का एक उदाहरण
5.8. सारांश
5.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची
5.12 सहायक. उपयोगी पाठ्य सामग्री
5.13 निबंधात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में आप जान सकेंगे कि संस्कृत भाषा-शिक्षण में आने वाली समस्यायों के लिये संस्कृत भाषा शिक्षक किस प्रकार अपने शिक्षण कार्य के साथ-साथ प्रयोग एवं परीक्षण पर आधारित अनुसन्धान कार्य भी कर सकते है। इस प्रकार क्रियात्मक अनुसन्धान व्यावहारिक तथा उपयोगी तो होगा ही, साथ ही अन्य भाषा शिक्षकों के लिये प्रेरणादायी भी सिद्ध होगा, क्रियात्मक अनुसन्धान एक छोटे पैमाने पर किया गया अनुसन्धान है जिसके द्वारा अभ्यासकर्त्ता अपनी वास्तविक शैक्षिक परिस्थितियों से जुडी मूर्त समस्याओं का समाधान वैज्ञानिक विधि से करता है।

क्रियात्मक अनुसन्धान सम्बन्धी अनुसन्धान कार्य भाषागत उपलब्धियों के उन्नयन तथा संस्कृत भाषा-अधिगम में आने वाली विभिन्न बाधाओं के निराकरण तथा उपचार में सहायक होगा । भाषा

शिक्षण की प्रक्रिया का अंग बन जाने तथा प्रस्तुत समस्याओं के समाधान हेतु शिक्षण के साथ-साथ चलने वाले अनुसन्धान कार्य के कारण ही इसे क्रियात्मक अनुसन्धान कहा जाता है।

क्रियात्मक अनुसन्धान संबंधी इस अध्ययन से आप अपनी शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में आवश्यक सुधार हेतु अनुसन्धान परियोजनाओं का निर्माण एवं क्रियान्वयन कर सकेंगे और शिक्षार्थियों के भाषा अधिगम की क्रिया को अधिक सरल एवं सुगम बना सकेंगे।

5.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन उपरान्त आप -

1. क्रियात्मक अनुसन्धान का आशय एवं महत्व बता सकेंगे।
2. संस्कृत भाषा-शिक्षण के विभिन्न क्षेत्रों से सम्बन्धित समस्याओं और प्रकरणों का चयन सकेंगे।
3. क्रियात्मक अनुसन्धान एवं मौलिक अनुसन्धान में अन्तर समझ सकेंगे।
4. क्रियात्मक अनुसन्धान के विभिन्न सोपानों को समझकर किसी विषय पर क्रियात्मक अनुसन्धान की रुपरेखा का निर्माण कर सकेंगे।
5. क्रियात्मक अनुसन्धान के अभिकल्पों का वर्णन कर सकेंगे।
6. क्रियात्मक अनुसन्धान प्रतिवेदन प्रभावपूर्ण रुप से प्रस्तुत कर सकेंगे।

5.3 क्रियात्मक अनुसन्धान से आशय-

यह सर्वविदित है कि शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया का केन्द्र बिन्दु शिक्षार्थी होता है। हमारे समस्त शिक्षा सम्बन्धी कार्य, सम्पूर्ण क्रियायें, सम्पूर्ण प्रयास शिक्षार्थी को ध्यान में रखकर किये जाते हैं क्योंकि उन सबका प्रतिफल शिक्षार्थी के विकास में प्रदर्शित होता है। परन्तु यह भी सत्य है कि सम्पूर्ण शिक्षण प्रक्रिया का स्त्रोत शिक्षक है और प्रत्येक सफल शैक्षणिक प्रयोग के पीछे शिक्षक का सजगता से किया गया चिन्तन, उसका सतत् प्रयोगधर्मी दृष्टिकोण अपने शिक्षण कार्य को अधिकाधिक सार्थक बनाने की लगन एवं प्रयत्न होते हैं। शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में प्रयोगधर्मी दृष्टिकोण में शैक्षिक अनुसन्धान के क्षेत्र में एक ऐसी महत्वपूर्ण प्रवृत्ति को जन्म दिया जो ऐसे व्यक्तियों द्वारा शैक्षिक अनुसन्धान करने का आग्रह करती है। जो शिक्षा के क्षेत्र से सीधे जुड़े हुए हो। कुछ शिक्षाविदों को यह प्रतीत हुआ कि शिक्षा के क्षेत्र में अनेक ऐसी समस्यायें होती है जिनका समाधान खोजने में ऐसे व्यक्ति अधिक महत्वपूर्ण योगदान कर सकते है जो उसी क्षेत्र में कार्य कर रहें हो। ये लोग अपनी शैक्षिक समस्याओं से भलीभाँति परिचित होने के कारण उनका समाधान निकालने में और प्राप्त समाधानों का प्रयोग द्वारा मूल्यांकन में अधिक सक्षम होते है। अतः उनके द्वारा किये गये अनुसंधान कार्यों से शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में सार्थक सुधार आ सकेगा। शिक्षा-

शास्त्रियों के इसी चिन्तन के फलस्वरुप शैक्षिक अनुसन्धान के क्षेत्र में क्रियात्मक अनुसन्धान का आविर्भाव हुआ।

स्टीफन एम. कोरे के अनुसार "क्रियात्मक अनुसन्धान एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत शिक्षक तथा शिक्षा से संबंध अन्य व्यक्ति अपनी कल्पना शक्ति का सृजनात्मक एवं रचनात्मक प्रयोग करते हुए साहस पूर्वक उन क्रियाक्लापों का परीक्षण करते है , जिनसे अधिक सफलता मिलने की आशा होती है फिर उनकी उपयोगिता की जाँच के लिए विधिवत् एवं व्यवस्थित रुप से प्रमाण एकत्रित करते है।"

प्रो. गुड के अनुसार "क्रियात्मक अनुसंधान शिक्षकों, निरीक्षको, प्रशासकों द्वारा अपने निर्णय एवं कार्यों में सुधार लाने के लिए जो अनुसंधान कार्य किया जाता है, वह क्रियात्मक अनुसंधान कहलाता है।"

दूसरे शब्दों में क्रियात्मक अनुसंधान एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें शिक्षाकर्मी शिक्षण कार्य में सुधार लाने के लिए अपनी शैक्षिक समस्याओं का वैज्ञानिक ढंग से हल खोजने के लिए प्रमाण एकत्रित करते है, प्रयोग और परीक्षण करता है और उनका मूल्यांकन करता है।

अभ्यास प्रश्न

1. क्रियात्मक अनुसंधान से क्या तात्पर्य है?

5.4 संस्कृत शिक्षण के विशेष संदर्भ में क्रियात्मक अनुसंधान की आवश्यकता

संस्कृत शिक्षण से सम्बद्ध अनेक समस्याओं में प्रक्रियात्मक रुप से समाधान एवं सुधार लाने की दृष्टि से क्रियात्मक अनुसंधान की आवश्यकता को रेखांकित किया जा सकता है। इसके माध्यम से कक्षा की कार्य शैली एवं व्यवस्था में अनेक सुधार तो आएगा ही साथ-साथ संस्कृत शिक्षक की शैक्षिक परिस्थितियों में भी सुधार आएगा।

- कक्षा वातावरण संस्कृतमय बनाने में सहायक।
- स्तरानुसार संस्कृत शिक्षण।
- कक्षा शिक्षण को प्रभावी बनाना।
- वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास।
- जनतान्त्रिक मूल्यों की सुरक्षा।
- सुनना, बोलना, पढ़ना एवं लिखना संबंधी कौशलों के विकास में सहायक।
- कक्षा प्रबन्धन।

5.4.3. मौलिक अनुसन्धान एवं क्रियात्मक अनुसन्धान में अंतर-

अनुसन्धान प्रमुखतः दो प्रकार के हैं- मौलिक / मूलभूत (Fundamental) एवं अनुप्रयुक्त (अप्लाइड)। अनुप्रयुक्त अनुसन्धान ही क्रियात्मक अनुसन्धान है। यद्यपि दोनों की क्रिया विधि एक ही है लेकिन उद्देश्य, क्षेत्रों एवं परिणाम की दृष्टि से इनमें अंतर है।

उद्देश्य की दृष्टि से- "मौलिक अनुंसंधान में आप शोधकर्ता के रूप में सर्वमान्य नियमों एवं सिद्धान्तों की खोज करते हैं जबकि क्रियात्मक अनुसन्धान में आप अपने भाषा शिक्षण के क्षेत्र में ही कक्षा कार्यों में सुधार लाने के लिए अपनी समस्याओं का समाधान ढूँढते हैं"। उदाहरणार्थ- "संस्कृतभाषा अभिव्यक्ति में वाचन कौशल संबंधी अशुद्धियों को दूर करना"।

समस्या के स्वरूप एवं महत्व की दृष्टि से- मौलिक अनुसन्धान में आप की समस्या का सैद्धान्तिक कठिनाइयों से अधिक संबंध होता है, जबकि क्रियात्मक अनुसन्धान में समस्याएँ हल करना विद्यालयगत समस्याओं से संबंधित होती हैं। अतः समस्या के स्वरूप में अन्तर पाया जाता है।

न्यादर्श की दृष्टि से- मौलिक अनुसन्धान में न्यादर्श का आकार क्रियात्मक अनुसन्धान की अपेक्षा बड़ा होता है और न्यादर्श का चुनाव भी अत्यधिक सावधानी से किया जाता है। ताकि न्यादर्श सम्पूर्ण जनसंख्या का प्रतिनिधि बन सके, जबकि क्रियात्मक अनुसन्धान में न्यादर्श किसी कक्षा के छात्र तथा कभी-कभी कुछ विशिष्ट विद्यार्थियों तक ही सीमित होता है।

सामान्यीकरण की दृष्टि से- क्रियात्मक अनुसन्धान की अपेक्षा मौलिक अनुसन्धान के सामान्यीकरण की प्रामाणिकता अधिक होती है। यहाँ सामान्य नियमों का निर्धारण किया जाता है। नवीन सत्यों एवं तथ्यों को खोजा (ढूँढा) जाता है। जबकि क्रियात्मक अनुसन्धान में स्थानीय सन्दर्भ में सामान्य निष्कर्ष मात्र निकाले जाते हैं वे भी विषयगत कक्षानुरूप कार्य पद्धति सुधारने हेतु।

अनुसन्धान रूपरेखा की दृष्टि से- अनुसन्धान कार्य प्रारंभ करने से पूर्व आप जो भी अनुसन्धान कार्य की संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत करते हैं, क्रियात्मक अनुसन्धान में यह रूपरेखा वास्तविक कक्षा व विद्यार्थीगत परिस्थितियों के अनुसार लचीली एवं परिवर्तनशील होती है। जबकि मौलिक अनुसन्धान में यह रूपरेखा जटिल होती है, उसमें परिवर्तन शीघ्रतापूर्ण नहीं लाया जा सकता है।

अभ्यास प्रश्न

2. संस्कृत शिक्षण को प्रभावी बनाने हेतु क्रियात्मक अनुसन्धान कैसे सहायक होता है। चार पंक्तियों में लिखे।
3. मौलिक अनुसन्धान एवं क्रियात्मक अनुसन्धान में अंतर स्पष्ट कीजिए।

5.5 क्रियात्मक अनुसंधान के सोपान

क्रियात्मक अनुसन्धान का आशय, आवश्यकता एवं अंतर से अवगत होने के उपरांत अब यहाँ पर आपको यह जानना आवश्यक है कि क्रियात्मक अनुसन्धान की इस प्रकिया को किस प्रकार से व्यवहार में लाया जाए। सामान्यत क्रियात्मक अनुसन्धान के नम्नांकित सोपान माने जाते हैं।

- **समस्या का चयन**
- **समस्या का सीमांकन**
- **समस्या के संभाव्य कारणों का निदान एवं विश्लेषण**
- **क्रियात्मक परिकल्पनाओं का निर्माण**
- **कार्य योजना का निर्माण और उसका प्रयोग**
- **क्रियात्मक परिकल्पनाओं का परीक्षण एवं प्रमाणीकरण**

समस्या का चयन- समस्या की स्पष्ट पहचान के बिना समस्या का समाधान पाना संभव नहीं होगा क्योंकि क्रियात्मक अनुसन्धान में समस्या ही वह विषय है जिसका अनुसन्धान द्वारा समाधान ढूँढा जा रहा है। संस्कृतभाषा शिक्षक होने से क्रियात्मक अनुसन्धान के अन्तर्गत आपकी समस्या का संबंध संस्कृतभाषा शिक्षण-अधिगम के क्षेत्र से होना चाहिए।

कार्ययोजना का निर्माण और उसका प्रयोग- क्रियात्मक परिकल्पनाओं के निर्माण के पश्चात अनुसन्धानकर्त्ता कार्य योजना बनाता है। परिकल्पनाओं की परीक्षा के लिए उपयुक्त रूपरेखा तैयार करता है जिसमें कार्ययोजना को संपादित करने के लिए अपेक्षित साधन, विधियाँ, आधार सामाग्री प्राप्त करने के लिए उपकरणों आदि का उल्लेख होता है और उनकी उपयुक्तता के कारणों पर प्रकाश डाला जाता है।

5.5.3. क्रियात्मक अनुसन्धान के अभिकल्प

क्रियात्मक अनुसन्धान के सोपानों के अध्ययन से हमें ज्ञात होता है कि शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया सम्बन्धित समस्या के निराकरण की प्रक्रिया क्या होगी। इस प्रक्रिया की पूर्ति हेतु वैज्ञानिक तरीके से व्यूह रचना कर समस्या समाधान तक पहुँचना अभिकल्प कहलाता है। क्रियात्मक अनुसन्धान के अभिकल्प से तात्पर्य उस नियामक व्यवस्था से है जिसके अनुसार क्रियात्मक अनुसन्धान की परिकल्पनायें निर्मित की जाती हैं उनका परीक्षण सुनिश्चित किया जाता है तथा उनके माध्यम से । इस दृष्टि से उच्चारण, वर्तनी, शब्द प्रयोग, शब्द रचना, वाक्य रचना, पठन, लेखन आदि क्षेत्र में विविध समस्याएँ हो सकती है। जिनका क्रियात्मक अनुसन्धान द्वारा समाधान संस्कृतभाषा-शिक्षण के कार्य को प्रभावी बना सकता है।

i. **समस्या का सीमांकन -** समस्या के व्यापक रूप को पहचानने के बाद उसमें से एक निश्चित विशिष्ट समस्या का चयन कर उस समस्या की सीमाएँ निर्धारित करना समस्या का सीमांकन कहलाता है। उदाहरणार्थ अक्षर संबंधी त्रुटियों का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। इस व्यापक क्षेत्र में

'र' 'ऋ' से संबंधित अक्षरों की त्रुटियों को परिशोधन के लिए चुनना समस्या का सीमांकन है। यही एक प्रकार से समस्या का परिभाषीकरण है।

ii. **समस्या के संभाव्य कारणों का निदान एवं विश्लेषण-** समस्या चयन के पश्चात अनुसन्धानकर्ता को यह देखना चाहिए कि समस्या के संभाव्य कारण क्या हैं और क्यों हैं? इसका पता लगाने के लिए शोधकर्ता को प्रमाणों का सहारा उसी प्रकार लेना पड़ता है जिस प्रकार चिकित्सक को रोग के लक्षणों आदि का। जिस प्रकार रोग के कारणों का सही से पता लग जाने पर ही रोग का ठीक उपचार संभव होता है। उसी प्रकार समस्या के प्रासंगिक कारणों के ज्ञान से ही समाधान संभव हो सकेगा।

iii. **क्रियात्मक परिकल्पनाओं का निर्माण-** समस्या के कारणों के निदान एंव विश्लेषण के बाद अगला चरण है क्रियात्मक परिकल्पनाओं का निर्माण अर्थात उन क्रियाओं के बारे में विचार करना जिनसे समस्या का निराकण संभव हो। ये क्रियात्मक परिकल्पनायें **आनुमानिक** समाधान हैं। इनकी प्रमाणिकता प्रयोग और परीक्षण की कसौटी पर ही मालूम हो सकती है. परिकल्पनाएँ हमें क्रियात्मक अनुसन्धान के लिए दिशा प्रदान करती हैं वे हमें ऐसी संभावित क्रियाएँ सुझाती हैं जो समस्या को समाधान निकालने में सहायक होती हैं। समस्या का समाधान निकाला जाता है। क्रियात्मक अनुसन्धान की दृष्टि से उपयुक्त अभिकल्प निम्नलिखित हैं-

iv. **एकल समूह अभिकल्प-** क्रियात्मक अनुसन्धान में इस अभिकल्प का सर्वाधिक प्रयोग किया जाता है इस अभिकल्प के अन्तर्गत समस्या का अध्ययन करने के लिए प्रयोज्यों का एक ही समूह लिया जाता है। किसी समस्या पर एकल समूह प्रयोग द्वारा अध्ययन के लिए भाषा शिक्षक किसी एक प्रमुख भाषा समस्या तथा अशुद्ध लेखन की पुनरावृत्ति होना। उदाहरणार्थ वह देखता है कि कक्षा के कितने शिक्षार्थी लेखन के समय अशुद्ध लेखन करते हैं तथा कितने लेखन कौशल का पूर्ण उपयोग करते हुए शुद्ध लेखन करते हैं। तत्पश्चात शिक्षक इस समस्या के समाधान के लिए कार्ययोजना बनाता है तथा कार्ययोजनानुसार लेखन में अशुद्धि को दूर करता है।

v. समस्या निवारणार्थ प्रयुक्त उपायों को क्रियान्वित करने के पश्चात-निश्चित अवधि तक उसी समस्या में शिक्षार्थियों की स्थिति पुनः उसी प्रकार मापा जाता है जैसा कि निवारणार्थ उपायों को करने से पूर्व मापा गया था। इस प्रकार प्राप्त परिणामों के आधार पर यह देखा जाता है कि निवारणार्थ प्रयुक्त उपाय कहाँ तक उपयोगी सिद्ध हुए हैं।

vi. **समानान्तर समूह अभिकल्प-** इस अभिक्लप को तुलनात्मक अभिकल्प के नाम से भी जाना जाता है। इसमें अशुद्ध लेखन करने वाले शिक्षार्थियों के दो या तीन सामान्य लघु समूह बनाये जाते हैं । इसमें एक समूह को प्रयोगात्मक समूह और दूसरे समूह को नियन्त्रित समूह कहा जाता है। नियन्त्रित समूह में लेखन शोधन संबंधित वही समान्य कक्षागत क्रियाकलाप आयोजित होते रहते हैं, जिन्हें शिक्षक पहले भी करता था, लेकिन प्रयोगात्मक समूह के लेखन में सुधार हेतु सामान्य क्रियाकलापों के स्थान पर कुछ विशेष क्रियाकलापों का आयोजन किया जाता है। जैसे- वर्णलेखन, चित्रसाहचर्य

प्रदर्शित कर। प्रायोगिक समूह में प्रयुक्त उपायों के आधार पर शिक्षार्थियों के लेखन में आये सुधार की तुलना नियंत्रित समूह से प्राप्त परिणाम के आधार पर की जाती है।

vii. **चक्र समूह अभिकल्प-** क्रियात्मक अनुसन्धान का यह अभिकल्प समानांतर समूह अभिकल्प से थोड़ा भिन्न है । इस अभिकल्प के आधार पर दो समानान्तर समूहों की कार्य पद्धति में एक निश्चित अवधि के पश्चात् परिवर्तन कर दिया जाता है। इस निश्चित अवधि को प्रथम चक्र का नाम दिया जा सकता है। प्रथम चक्र में भाषा शिक्षक ने जिस एक समूह को नियन्त्रित समूह का नाम दिया था। एक निश्चित अवधि के पश्चात् दूसरे चक्र में वह प्रायोगिक समूह बना दिया जाता है। द्वितीय चक्र में जो द्वितीय समूह प्रायोगिक था, उसे नियन्त्रित समूह बना दिया जाता है । पूर्व में अपनायी गयी शिक्षण प्रक्रिया की पुनरावृत्ति की जाती है । केवल विषय वस्तु के स्वरूप को बदला जाता है । लेकिन इसका स्तर वही रहता है तथा भाषा शिक्षक भी वही रहता है । देखना यह है कि द्वितीय चक्र में बनाये गये प्रायोगिक समूह ने इस बार निर्मित नियंत्रित समूह की तुलना में कितनी कुछ उपलब्धियाँ अर्जित की जिससे प्रथम चक्र के नियंत्रित समूह को भी प्रायोगिक समूह की भाँति अतिरिक्त शिक्षण विधियों क्रियाकलापों का लाभ मिल सके।

5.5.2. क्रियात्मक अनुसन्धान के क्षेत्र-

- छात्र व्यवहार से सम्बन्धित समस्याएँ
- शिक्षक व्यवहार से सम्बन्धित समस्याएँ
- शिक्षण व्यवहार से सम्बन्धित समस्याएँ
- परीक्षा एवं परीक्षण से सम्बन्धित समस्याएँ
- पाठ्य सहगामी क्रियाओं से सम्बन्धित समस्याएँ
- विद्यालय प्रबन्धन एवं प्रशासन से सम्बन्धित समस्याएँ

अभ्यास प्रश्न

4. क्रियात्मक अनुसन्धान के सोपानो के नाम लिखिये ।
5. क्रियात्मक अनुसन्धान के अभिकल्प कौन-कौन से हैं ?
6. क्रियात्मक अनुसन्धान के क्षेत्र लिखिये ।

5.6. संस्कृत शिक्षण के क्षेत्र में क्रियात्मक अनुसन्धान हेतु कतिपय समस्यायें

- संस्कृत भाषा शिक्षण कौशलों (श्रवण, वाचन, पठन, लेखन) के प्रोन्नयन हेतु उपयुक्त क्रियाकलापों का आयोजन एवं परीक्षण।
- वर्तनी शिक्षण में श्रुतलेख विधि तथा अनुलेख विधि का तुलनात्मक अध्ययन
- संस्कृत शिक्षण विधियों की प्रभावकारिता का अध्ययन।
- संस्कृत शिक्षण के लिये उपयुक्त वातावरण के निर्माण की समस्या।
- संस्कृत भाषा में प्रभावोत्पादक अभिव्यक्ति की समस्या।
- संस्कृत के कालांश से छात्रों के पलायन की समस्या।
- संस्कृत विषय सम्बन्धित कमजोर छात्रों हेतु उचित निर्देशन के अभाव की समस्या।- परामपरागत एवं आधुनिक धारा के विद्यार्थियों की संस्कृत भाषा ज्ञान का तुलनात्मक अध्ययन।
- संस्कृत शिक्षण में व्याकरण नियमों एवं भाषा विज्ञान के नियमों की अनदेखी करने की समस्या।

5.7. क्रियात्मक अनुसन्धान के प्रारुप का एक उदाहरण-

क्रियात्मक अनुसन्धान के विभिन्न पक्षों की जानकारी के पश्चात् अब आपके समक्ष छात्रों की अशुद्ध वर्तनी से संबंधित एक क्रियात्मक अनुसन्धान के प्रारुप का उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है जो आपके लिए उपयोगी होगा।

क्रियात्मक अनुसन्धान का प्रारुप-

अनुसन्धानकर्त्ता- कक्षा अष्टमी का संस्कृत शिक्षक

कक्षा- आठवीं

समस्या- विद्यार्थी वर्तनी सम्बन्धी अशुद्धियाँ अधिक करते हैं।

समस्या का सीमांकन एवं परिभाषीकरण- न, ण वर्णों से संबंधित वर्तनीगत अशुद्धियाँ।

विद्यार्थी न,ण के उच्चारणगत अंतर को स्पष्ट रुप से नहीं समझते और बोलने तथा पढ़ने में इन वर्णों वाले शब्दों का अशुद्ध उच्चारण करते हैं। इसका प्रभाव उनकी वर्तनी पर भी पड़ता है। लिखने में न की जगह ण या ण की जगह न लिखते हैं।

निदान-समस्या के कारण-

- विद्यार्थी न,ण का स्पष्ट अन्तर नहीं समझते हैं।
- न, ण का अशुद्ध उच्चारण करते हैं।
- शिक्षक न, ण वर्ण संबंधी त्रुटियों का संशोधन नहीं करते हैं।
- न, ण वाले शब्दों के लिखित अभ्यास पर्याप्त मात्रा में नहीं कराये जाते।
- स्थानीय बोलियों का प्रभाव।

क्रियात्मक परिकल्पनाएँ-

- यदि विद्यार्थियों को न, ण वर्णों के स्थान, प्रयत्नगत अंतर स्पष्ट करते हुए शुद्ध उच्चारण कराया जाए और तदनुसार उनका लिखित रुप भी ज्ञात करा दिया जाए तो वे त्रुटियाँ नहीं करेंगे।
- शिक्षक न, ण वाले कुछ शब्दों के उच्चारण का आदर्श प्रस्तुत करें और विद्यार्थियों से उन शब्दों का शुद्ध उच्चारण कराते हुए श्यामपट्ट पर उनके लिखित रुप का अभ्यास कराएँ तो विद्यार्थियों से वे त्रुटियाँ नहीं होगी।
- न, ण वाले शब्दों के अधिकाधिक लिखित अभ्यास कराएँ तो विद्यार्थी अशुद्धियाँ नहीं करेंगे।
- यदि शिक्षक लिखित रचना में न, ण संबंधी त्रुटियों के संशोधन पर विशेष ध्यान दें और विद्यार्थी शुद्ध रुप का अभ्यास करते रहें तो ये त्रुटियाँ नहीं होंगी।
- यदि विद्यार्थियों को प्रतियोगिता के रुप में अथवा कक्षा परीक्षण के रुप में निम्न प्रश्न दिए जाएँ-
  - ऐसे शब्दों को लिखो जिनके अंत में 'न' का प्रयोग हो।
  - ऐसे शब्दों को लिखो जिनके अंत में 'ण' का प्रयोग हो।
  - ऐसे शब्दों को लिखो जिनके मध्य एवं आदि में 'न' का प्रयोग हो।
  - ऐसे शब्दों को लिखो जिनके मध्यम एवं आदि में 'ण' का प्रयोग हो।
  - ऐसे शब्दों को लिखो जिनमें 'न' एवं 'ण' वर्ण किसी अन्य वर्णों से संयुक्त हो।
  - भाषा प्रयोगशाला का प्रयोग कर अन्तर को सिखाया जा सकता है।
  -

क्रियात्मक परिकल्पनाओं पर आधारित कार्ययोजना –

क्रियात्मक परिकल्पना संख्या			
क्रियाएँ	**विधि**	**अपेक्षित साधन**	**अपेक्षित समय**
केवल 'न' युक्त शब्दों का उच्चारण और लेखन केवल 'ण' युक्त शब्दों का उच्चारण एवं लेखन	संस्कृत शिक्षक द्वारा शुद्ध उच्चारण एवं आदर्श बालकों द्वारा अनुकरण व लेखन	'न'युक्त शब्दों की सूची 'ण' युक्त शब्दों की सूची	4 सप्ताह पठन एवं रचना के कालांश में
ऐसे शब्दों के उच्चारण एवं लेखन जिनमें 'न' 'ण' दोनों का प्रयोग हो।	बालकों द्वारा अनुकरण एवं लेखन	ऐसे शब्दों की सूची एवं शुद्ध उच्चारण का टेप	4 सप्ताह पठन एवं रचनाके कालांशों में
'न' 'ण' युक्त शब्दों की रचना	संस्कृत शिक्षक द्वारा व्याकरण के कालांश में शिक्षण	ऐसे शब्दों की सूची एवं चार्ट	2 सप्ताह,व्याकरण के कालांशों में
'न' 'ण' वाले शब्दों का लिखित अभ्यास	संस्कृत शिक्षक द्वारा श्रुतलेख एवं शब्द के अभ्यास देख जायेंगे।	रचना पुस्तिका, ऐसे चुने हुए अनुच्छेद जिनमें न ण का प्रयोग हुआ हो।	4 सप्ताह, रचना कालांश में
स्वतंत्र रचना में 'न' 'ण' युक्त शब्दों के शुद्ध लेखन का अवसर	संस्कृत शिक्षक छात्रों के रचना कार्यों को देखेगा और संशोधन करेगा	रचना पुस्तिका	4 सप्ताह, रचना के कालांश में।
'न' 'ण' वाले शब्दों के लिखने की प्रतियोगिता, सर्वोच्च अंक प्राप्त करने वाले विद्यार्थी को पुरस्कार, अधिक त्रुटियां करने वाले छात्र को अभ्यास	संस्कृत शिक्षक पर्यवेक्षण एवं मूल्यांकन करेगा	उत्तर पुस्तिका एवं पुरस्कार सामग्री	4 सप्ताह, प्रति सप्ताह एक दिन

क्रियात्मक परिकल्पानाओं का परीक्षण एवं प्रतिफल-

पर्यवेक्षण एवं मूल्यांकन द्वारा उपर्युक्त परिकल्पानाओं की व्यावहारिक सफलता सिद्ध होने पर अनुसन्धानकर्त्ता

इन्हें प्रयोग में लाएगा । शिक्षक किसी समस्या के एक पटल को क्रियात्मक अनुसन्धान संबंधी उपर्युक्त प्रक्रिया को अपना सकता है। यह भी ध्यातव्य है कि प्रक्रिया या क्रियाविधि साधन मात्र है। साध्य नहीं । साध्य तो समस्या का निराकरण करना है।

क्रियात्मक अनुसन्धान की उपयोगिता यह है कि दैनिक शिक्षण योजना में बिना किसी व्यतिक्रम या व्यवधान के शिक्षक समस्या के समाधान का प्रयत्न करता है और निष्कर्ष के आधार पर अपनी शिक्षण प्रक्रिया में सुधार लाता है।

5.8 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान चुके हैंकि क्रियात्मक अनुसन्धान एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें अनुसन्धानकर्त्ता अपनी समस्याओं का वैज्ञानिक ढ़ग से अध्ययन करने का प्रयास करता हैं ताकि वह अपने कार्यों का मूल्यांकन कर सके व उनमें संशोधन कर सके। समस्या का वैज्ञानिक अध्ययन, समस्या के कारणों का पता लगाना, उचित परिकल्पानाओं का निर्माण करना, प्रयोग करना, सफलता-असफलता के आधार पर सही प्रयोगों का प्रतिपादन, निष्कर्षों के आधार पर सामान्यीकरण और समाधान द्वारा शिक्षण प्रक्रिया में सुधार लाना ही क्रियात्मक अनुसन्धान की क्रियाविधि है।

क्रियात्मक अनुसन्धान मौलिक अनुसन्धान से उद्देश्य, समस्या के महत्व, न्यादर्श, सामान्यीकरण व रुपरेखा की दृष्टि से भिन्न होता है क्योंकि क्रियात्मक अनुसन्धान की समस्या सामान्य न होकर विशिष्ट होता है, इसका संबंध विद्यार्थियों की व्यावहारिक कठिनाइयों से होता है, उसके निष्कर्ष भी विद्यालय विशेष अथवा कक्षा विशेष के विद्यार्थियों पर लागू होते हैं। संस्कृत भाषा में क्रियात्मक अनुसन्धान मुख्यतः भाषाकौशलों (सुनना, बोलना, पढ़ना, लिखना) से संबंधित होते हैं। क्रियात्मक अनुसन्धान के अभिकल्प मुख्यतः तीन प्रकार के हैं- एकल समूह अभिकल्प, समानान्तर समूह अभिकल्प, चक्र समूह अभिकल्प, लेकिन संस्कृत भाषा शिक्षक सामान्यतः एकल समूह अभिकल्प का प्रयोग कर समस्या समाधान करते है।

5.9 अभ्यास प्रश्न के उत्तर

1. क्रियात्मक अनुसन्धान एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें शिक्षण कार्य में सुधार लाने के लिए अपनी शैक्षिक समस्याओं का वैज्ञानिक ढ़ग से हल खोजने के लिए प्रमाण एकत्रित करते हैं, प्रयोग और परीक्षण करता है और उसका मूल्यांकन करता है।

2. संस्कृत शिक्षक संस्कृत शिक्षण को प्रभावी बनाने हेतु क्रियात्मक अनुसन्धान के माध्यम से शिक्षण में आने वाली परेशानियों को दूर कर अपना शिक्षण शिक्षार्थी के अनुकूल बना सकता है। यथा संस्कृत शिक्षण में शुद्ध उच्चारण की कमी। क्रियात्मक अनुसन्धान इसमें सहायक होगा।
3.

	मौलिक अनुसन्धान	**क्रियात्मक अनुसन्धान**
1.	नये सिद्धान्तों की खोज करना।	3. विद्यालय की कार्य प्राणाली में सुधार लाना
2.	वर्तमान समस्या का हल भविष्य के में ही लिए हल खोजना है।	2. यहाँ वर्तमान समस्या का हल वर्तमान खोजना है।
3.	क्षेत्र अधिक व्यापक है।	3. क्षेत्र सीमित
4.	समस्या का संबंध सामान्य परिस्थिति विशिष्ट से होता है।	4. यहाँ समस्या का संबंध किसी एक परिस्थिति से होता है।

4. समस्या का चयन
   समस्या का सीमांकन
   समस्या के संभाव्य कारणों का निदान एवं विश्लेषण
   क्रियात्मक परिकल्पना का निर्माण
   कार्य योजना का निर्माण और उसका प्रयोग
   क्रियात्मक परिकल्पानाओं का परीक्षण एवं प्रमाणीकरण
5. एकल समूह अभिकल्प
   सामान्तर समूह अभिकल्प
   चक्र समूह अभिकल्प
6. छात्र व्यवहार, शिक्षक व्यवहार, शिक्षण व्यवहार, परीक्षा एवं परीक्षण, पाठ्यसहगामी क्रियायें, विद्यालय प्रबन्धन एवं प्रशासन से सम्बन्धित समस्यायें क्रियात्मक अनुसन्धान के क्षेत्र के अन्तर्गत आती है।

5.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भारद्वाज, डॉ अमिता पाण्डेय (2034) विद्यालय शिक्षा में क्रियात्मक अनुसन्धान, आकांक्षा पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
2. बेस्ट, जॉन डब्ल्यू (3933) रिसर्च इन एजूकेशन, प्रेन्टिस हाल कारपोरेशन
3. पाण्डेय, के. पी. (3993) शैक्षिक अनुसन्धान, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

4. पाठक, आर. पी.(2030) शैक्षिक अनुसन्धान, अटलांटिक प्रकाशन, अंसारी रोड दरियागंज, नई दिल्ली

5.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. मित्तल, डॉ (श्रीमती) सन्तोष (2034) संस्कृत शिक्षण, आर. लाल. बुक डिपो, मेरठ
2. पाण्डेय, के. पी. व भारद्वाज, अमिता पाण्डेय (2002) शिक्षा में क्रियात्मक अनुसन्धान, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा

5.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. क्रियात्मक अनुसन्धान की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए।
2. क्रियात्मक अनुसन्धान के अन्तर्गत समस्याओं के क्षेत्र का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।
3. मौलिक अनुसन्धान से क्रियात्मक अनुसन्धान किस प्रकार भिन्न है?
4. संस्कृत शिक्षकों के लिए क्रियात्मक अनुसन्धान की आवश्यकता पर प्रकाश डालिए।
5. विद्यालय एवं कक्षागत परिस्थितियों में क्रियात्मक अनुसन्धान के अनुप्रयोग का विस्तारपूर्वक उल्लेख कीजिए।